

भारतीय तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे- (ज्ञान धारा-14)

मौन रहो या सत्य (हित-मित-प्रिय) कहो !

(तन-मन-आत्मा-राजनीति-कानून-पर्यावरण की दृष्टि से)

तथा

विश्वविद्यालय से विश्व धर्म संसद के रिपोर्ट



पाँचवीं विश्व धर्म संसद में उपस्थित एम्बेसेडर समूह के कुछ प्रतिनिधियों में से
डॉ. कछारा आदि। डॉ. कछारा इस संसद में आ. कनकनन्दी के प्रतिनिधित्व
रूप में भाग लिया। (मेलबोर्न-आस्ट्रेलिया-2009)

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव

शिविर में ग्रन्थ विमोचन



32वाँ धर्मदर्शन विज्ञान प्रशिक्षण में आ. कनकनन्दी द्वारा रचित ग्रन्थ (ग्रन्थांक 184) का विमोचन करते हुए साहित्य लेखन में सहयोगी आ. कनकनन्दी के रामगढ़ के शिष्य एवं भक्तगण।

वि.वि. में साहित्य-कक्ष एवं शोधकार्य



32वाँ शिविर में भारत के 8 प्रदेशों के 18 विश्वविद्यालयों में चल रहे आ. कनकनन्दी साहित्य-कक्ष की स्थापना तथा दि. एवं श्वे. जैन हिन्दू मुस्लिम विद्यार्थी से लेकर प्रोफेसर्स, वैज्ञानिकों के द्वारा हो रहे शोधकार्य तथा आगामी देश-विदेश की भावी भवित योजनाओं के बारे में उद्बोधन देते हुए प्रो. डॉ. (उपकुलपति) सोहनराज तातेड़। आप आ. कनकनन्दी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त संस्थान के संरक्षक भी हैं।

मौन रही या सत्य (हिंत-मित-प्रिय) कही !

(तन-मन-आत्मा-राजनीति-कानून पर्यावरण की दृष्टि से)
तथा विश्वविद्यालय से विश्व धर्म संसद की रिपोर्ट

-: पुण्य स्मरण :-

विश्व धर्म सभा, मेलबोर्न में आचार्यश्री कनकनन्दीजी के शिष्य डॉ. नारायणलाल कछारा का "जैन कर्म-सिद्धांत एवं विश्व शांति" विषय पर उद्बोधन एवं प्रतिभागी; उपकुलपति प्रो. डॉ. सोहनराज तातेड़ के प्रयास से 9 प्रदेशों के 20 विश्वविद्यालयों में आचार्य कनकनन्दीजी साहित्य कक्ष की स्थापना तथा शोध-कार्य; एवं 32वाँ शिविर (रामगढ़-2009), विदेश की अंतर्राष्ट्रीय संस्था 'नेक्स्ट पीस' में आचार्यश्री कनकनन्दी के सदस्य (1466) बनने के उपलक्ष्य में.....

ग्रन्थांक : 185

प्रथम संस्करण : 2010

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 51/- रु.

-: द्रव्यदाता :-

श्री लालचन्दजी बन्धुश्री रवीन्द्रजी खड़कपुरकर, अहिंसा मार्ग, देवलगाँव राजा, जिला-बुलढाणा (महाराष्ट्र)

-: प्राप्ति स्थान :-

धर्म दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा—श्री छोटूलालजी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड़,

आयड़ बस-स्टॉप के पास—उदयपुर (राज.)—313001

फोन नं. (0294) 2413565, 6941114

-: संपर्क सूत्र :-

डॉ. नारायणलाल जी कछारा (सचिव)

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)—313001

फोन नं. (0294) 2491422, मो. 9214460622

Email:nlkachhara@yahoo.com.

विदेश की अंतर्राष्ट्रीय संस्था में आचार्यश्री कनकनंदी की सदस्यता

Jainacharya Kanaknadiji's Page
is now a member of PeaceNext
Welcome them !

Profile Information

Religion/Faith

Jain

I have attended the Parliament of Religions :

Never

Local Religious Community/Interfaith Affiliation :

Digamber Jain Society of India

Website:

<http://acharyakanaknandi.org>

I have come to PeaceNext looking for :

interreligious exploration

I am inspired by :

Good Motto of World Religion Parliament.

My favorite spiritual places :

Jain Digambar Temples around Globe.

Interreligious causes I care about :

Respect to all religions of Globe and trying to bring them all on one Platform.

Changes I am working towards in my community :

Preaching humanity to be honest, moral living, not to harm any creature of nature.

About Me :

I was born on 5th July, 1954 at Utkalbrahampuri (Orrisa). Right beginning from my childhood I was leading non attached life for the service to mankind. After getting higher education I was adopted by my Guru as "Kshulak"

(Trainer for initiation) in the year 1978. My Guru blessed me to learn Jainagam (Holy Jaina scriptures) by heart from 1978 to 1981. I was initiated as Digamber Jaina Monk by my Guru on 5 February, 1981. Due to my keen interest in spirituality and science I was upgraded as Upadhyay (Reader Academic Rank) on 25 November, 1982. Again I was upgraded as Acharya (Professor Rank) by my Digamber Jain Samaj on 23 April, 1996. Until now I have written more than 200 research books on spirituality, religion, science, moral values and human values for the betterment of mankind. I taught and initiated so many monks and nuns in my Digamber sect. My whole life is devoted for the upliftment of Humanity around the Globe, leading as a Jaina Monk's self controlled life.

The member No. of Jainacharya Kanaknandiji's-1466

E-mail:bhupesh.icpl@yahoo.co.in.

Password:jain bhupesh

आचार्य वंदना

आचार्य वर्यम् सरलं, सुशान्तम्।
 विद्या विशारद महाप्रवीणम्।
 वात्सल्य मूर्ति निज आत्मलीनम्।
 प्रणमामि नित्यम् महायतीन्द्रम् ॥11॥
 सिद्धान्त चक्री धर्म प्रभाकर,
 विज्ञान सिन्धु आचार्य गुरुवर।
 पुष्पेण तुल्यम् मृदुलं स्वभावम्।
 प्रणमामि नित्यम् श्री कनकनंदीम् ॥12॥
 हे स्वामी! अञ्चेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमस्सामि,
 दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो,
 सुगइ—गमण, समाहि मरण, जिण—गुण—सम्पत्ति होउ मज्जां।
 नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!

हितोपदेशी आचार्य के गुण

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः,
 प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
 प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया,
 ब्रूयाद्वर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः (5)
 धर्मकथा कहने का अधिकारी हो प्रज्ञायुत शास्त्रज्ञ।
 हो प्रतिभा—सम्पन्न, क्षीणआशामय, लोक—स्थिति का विज्ञ ॥
 प्रशम, प्राग्दृष्टा प्रश्नों का, प्रश्न सहन करने वाला (अनिन्दक)।
 प्रभुतायुत, गुणनिधि, मृदुभाषी, सबका मन हरने वाला ॥ (5)

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	प्रस्तुत कृति का संक्षिप्त परिचय	10
2.	आद्य—सत्य—तथ्य—कथ्य	11
3.	मूर्खों से वार्तालाप से हानियाँ	14
4.	मौन योग्य परिस्थिति	14
5.	गुप्ति—मौन भाषा समिति	15
6.	शोर प्रदूषण अथवा ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)	18
7.	विभिन्न कार्य में व्यय होने वाली ऊर्जा	20
8.	वचन के अमृत एवं विषादि रूप	25
9.	मौन रहो या सत्य कहो की साधना तथा मेरा अनुभव	31
I.	अध्याय—1	
10.	सत्य—असत्य का स्वरूप एवं उसके फल	46
	मूक बनने का कर्म—असत्य कथन	48
	ध्वनि प्रदूषण	52
II.	अध्याय—2	
11.	हितोपदेशी तथा श्रोता	55
	(ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न उपाय—हितोपदेश)	
12.	सच्चे शिष्य	57
13.	गुरु के कठोर वचन भी हितकारी	60
14.	तीन बंदर की मूर्तियाँ ही नहीं; चार चाहिए।	61
15.	हित—मित—प्रिय या हित—अमित—अप्रिय।	63
16.	कथंचित् मौन से भी श्रेष्ठ—सत्य कथन	65
III.	अध्याय—3	
17.	भाषा विज्ञान एवं कर्म सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में— (शब्द के स्वरूप एवं भेद—प्रभेद)	68

18. वाणी वर्णन	69	43. वाणी संयम एवं कटुवाणी सहन	112
19. भाषा के 4 भेद	70	V. अध्याय—5	112
20. शब्द भी पुद्गल की पर्याय	76	44. महान् सत्यव्रत का महान् फल तथा असत्य का कुफल	116
21. कम्पन (योग) से कर्म परमाणुओं का आक्रमण—बंधन	79	45. मौन रहें या सत्य कहें	116
22. ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव	81	46. पूछने पर भी कथन—श्रवण के अयोग्य वचन	117
23. दुःखदायी कर्म के आगमन (आस्रव)	84	47. संयमी द्वारा सत्य का पालन	121
24. दर्शन मोहनीय का आस्रव	86	48. स्वार्थसिद्धि के लिए भी असत्य वर्जनीय	125
25. अशुभ नामकर्म का आस्रव	87	49. सत्यवादी का महान् प्रभाव	125
26. नीचे गोत्र का आस्रव	88	50. सत्य—असत्य का स्वरूप तथा उसके सुफल—कुफल	126
27. ऊच्च गोत्र कर्म का आस्रव	89	51. सत्य का स्वरूप एवं प्रभाव	132
28. कर्मास्रव रोकने के कारण	90	52. सत्य का विश्वरूप	134
29. गुप्ति का लक्षण	91	53. सत्य भी असत्य (अकथनीय)	135
30. समिति के भेद	93	54. सत्यव्रत की भावनाएँ	137
31. दश—धर्म	95	55. सत्याणुव्रत के अतिचार	137
IV. अध्याय—4		56. सत्य की रक्षा की 5 भावनाएँ	138
32. मौन, प्रवचनमाता एवं उसके फल	96	57. सत्य, असत्य एवं एकाग्रता	142
33. मौन के भेद एवं लाभ	96	58. भाषा की सत्यता—सीमा एवं शालीनता	145
34. मौन के अतिचार	96	59. तीन गुप्ति	146
35. मौन के भेद	101	60. वचन में विनम्रता	150
36. मौन धारण योग्य समय	102	61. वचनशुद्धि का स्वरूप	151
37. मौन के नाशक	102	62. लौकिक कथा	152
38. मौन से उत्तम गुणों की प्राप्ति	102	63. भाषागत आचार—अनाचार विवेक	157
39. मौनाध्ययन वृत्ति क्रिया	103	64. षोडस वचन एवं संयत भाषा प्रयोग	157
40. मौनवृत्ति सम्पन्न : मुनि	104	65. चार प्रकार की भाषा : विहित—अविहित	158
41. प्रवचनमाता	106	VI. अध्याय—6	158
42. साधुओं के मौन—योग्य (भाषा समिति)	108	66. ध्यानार्थ मौन एवं एकान्त साधन	162

67.	मुमुक्षु का कर्तव्य	173	X.	अध्याय—10	
68.	मौन का आध्यात्मिक रहस्य एवं लाभ	176	88.	सत्य एवं असत्य संबंधी दृष्टान्त—सत्य का प्रभाव	221
69.	वार्तालाप : उन्मत्तों की चेष्टा	177	89.	सत्य न छिपे कभी छिपाये	226
70.	आत्म—दर्शन के उपाय	179	90.	सत्य की विजय	228
71.	बोलने—पूछने—करने योग्य	182	91.	कटु वचन न बोले	230
72.	मूँछों से बोलना अयोग्य	182	92.	हितकर को करना दुष्कर है	231
73.	कथन एवं मौन से हानि—लाभ	183	93.	वाक् असंयम का फल	232
74.	अंतरंग मौन का महत्व	184	94.	झूठ बोलने का फल	235
VII.	अध्याय—7		XI.	अध्याय—11	
75.	राजनीति एवं कानून की दृष्टि से सत्य—असत्य	187	95.	विभिन्न धर्मों में वर्णित सत्य	238
	का स्वरूप एवं उसके फल		XII.	अध्याय—12	
76.	वाक्पारुष्यम् के दण्ड	192	96.	सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय	248
VIII.	अध्याय—8		XIII.	अध्याय—13	
77.	वैज्ञानिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से—ध्वनि प्रदूषण	195	97.	बॉडी लैंग्वेज की दृष्टि से धोखा, संदेह, झूठ बोलना	252
78.	ध्वनि प्रदूषण के स्रोत : (Sources of Sound Pollution)	197	XIV.	अध्याय—14	
79.	ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव	197	98.	विश्वविद्यालय से विश्व—धर्म सभा का विवरण	261
80.	श्रवण—शक्ति पर प्रभाव	199	99.	पाँचवीं विश्व—धर्म संसद : विश्व शांति का एक और प्रयास	261
IX.	अध्याय—9		100.	विश्वविद्यालय में आचार्य कनकनंदी	265
81.	विभिन्न महापुरुषों की दृष्टि से मौन तथा सत्य—वचन	205		साहित्य कक्ष की स्थापना एवं शोधकार्य	
82.	महात्मा गांधी की दृष्टि से सत्य	210	101.	32वाँ शिविर सम्पन्न, विश्वविद्यालय से लेकर	267
83.	मधुर भाषणम्	212		विश्व धर्म सम्मेलन का प्रतिवेदन एवं आगामी योजनाएँ	
84.	व्यर्थ भाषणम्	213	102.	संदर्भ ग्रंथ सूची	270
85.	सत्य भाषणम्	215	103.	अखिल भारतीय दर्शन परिषद् में आचार्य	271
86.	पैशुन्य परिहार	217		कनकनंदी के साहित्य (शोधार्थे 20 विश्वविद्यालय	
87.	वाक्-पटुता	218		में तथा पब्लिक लाइब्रेरी में उपलब्ध)	
			104.	वचनामृतम्	277

प्रस्तुत कृति का संक्षिप्त परिचय

परम शुद्धात्मा, आनन्दघन स्वरूप, निर्विकल्प, वचनातीत, अशब्द तथा अनुभवगम्य होने से वचन प्रयोग जीव का स्व—शुद्ध—स्वरूप नहीं है। अतः उस परमावस्था (शांत, स्थिर, ज्ञानानन्द, रसलीन) रूपी लक्ष्य/साध्य को प्राप्त करने के लिए मन—वचन—काय से मौन आचरण साधन है।

जब तक उपर्युक्त परमावस्था की उपलब्धि नहीं हो जाती है तब तक उस अवस्था की प्राप्ति के निमित्त सत् विश्वास—ज्ञान—चारित्र तथा लोक व्यवहार चलाने के लिए वचन (प्रवचन—भाषा—कथन) की आवश्यकता है। सरल भाषा में कहें तो स्व—पर—विश्वकल्याणार्थं हित—मित—प्रिय वचन कहना चाहिए। इसे वाचनिक सत्य कहते हैं।

(1) परम सत्य सर्वज्ञ द्वारा ही ज्ञात—अनुभूत होना संभव है जो कि अखिल ब्रह्माण्ड के प्रत्येक द्रव्य के सत्य—तथ्य स्वरूप है।

(2) अनुभव सत्य—प्रत्येक जीव जो स्वयं अनुभव करता है। यह सत्य सर्वज्ञ के द्वारा अनुभूत सत्य नहीं है। यह सापेक्ष स्व—अनुभूत सत्य है जो अन्य के अनुभूत सत्य की अपेक्षा असत्य भी संभव है। परन्तु जीव जितने—जितने अंश में पवित्र—ज्ञानी—ध्यानी—समताधारी—स्थितप्रज्ञ होता जाएगा उतने—उतने अंश में उसका अनुभव सत्य होता जाएगा।

प्रस्तुत शोधपूर्ण कृति में प्राचीन से आधुनिक तक के देश—विदेश के अनेक महापुरुषों के द्वारा ज्ञात—अनुभूत—कथित—आचरित, वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रमाणित तथा मेरे द्वारा भी बाल्यकाल से वर्तमान के आचार्य काल तक (प्रायः 50 वर्ष) आचरित—अनुभूत विषयों का संकलन किया गया है।

इस कृति में मौन, सत्य—असत्य वचन का प्रभाव किस प्रकार तन—मन—आत्मा तथा पर्यावरण के ऊपर पड़ता है इसका वर्णन ध्वनि—विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, मनोविज्ञान, पर्यावरण—विज्ञान, कर्म—सिद्धांत, न्याय—राजनीति के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न शास्त्रों एवं अनुभव के आधार पर किया गया है।

लेखक—आचार्य कनकनंदी

आध—सत्य—तथ्य—कथ्य

(इसे पढ़ो आगे बढ़ो)

आचार्य कनकनंदी

मानव को कुछ दृष्टि से विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। इस श्रेष्ठता के लिए कारणीभूत है—मानव के विवेक, सदाचरण, श्रेष्ठ वचन आदि। मानव केवल एक शरीर नहीं है जो कि भौतिक—रासायनिक क्रिया—प्रतिक्रिया से बना है; जैसा कि आधुनिक विज्ञान या चार्वाक आदि दार्शनिक मानते हैं। मानव शरीर के साथ—साथ मन, इन्द्रियाँ—आत्मा—वचन—शक्ति आदि से युक्त है तथा समाज एवं पर्यावरण के मध्य में रहता है। इतना ही नहीं वह उपर्युक्त शरीर से लेकर पर्यावरण तक को प्रभावित करता है और प्रभावित होता है। परस्पर प्रभावित होने के अनेक कारणों में से शब्द/वचन भी एक अन्यतम कारक है। हर वस्तु/शक्ति/गुण के सदुपयोग हितकारी है तो दुरुपयोग अहितकारी के समान शब्द/वचन के बारे में भी जान लेना चाहिए।

देशना लब्धि (सत्य—उपदेश) से सम्यग्दर्शन की उपलब्धि होती है। तीर्थकर, केवली, गणधर, साधु—संत, धर्म प्रचारक अपने उपदेश से सत्य, अहिंसा, सेवादि की विद्या पढ़ते हैं; शिक्षक विद्यार्थियों को वचन के माध्यम से पाठ पढ़ते हैं। इसी प्रकार भाव के आदान—प्रदान, लेन—देन, प्रेम—वात्सल्य आदि की अभिव्यक्ति भजन—प्रार्थना—गीत आदि गाना भी वचन प्रयोग से होता है। यह सब वचन के सदुपयोग है तो मिथ्या—कठोर वचन कहना, गाली देना, अनावश्यक बोलना या शोर मचाना आदि वचन का दुरुपयोग है। अतएव—

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय॥

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हृदये साँच है, ताके हृदय आप॥

सत्य वचन के लिए अनिवार्य विशेषणों (1) हित, (2) मित, (3)

प्रिय में से हित विशेषण अनिवार्य, अत्यंत आवश्यक है। हित रहित एवं प्रिय वचन भी असत्य है। यथा—ठग, वेश्या, शिकारी आदि के वचन मित एवं प्रिय होने पर भी असत्य है किन्तु हित चाहने वाले गुरु आदि के वचन अधिक एवं कठोर होने पर भी सत्य है। हित से रहित वचन भाव प्रदूषण वाला है तो मित रहित वचन शब्द प्रदूषण वाला है तथा प्रिय रहित वचन समूह (समाज—संगठन—मित्रता—शांति) प्रदूषण वाला है।

कम बोलना अधिक सुनना, यह है परम विवेक।
यामें विधि ने दिया, दो कान जीभ एक॥
जीभ ऐसी बावरी, कह गई सरग पाताल।
आप कही तो भीतर गई, जूती खावे कपाल॥

वचन को सत्य, समीचीन, शालीन, कर्णप्रिय, मर्यादित, संयमित, निरोध करने के लिए (1) सत्य धर्म, (2) सत्य व्रत (अणुव्रत—महाव्रत), (3) भाषा समिति, (4) मौन, (5) वचन—गुप्ति रूपी 5 उपाय/साधनों का विधान है। (1) शुद्ध वस्तु स्वरूपात्मक आत्मादि (जीवादि) द्रव्य के स्व—स्व स्वरूप तो सत्य धर्म है। (2) असत्य का त्याग एवं सत्य का ग्रहण सत्यव्रत है। (3) हित—मित—प्रिय वचन भाषा समिति है। (4) किसी भी प्रकार के वचन प्रयोग नहीं करना मौन है। (5) वचन की प्रवृत्ति एवं अप्रवृत्ति से परे आत्मा में ही प्रवृत्त होना वचन—गुप्ति है, जो कि ध्यानावस्था में होती है।

परम ध्यानावस्था में जीव जब स्वयं सत्य धर्मरूप में परिमण हो जाता है तब सत्यव्रत, भाषा—समिति, मौन, वचन—गुप्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार फल की परिपक्वावस्था में कली, फूल, पराग, मकरन्द का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। प्रकारान्तर से कहे तो कली आदि साधन/कारण है और फल साध्य/कार्य है। उसी प्रकार सत्यव्रत, भाषा—समिति, मौन, वचन—गुप्ति साधन है और सत्य धर्म साध्य है। अतः सत्यधर्म के लिए या सत्यधर्ममय बनने के लिए सत्यव्रतादि की नितान्त आवश्यकता है। अतः इन सबके बिना पालन किये कोई सच्चा—अच्छा—पक्का धार्मिक नहीं हो सकता है।

अहितकर चिन्तनपूर्वक अहितकर कथन होने से इससे स्व—पर अहित होता है। क्योंकि अहित चिन्तन से ही स्वयं के सत्यधर्म/शांत स्वरूप/पवित्र—भाव का हनन होता है, कर्मबंध होता है, विभिन्न मानसिक रोग (उद्वेग, संक्लेश, तनाव आदि) होता है, जिससे शारीरिक रोग होता है। इसके कारण वह शारीरिक—मानसिक—आध्यात्मिक—सामाजिक—आर्थिक रूप से विकास नहीं कर पाता है। अहित कथन से दूसरों का अहित भी हो सकता है या नहीं परन्तु स्वयं का अहित होगा ही। जिस प्रकार की दूसरों को जलाने के पहले माचिस की तीली तो जलेगी ही भले दूसरे जले या नहीं। कभी—कभी अहित चिन्तन एवं कथन से भी दूसरों का हित हो भी सकता है परन्तु जो अहित चिन्तन एवं कथन करता है उसका तो अहित होगा ही। जैसा कि पार्श्वनाथ भगवान्, महावीर भगवान् आदि के प्रति जिस—जिसने अहित चिन्तन—कथन—व्यवहार किया उससे भगवानों को तो केवलज्ञान/मोक्ष प्राप्त हुआ परन्तु अहित करने वालों को ही पाप बंध हुआ जिससे उनका ही अहित हुआ। इसलिए कहा है—

जो तोको काँटा बोवे, ताहि बोय तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको है तिरशूल॥
रहिमन जो नर सज्जन प्रकृति, का कर सतक कुसंग।
चन्दन विषव्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥(138)॥

पृ. 147 मनुस्मृति

सत्य बोले, प्रिय बोले, ऐसा सत्य न बोले जो अप्रिय हो, ऐसा प्रिय भी न बोले जो असत्य हो—यह सनातन धर्म है।

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्ब्रद्मित्येन वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥॥139॥

पृ. 147 मनुस्मृति

अशुभ बातों को अच्छे शब्दों से ही कहे अथवा केवल भद्र वचन

(शुभ वार्ता) ही बोले। बेमतलब किसी से वैर या विवाद न करें।

सत्यधर्मार्थवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।

शिष्यांश्च शिष्याद्वर्मेण वांग्वाहूदरसंयतः ॥ 175 ॥

पृ. 153 मनुस्मृति

सत्य धर्म, सदाचार और पवित्रता में सदा रत रहे। वाणी, बाहु और पेट को संयत रखता हुआ धर्मपूर्वक शिष्यों को शिक्षा दें।

1. वाणी का संयम—थोड़ा और कम बोलना।
2. बाहु का संयम—किसी को बाहुबल से पीड़ित न करना।
3. उदर का संयम—जो कुछ खाने को मिले उसमें संतोष करना।

मूर्खों से वार्तालाप से हानियाँ—

मूर्खोर्लब्धा तत्त्वैश्च सहालापश्चतुः फलः ।

वाचो व्ययो मनस्तापमपवादश्च ताडनम् ॥ (68)

स.कौमुदी पृ. 128

तत्त्व को न समझने वाले मूर्खों के साथ वार्तालाप करने में चार फल है—(1) वचन का व्यय, (2) मन का संताप, (3) अपवाद और (4) पिटाई।

प्रायो मूर्खस्य कोपाय सन्मार्गस्योपदेशनम् ।

विलून नासिकस्येव विशुद्धादर्श दर्शनम् ॥ (69)

प्रायः कर मूर्ख के लिए समीचीन मार्ग का उपदेश देना उसके क्रोध को उस प्रकार बढ़ाने वाला होता है जिस प्रकार कि नकटे के लिए निर्मल दर्पण का दिखाना।

मौन योग्य परिस्थिति—

मौनं भोजनवेलयां ज्ञानस्य विनयो भवेत् ।

रक्षणं चाभिमानस्येत्युद्दिशन्ति मुनीश्वराः ॥ (440)

भोजन के समय मौन रखने से ज्ञान की विनय होती है और अभिमान की रक्षा होती है इसलिए मुनिराज उसका उपदेश देते हैं।

हदनं मूत्रणं स्नानं पूजनं परमेष्ठिनाम् ।

भोजनं सुरतं स्तोत्रं कुर्यान्मौनसमायुतम् ॥ (441)

स.कौमुदी पृ. 196

मल निवृत्ति, मूत्र त्याग, स्नान, परमेष्ठियों का पूजन, भोजन, संभोग और स्तुति ये सब कार्य मौन सहित करना चाहिए।

आयुर्वित्तं गृहच्छिदं मन्त्रमैथुनमेषजम् ।

तपो दानापमानं च नव गोप्यानि यत्नतः ॥ (हितोपदेश, पृ. 55)

और भी—आयु, धन, घर का भेद (रहस्य), गुप्त बात, मैथुन, औषधि, तप, दान और अपमान, इन नौ बातों को यत्न से गुप्त रखना चाहिए।

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं

वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् ।

वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येषभिरुचि—

वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥ हितोपदेश, पृ. 137

और चुप रहना अच्छा, पर मिथ्या (झूठा) वचन कहना अच्छा नहीं; मनुष्यों की नपुंसकता अच्छी, पर पराई स्त्री के साथ गमन अच्छा नहीं; मर जाना अच्छा, किन्तु धूर्त की बातों में रुचि करना अच्छा नहीं; और भीख माँगना अच्छा, पर पराया धन से सुस्वादु भोजन का सुख अच्छा नहीं।

गुप्ति—मौन—भाषा—समिति

वाक्कायचित्तजानेकसावद्यप्रतिषेधकं ।

त्रियोगरोधनं वा स्थाद्यत्तदगुप्तित्रयं मतम् ॥ 4 ॥

(ज्ञानार्णवः पृ. 176)

मन—वचन—काय से उत्पन्न अनेक पाप सहित प्रवृत्तियों का प्रतिषेध करने वाला प्रवर्तन अथवा तीनों योग (मन—वचन—काय की) क्रिया का रोकना ये तीन गुप्तियों का भिन्न—भिन्न स्वरूप कहते हैं।

धूर्तकामुकक्रव्याद् चौरचार्वाकसे विता ।
 शङ्कासङ्केतपापाढ्य त्याज्या भाषा मनीषिभिः ॥ (8)
 दशदोषविनिर्मुक्तां सुत्रोक्तां साधुसम्मताम्
 गदतोऽस्य मुनेर्भाषां स्याद्बाषासमितिः परा ॥ 9 ॥

धूर्त (मायावी) कामी, मांसाभक्षी, चोर, नास्तिकमती, चार्वाकादि से व्यवहार से लाई हुई भाषा तथा संदेह उपजाने वाली, वा पाप संयुक्त हो ऐसी भाषा बुद्धिमानों को त्यागनी चाहिए ॥ 8 ॥ तथा वचनों के दश दोष रहित सूत्रानुसार साधु पुरुषों को मान्य हो ऐसी भाषा को कहने वाले मुनि के उत्कृष्ट भाषा समिति होती है ।

“कर्कशा परुषा कट्वी निष्ठुरा परकोपिनी ।
 छेधाङ्करा मध्यकृशाऽतिमानिनी भयंकरी ॥ 11 ॥
 भूतहिंसाकरी चेति दुर्भाषां दशधा त्वजेत् ।
 हितं मितमसंदिग्धं स्यादभाषासमितिर्मुनेः ॥ 12 ॥

कर्कश, परुष, कट्व, निष्ठुर, परकोपी, छेधाङ्करा, मध्यकृशा, अतिमानिनी, भयंकरी और जीवों की हिंसा कराने वाली, ये दश दुर्भाषा हैं । इनकी छोड़े तथा हितकारी, मर्यादा सहित असंदिग्ध वचन बोले उसी मुनि के भाषा समिति होती है ।

विहाय सर्वसंकल्पान् रागद्वेषावलभितान्
 स्वाधीन कुरुते चेतः समत्वे सुप्रतिष्ठतम् ॥ 15 ॥
 सिद्धान्तसुत्रविन्यासे शश्वत्प्रेरयतोऽथवा
 भवत्यविकला नाम मनोगुप्तिर्मनीषिणः ॥ 16 ॥

राग—द्वेष में अवलंबित समस्त संकल्पों को छोड़कर जो मुनि अपने मन को स्वाधीन करता है और समता भावों में स्थिर करता है । तथा सिद्धान्त के सूत्र की रचना में निरंतर प्रेरणा रूप करता है । उस बुद्धिमान् मुनि के संपूर्ण मनोगुप्ति होती है ।

साधु संवृतवाग्वृत्ते मौनारूढस्य वा मुनेः ।
 संज्ञादिपरिहारेण वाग्गुप्तिः स्यान्महामुनेः ॥ 17 ॥

भले प्रकार संवररूप (वश) करी है वचनों की प्रवृत्ति जिसने ऐसे मुनि के तथा समस्यादिका त्याग कर मौनारूढ होने वाले महामुनि के वचन गुप्ति होती है ।

जनन्यो यमिनामष्टौ रत्नत्रयविशुद्धिदाः ।

एताभी रक्षितं दोर्षे निवृन्दं न लिप्यते ॥ 19 ॥

पाँच समिति और तीन गुप्ति ये आठों संयमी पुरुषों की रक्षा करने वाली माता है तथा रत्नत्रय की विशुद्धता देने वाली है । इनसे रक्षा किया हुआ मुनियों का समूह दोषों से लिप्त नहीं होता है ।

एक धर्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।

वितिष्णापरलोकस्स नथि पापं अकारियं ॥ 10 ॥ धर्मपद

एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है उस परलोक की चिन्ता से रहित पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता जो वह न कर सके ।

अभूतवादी निरयं उपेति यो चापि

कत्वा ‘न करोमीति’ चाह ।

उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति ।

निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ 11 ॥

असत्यवादी नरक में जाता है और वह भी जो कि करके ‘नहीं किया’—कहता है । दोनों ही प्रकार के नीचकर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं ।

यो मुखसञ्जतो भिक्खु मन्त्तमाणी अनुद्धतो ।

अत्थं धर्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ 14 ॥

जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं होता है, अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है ।

सत्य—वक्ता ब्राह्मण है

मिलिन्दिवच्छ स्थविर प्रव्रजितों को भी, गृहस्थों को भी

आओ वसल (=नीच), जाओ वसल” कहकर बुलाते थे। भिक्षुओं को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। उन्होंने भगवान् से कहा। भगवान् ने स्थविर को बुलाकर “क्या वच्छ! सत्य है कि तू ‘वसल’ कहकर पुकारता है?” पूछ, “सत्य है भन्ते!” कहने पर—“भिक्षुओं! वच्छ पर तुम लोग मत रुष्ट होओ। मेरे पुत्र ने पहले पाँच सौ जन्मों तक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर (वसलवाद) का अभ्यास किया है। क्षीणाश्रव दूसरों को मर्माहत करने वाले वचन नहीं बोलते” कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

अकक्कसं विज्चापनिं गिरं सच्चं उदीरये ।

याय नाभिसजेकिभिच तमहं ब्रू मि ब्राह्मणं ॥२६॥

जो ऐसी अकर्कश, सार्थक तथा सत्य—वचन को बोले, जिससे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

शोर प्रदूषण अथवा ध्वनि प्रदूषण

(Noise Pollution)

शोर जिसे आगल में "Noise" कहते हैं लेटिन भाषा के शब्द "Nausea" से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है “अप्रिय” (Unpleasant) अथवा अवांछनीय (unwanted)। ध्वनि (sound) शोर की परिभाषा 1980 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) द्वारा निम्न शब्दों में दी गई है—“गलत स्थान पर, गलत समय में गलत ध्वनि” को शोर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आवाज (voice) ही ध्वनि प्रदूषण का मुख्य प्रदूषण है। ध्वनि का मापन “डेसीबल” (dB) में किया जाता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है, प्रथम डेसी—10 तथा द्वितीय “बेल—ए ग्राहम बेल के नाम पर।

ध्वनि प्रदूषण से होने वाली बीमारियों का विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. बहरापन—ध्वनि प्रदूषण से श्रवण शक्ति कमजोर होती है तथा कभी—कभी ध्वनि इतनी उच्च होती है कि बहरापन आ जाता है।

2. दृष्टि (vision) का कमजोर होना—ध्वनि प्रदूषण से आँखों की पुतली फैल जाती है, जिससे दृष्टि कमजोर हो जाती है।
3. सिरदर्द—ध्वनि प्रदूषण से मस्तिष्क की रक्त वाहिनियाँ (blood vessels) फैल जाती है, जिससे तीव्र (तेज) सिरदर्द रहने लगता है।
4. न्यूरोटिक—मेण्टल डिसार्डर (Neurotic mental disorder) दीर्घ अवधि तक ध्वनि प्रदूषण के सम्पर्क में रहने के कारण होता है।
5. प्रेसबाइकुसिस (Presbycusis)—महानगरों में जहाँ ध्वनि प्रदूषण का असर ज्यादा है, वहाँ के मनुष्यों में ध्वनि प्रदूषण जनित रोग “प्रेसबाइकुसिस” (presbycusis) बढ़ रहा है।
6. अन्य—चिङ्गचिङ्गापन, अनिद्रा (insomnia), हृदयाघात (heart attack), उच्च रक्त चाप (high blood pressure), समय से पूर्व बुढ़ापा इत्यादि।
7. शोर प्रदूषण से संबंधित तथ्य—

- (1) टिनीटस (Tinnitus)—तेज ध्वनि वाली मशीनों के नजदीक कार्यरत व्यक्तियों, दुकानदारों तथा परिचाल को प्रतिदिन तेज ध्वनि का सामना करना पड़ता है इसे ही “टिनीटस” (Tinnitus) कहते हैं।
- (2) 120 डेसीबेल से अधिक शोर (ध्वनि गर्भस्थ शिशु को नेत्रहीन बना सकती है। अधिक शोर के वातावरण से अर्थात् अचानक विस्फोट सुनने पर गर्भवती स्त्री (महिला) का गर्भ गिर भी सकता है।

उदाहरणार्थ : श्रीलंका प्रवास के दौरान हनुमानजी का गर्जना (ध्वनि) से अनेक राक्षसियों के गर्भ गिर गए थे।

चलत महाधुनि गजेंसी भारी ।

गर्भ स्वरहि सुनि निसिचर नारी ॥

शोर एक मीठे विष के रूप में मानव शरीर को प्रभावित करते हुए उसके कर्ण, नेत्र, हृदय, वृक्क की रक्त वाहिनियों तथा फेफड़ों में धीरे—धीरे रक्त के प्रवाह को कम करता है। फलस्वरूप गुर्दे (वृक्क) खराब हो सकते हैं तथा मनुष्य को लकवा (paralysis) भी हो सकता है।

विभिन्न कार्य में व्यय होने वाली ऊर्जा

काम	कैलोरी	काम	कैलोरी
	/घंटा		/घंटा
1. पढ़ना	25	द्रक चलाना	100
2. फोन पर जवाब देना	50	खाना पकाना	100
3. हिसाब—किताब करना	50	ट्रेक्टर चलाना	100
4. श्रुतलेख लिखाना— लिखना	50	फर्श बुहारना	150
5. कपड़े पहनना—उतारना	50	कपड़े धोना	200
6. कार चलाना	50	बागवानी	250
7. खाना खाना	50	बढ़ईगिरी	250
8. स्वेटर बुनना	50	बिस्तर बिछाना	300
9. आरा चलाना	500	दाँत साफ करना	100
10. बाल सँवारना	100	शिकार करना	400
11. तैरना	400	पियानो बजाना	75
12. बैडमिंटन	400	स्कूटर चलाना	100
		मोटर साईकिल चलाना	150
13. नाव खेना	400		
14. टेनिस (सिंगल्स)	450	पैटिंग	150
15. हॉकी	550	साइकिल चलाना (तेज)	600
16. बास्केटबॉल—बेसबॉल	550	नाचना (तेज)	600
17. घुड़सवारी	250	बॉल, बोलिंग	250
18. वॉलीबॉल—बेसबॉल	350	साइकिल चलाना (धीमे)	300

19. फुटबॉल	600	टहलना (धीमे)	300
20. तैरना (तेज)	800	नाचना (धीमे)	350
21. कुश्ती	800	बास्केटबॉल	
		टेनिस (डबल)	350
22. दौड़ना (तेज)	900		
23. कुश्ती	800		
24. दौड़ना (तेज)	900		

स्मरण रहे कि स्वस्थ पुरुष के लिए प्रतिदिन 3,500 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है जिसे वह भोजन से प्राप्त करता है।

उपरोक्त ऊर्जा चार्ट से ज्ञात होता है कि फोन पर जवाब देना (50 कैलोरी) तथा कार चलाना (50 कैलोरी) समान श्रमसाध्य है और समान कैलोरी (ऊर्जा) की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए शारीरिक ऊर्जा के अपव्यय को रोकने के लिए मौन धारण करना उत्तम है अन्यथा हित—मित—प्रिय वचन बोलना चाहिए। इसी प्रकार शब्द—प्रदूषण के दुष्प्रभाव को कुछ कम करने के लिए भी मौन धारण करना चाहिए, अन्यथा हित—मित—प्रिय वचन बोलना चाहिए। इसके साथ—साथ अधिक बोलने से पेट से लेकर ओठ तक को परिश्रम करना पड़ता है, जिससे इन अवयवों में दर्द होता है, जलीय अंश का वाष्णीकरण होने से गले से लेकर मुँह, ओठ सूखने लगते हैं जिसके कारण प्यास भी अधिक लगती है, गला बैठ जाता है तथा गले में भी अनेक भयंकर रोग हो जाते हैं, भूख भी कम लगती है, भोजन सही नहीं पचता है जिससे कभी—कभी थोड़ी—थोड़ी उल्टी हो जाती है, अमूल्य समय बर्बाद होता है। यह सब हुई भौतिक एवं शारीरिक क्षति।

इसके अतिरिक्त मानसिक क्षतियाँ भी होती हैं, यथा—सिर गरम होने के साथ—साथ मन अस्थिर हो जाता है जिससे सूक्ष्म—गहन—महत्वपूर्ण विषयों के ऊपर ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता है; किसी भी विषय को ध्यानपूर्वक सुना नहीं जा सकता है, समझने में भी नहीं

आता है जिससे स्मरण रखना, सीखना तो नहीं हो पाता है साथ ही मानसिक शांति नहीं मिल पाती है। इससे व्यक्ति मानसिक दृष्टि से भी पिछड़ा हो जाता है तथा समुचित विकास भी नहीं कर पाता है। सामाजिक (समूह) दृष्टि से भी ऐसे व्यक्ति की गरिमा व प्रभाव घटता है; उसकी बातें अच्छे व्यक्ति सुनना नहीं चाहते हैं, उसकी संगति कम करते हैं, उसकी बातों को नहीं मानते हैं, इसके साथ-साथ कलह, वाद-विवाद, तू-तू मैं-मैं होता है। कभी-कभी तो लड़ाई-झगड़ा से लेकर युद्ध, हत्या तक होते रहते हैं। सबसे अधिक क्षति तो आध्यात्मिक दृष्टि से होती है। उपर्युक्त परिस्थिति में तो कोई सच्चा आध्यात्मिक नहीं हो सकता है, आध्यात्मिक विकास करना तो अति दूर है। उपर्युक्त वर्णन मैंने बहुअंश में मेरे स्व-अनुभव से भी लिखा हूँ। इसलिए तो तीन ज्ञान (सुमति-श्रुत-अवधि) ज्ञान से युक्त तीन कल्याणक (गर्भ-जन्म-दीक्षा) से युक्त तीर्थकर भी छद्मस्थ-मुनि अवस्था में दीर्घकाल (दिनों से लेकर सैकड़ों, हजारों वर्ष) तक मौन धारण करके आध्यात्मिक साधना में संलग्न रहते हैं जब तक कि उन्हें अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य की उपलब्धि नहीं हो जाती है। उपर्युक्त अनंत चतुष्टय की उपलब्धि के बाद विश्वगुरु तीर्थकर भगवान् विश्व धर्मसभा-समवशरण में विश्व के लिए सर्वभाषामयी (18 महाभाषा, 700 क्षुद्र भाषा) दिव्य ध्वनि के माध्यम से उपदेश देते हैं। आचार्य जिनसेन ने कहा है कि दीर्घकालीन मौनपूर्वक आध्यात्मिक साधना के फलस्वरूप उन्हें विश्व को संबोधित करने योग्य दिव्य वचन की उपलब्धि हुई। यथा—

गर्भात् प्रभृत्यसौ देवो ज्ञानत्रितयमुद्धहन् । ॥१८१
दीक्षानन्तरमे वाप्तमनः पर्ययबोधनः ॥
तथात्युग्रं तपोऽतप्त सेद्धव्ये धूवभाविनि ।
स ज्ञानलोचनो धीरः सहस्रं वार्षिकं परम् ॥१८२

यद्यपि वे भगवान् वृषभदेव, मति श्रुति, और अवधि इन तीनों ज्ञानों को गर्भ से ही धारण करते थे और मनःपर्यय ज्ञान उन्हें दीक्षा के बाद प्राप्त हो गया था। इसके सिवाय सिद्धत्व पद उन्हें अवश्य ही

प्राप्त होने वाला था तथापि सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रों को धारण करने वाले धीर-वीर भगवान् ने हजार वर्ष तक अतिशय उत्कृष्ट और उग्र तप तपा था।

मौनी, ध्यानी और मान से रहित वे अतिशय बुद्धिमान भगवान् धीरे-धीरे अनेक देशों में विहार करते हुए किसी दिन पुरिमताल नाम के नगर के समीप आ पहुँचे।

उसी नगर के समीप एक शकट नाम का उद्यान था जो कि उस नगर से न तो अधिक समीप था और न तो अधिक दूर था। उसी पवित्र, आकुलता रहित, रमणीय, एकांत और जीव-रहित वन में भगवान् ठहर गये।

शुद्ध बुद्धिवाले भगवान् ने वहाँ ध्यान की सिद्धि के लिए वटवृक्ष के नीचे एक पवित्र तथा लंबी, चौड़ी शिलापट पर विराजमान होकर चित्त की एकाग्रता धारण की।

वहाँ पूर्व दिशा की ओर मुखकर पद्मासन से बैठे हुए तथा लेश्याओं की उत्कृष्ट शुद्धि को धारण करते हुए भगवान् ने ध्यान में अपना चित्त लगाया।

तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्म की जो कुछ उद्धत प्रकृतियाँ थीं उन सबको उन्होंने एकत्वावितर्क नाम के दूसरे शुक्लध्यान से नष्ट कर डाला और उस प्रकार वे मुनिराज ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा अतिशय दुःखदायी चारों घातिया कर्मों को जलाकर केवलज्ञानी होकर लोकालोक के देखने वाले सर्वज्ञ हो गये।

अनन्तज्ञानदृग्वीर्यविरतिः शुद्धदर्शनम् ।

दानलाभौ च भोगोपभोगावानन्त्यमाश्रिताः (265)

नवकेवललब्धीस्ता जिन भास्वान् द्युतीरिव ।

स भेजे जगदुद्भासी भव्याम्भोजानि बोधयन (266)

इस प्रकार समस्त जगत् को प्रकाशित करते हुए और भव्य जीवरूप कमलों को प्रफुल्लित करते हुए वे वृषभ-जिनेन्द्ररूपी सूर्य किरणों के समान अनंत ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चरित्र, शुद्ध सम्यक्त्व,

दान, लाभ, भोग और उपभोग इन अनंत नौ लब्धियों को प्राप्त हुए।

इस प्रकार जिन्होंने ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी ईर्धन के समूह को जला दिया है, जिनके केवलज्ञान रूपी विभूति उत्पन्न हुई है और जिन्हें समवशरण का वैभव प्राप्त हुआ है, ऐसे वे जिनेन्द्र भगवान् बहुत ही सुशोभित हो रहे हैं।

जो मुनि आज्ञा देने का अभिमान छोड़कर मौन धारण करता है उसे सुर और असुरों के द्वारा सिर पर धारण की हुई उत्कृष्ट आज्ञा प्राप्त होती है अर्थात् उसकी आज्ञा सब जीव मानते हैं। जो यह मुनि अपने इष्ट सेवक तथा भाई आदि की सभा का परित्याग करता है इसलिए उत्कृष्ट अरहंत पद की प्राप्ति होने पर वह तीनों लोकों की सभा अर्थात् समवसरण भूमि में विराजमान होता है। जो सब प्रकार की इच्छाओं का परित्याग कर अपने गुणों की प्रशंसा करना छोड़ देता है और महातपश्चरण करता हुआ स्तुति तथा निन्दा में समान भाव रखता है वह तीनों लोकों के इन्द्रों के द्वारा प्रशंसित होता है अर्थात् सब लोग उसकी स्तुति करते हैं। इस मुनि ने वंदना करने योग्य अरहंत देव की वंदना कर तपश्चरण किया था इसलिए यह वंदना करने योग्य पूज्य पुरुषों के द्वारा वंदना किया जाता है तथा प्रशंसनीय उत्तम गुणों का भंडार होता है।

चूँकि यह मुनि वचन गुप्ति को धारण कर अथवा हित-मित-वचन रूप भाषा समिति का पालन कर तपश्चरण में स्थित हुआ था इसलिए ही इसे समस्त सभा को संतुष्ट करने वाली दिव्य धनि प्राप्त हुई है।

किमत्र बहुनोक्तेन यद्यदिष्टं यथाविधम् ।

व्यजेन्मुनिरसंकल्पः तत्त्सूतेऽस्य तत्पः ॥१७॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है? संक्षेप में इतना ही कह देना ठीक है कि मुनि संकल्प रहित होकर जिस प्रकार की जिस-जिस वस्तु का परित्याग करता है उसका तपश्चरण उसके लिए वही-वही वस्तु उत्पन्न कर देता है।

वचन के अमृत एवं विषादि रूप

(वचन की समीक्षा तथा मेरा अनुभव)

वचन भाव से अनुप्रेरित एवं शब्द तरंग से संप्रेषित होने के कारण कथञ्चित् वचन भाव-द्रव्यात्मक शक्ति संपन्न है। अतः भाव के विभिन्न स्तर/आवेश तथा शब्द के विभिन्न कम्पन के कारण वचन की शक्ति में विभिन्नता आ जाती है। जैसा कि धी खाने से तथा धी शतधौत करके लगाने से शीतलता प्रदान करता है; परन्तु जलाने से उष्णता प्रदान करता है। सज्जन, परोपकारी, शांत स्वभावी, समताधारी, पवित्र हृदय वाले महानुभाव का वचन अमृत के समान है तो दुष्ट, स्वार्थी, क्रूर-कठोर स्वभावी, संक्लेशी, अपवित्र हृदय वाला क्षुद्र व्यक्ति का वचन हलाहल विष से भी अधिक घातक होता है। यथा—

जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरे।

प्रमरोगहर जिनके वचन, मुखचन्द्र ते अमृत झरे॥ (छह)

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।

वशीकरण यह मंत्र है, तज देहु वचन कठोर॥

नरस्य चन्दनं चन्द्र शचन्द्रकान्तमणिर्जलम् ।

न तथा कुरुते सौख्यं, वचनं मधुरं यथा॥

वचन तो शब्दात्मक है और शब्द भौतिक की अवस्था/पर्याय विशेष है तथापि वचन में उपर्युक्त अभौतिक (भावात्मक) गुणों का सम्मिश्रण होने का प्रमुख कारण है वक्ता। जैसा कि हिम प्रदेश से प्रवाहित होकर आने वाली हवा शीतल हो जाती है तो रेगिस्तान, दावानल क्षेत्र को पार करके आने वाली हवा गरम हो जाती है अथवा फ्रीज, कूलर, ए.सी. आदि के कारण वातावरण शीतल हो जाता है तो हीटर, अग्नि आदि के कारण गरम। यथा—

वदनं प्रसाद सदनं, सदय हृदयं, सुधामचो वाचः।

करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्या॥

जिनके मुख सुखप्रद, सुंदर गृह के समान, हृदय दया सहित,

अमृतवर्षणी वाणी, परोपकारी कार्य या परोपकार के परिणाम ऐसे महानुभाव किसके द्वारा वंदनीय नहीं हो अर्थात् सब गुणग्राही सज्जनों के द्वारा अवश्य वंदनीय हैं। उपरोक्त महापुरुष से विपरीत मूर्ख—दुर्जन होता है। यथा—

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वा दुर्वचनी तथा ।

हठी चाप्रियवादी च हितोक्तं नैव मन्यते ॥

ऐसे पुरुष की वाणी तीक्ष्ण बाण के समान हृदयरूपी वृक्ष को सदाकाल के लिए काट डालता है। यथा—

रोहते शायके विंधदं वन परशुनाहतम् ।

वाच दुरुक्तं वीभत्सं नापि रोहति वाक् क्षतम् ॥

हजारों—लाखों लालित्य—मधुर—सुंदर शब्दों के सद्भाव के साथ—साथ ब्रह्माण्ड में अनंत शब्द—वर्गणाओं का सर्वत्र, सदा—सर्वथा सद्भाव होने पर भी दुर्जन लोग वचन में भी दरिद्र होकर कठोर, अप्रिय, पापकारक, कटु, मर्मभेदी शब्द—बाणों का प्रयोग करते रहते हैं। नीतिकार कहते हैं “वचने किं दरिद्रता” परन्तु मेरा दुःखदायी अनुभव है कि अधिकांश लोग बहुशः वचन में ही अधिक दरिद्र होते हैं, भले वे किसी भी धर्म—संप्रदाय के हो, शिक्षित या अशिक्षित हो, धनी या गरीब हो, बालक से लेकर वृद्ध ही क्यों न हो, ग्रामीण या शहरी हो, गृहस्थ से लेकर पंडित, साधु—संत ही क्यों न हो। इसमें और भी विचित्र दुःखदायी मेरा कटु अनुभव है, सामान्यजन से भी अधिक वचन में दरिद्र वे पाये जाते हैं जो धर्म का आडम्बर/दिखावा करते हैं। ऐसा ही गरीब से अधिक धनी, अशिक्षित से अधिक शिक्षित, ग्रामीण से अधिक शहरी, नौकर से अधिक साहूकार—मालिक—बाबू—अधिकारी—सत्ता—संपत्ति—शक्ति—बुद्धिधारी, कम आयु वाला से अधिक आयु वाला, गृहस्थ से अधिक पंडित—साधु—साध्वी—त्यागी—व्रती, श्रोता से अधिक वक्ता, शासित से अधिक शासक आदि—आदि वचन में अधिक से अधिक दरिद्र होते हैं। क्योंकि भले बाह्य से वे कुछ ओढ़े/लादे रहते हैं परन्तु अंतरंग से वे खाली रहने से “रिक्त चना बाजे घना”, “अधजल गगरी छलकत जाय—भरी गगरी चुपकत

जाय”, “बड़ा ढोल में बड़ा पोल” होने से अधिक ढाऊँ—ढाऊँ आवाज करता” के न्यायानुसार वे अहित—अमित—अप्रिय वचन अधिक बोलते हैं।

इसीलिए तो महान् तार्किक, राजनीति—न्याय के विद्वान् दि. जैनाचार्य वादीभसिंह ने कहा है—“वक्त्रं वक्ति हि मानसम्” अर्थात् मुख की आकृति—प्रकृति—अभिव्यक्ति अंतरंग/भाव/मन को प्रगट करती है। यही सही है क्योंकि जो अंदर में होगा वही तो बाहर निकलेगा। पात्र के अंदर यदि पानी है तो पानी निकलेगा, दूध है तो दूध, मद्य है तो मद्य, विष है तो विष, गैस है तो गैस, अमृत है तो अमृत।

क्षुद्र, दुर्जन, क्रूर, अहंकारी व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए स्वयं को श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, प्रभावशाली सिद्ध करने के लिए कठोर, कटु, निन्दात्मक, विषाक्त वचनों का प्रयोग करते हैं। उनके लिए यह संगीत के सबसे प्रिय राग है, तो नाटक के नवरसों में से भी प्रिय रस और भोजन के षट्रसों में से भी प्रिय रस है। जिस प्रकार घरेलू मक्खी को फूल के मकरन्द से भी गंदगी अधिक प्रिय है, जौक को दूध से अधिक प्रिय दूषित खून है उसी प्रकार इन्हें हित—मित—प्रिय वचनरूपी अमृत से भी अधिक प्रिय अहित—अमित—अप्रिय वचनरूपी विष है।

ब्रह्माण्ड में सर्वत्र, सदा—सर्वथा अनंतानंत (कर्मवर्गणाएँ) कर्म परमाणु ठसाठस भरी होने पर भी अज्ञानी, मोही, क्रूर, संक्लेशी व्यक्ति पाप का ही आस्र—बंध के साथ—साथ ही पापात्मक कार्य करता है उसी प्रकार वह व्यक्ति ब्रह्माण्ड में सर्वत्र सदा सर्वथा अनंतानंत भाषा वर्गणायें भाषा रूप में परिमण करने योग्य भौतिक परमाणुओं का समूह होने पर भी वह अशुभ—पापात्मक भाषा वर्गणाओं का ही प्रयोग करता है। क्योंकि जिस प्रकार की कर्म वर्गणाएँ सब एक ही प्रकार की होती है तथापि जीव के शुभ—अशुभ योग एवं उपयोग के अनुसार शुभ अथवा अशुभ रूप परिणमन कर लेती हैं; उसी प्रकार सब

भाषा—वर्गणाएँ एक समान होने पर भी शुभ या अशुभ भाषा रूप में प्रयोगकर्ता के शुभ—अशुभ योग एवं उपयोग के कारण परिणमन कर लेती है। इसलिए तो कहा गया है—“भाग्यहीन को न मिलता है भली वस्तु का योग”, “मन चंगा तो कठौति में गंगा”, “जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि” आदि—आदि। समुद्र में प्रचुर जलराशि होते हुए भी जिसके पास जितना बड़ा पात्र है वह उतना ही पानी ग्रहण कर सकता है; उसी प्रकार व्यक्ति अपनी पात्रता के अनुसार ही किसी भी विषय को ग्रहण या प्रयोग कर सकता है। कोयल तथा कौआ एक ही उपवन में रहकर भी कोयल के समान कौआ नहीं बोल सकता तथा कौआ के समान कोयल भी नहीं बोल सकती है। ऐसा व्यक्ति—“सदवृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्” के परिवर्तन में भी “असदवृत्तानां दुर्गुणगणकथा गुणवादेच मौनम्” तथा “सर्वस्यापिप्रिय हितवचो भावना चात्मतत्त्वे” के परिवर्तन में “सर्वस्यापि अप्रियाहित वचो भावना चानात्मतत्त्वे” का ही प्रयोग करके स्व—पर—विश्व को हानियाँ पहुँचाते रहते हैं। इन सब विषम परिस्थितियों से वचन के लिए इस कृति का संकलन/संपादन/लेखन किया गया है। संक्षेप में कुछ दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे सांच है, वाके हृदये आप॥

कण्टकाकीर्ण मार्ग से भी पादत्राण के सहयोग से जिस प्रकार यात्री सुरक्षित यात्रा संपन्न कर सकता है; उसी प्रकार विषमतापूर्ण संसार में मोक्ष के पथिक समता—सहिष्णुता—क्षमादि रूपी आत्मत्राण के सहयोग से यात्रा संपन्न कर लेता है। वह है आत्मत्राण के उपाय—

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणा विहो हवे लद्धि।

तेण वयण विवादं सग—पर समयम्मि बज्जिदो॥

आ. कुंदकुंददेव

अर्थात् नाना जीव हैं, नाना प्रकार के कर्म हैं तथा विभिन्न प्रकार की उपलब्धि (योग—उपयोग—विचारादि) हैं। अतः प्रत्येक जीव

में संपूर्ण समानता नहीं हो सकती है। नवम् गुणस्थान से आगे वैचारिक समानता कुछ दृष्टि से संभव है परन्तु इसके पहले संभव नहीं है। क्योंकि प्रत्येक गुणस्थान में भी असंख्यात लोक प्रमाण उपयोग/लब्धि स्थान होते हैं। इसलिए केवल एक पंचम गुणस्थान (देशब्रती गुणस्थान) में प्रथम प्रतिमा से लेकर क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका तक होते हैं। कहाँ एक पंचम गुणस्थान वाला व्रती (पहले से 6वीं प्रतिमा तक) विवाह, कृषि, वाणिज्य आदि आरंभ, सारंभ, परिग्रह संग्रह आदि करता और कहाँ छुल्लक, ऐलक, आर्यिका स्थानीय पंचम गुणस्थान व्रती उपरोक्त विवाहादि आरंभ आदि से सर्वथा निवृत्त है। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ (मुनि) में भी “पुलाक—बकुश—निर्ग्रन्थ—स्नातका निर्ग्रन्थाः” भेद—प्रभेद होते हैं। यह भेद भी उनके विचार, व्यवहार के कारण है। कुछ साधु तो उत्तर गुणों के साथ—साथ मूल गुणों में भी दोष लगाते हैं तो कुछ उत्तर गुणों में। यह सब केवल पंचम काल में ही नहीं किन्तु चतुर्थ काल में भी होता था। इसी प्रकार चतुर्थ गुणस्थान में (1) उपशम, (2) क्षयोपशम और (3) क्षायिक की अपेक्षा तथा लेश्या एवं कषाय की अपेक्षा भी भेद—प्रभेद हो जाते हैं। मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती एक व्यक्ति जैन मुनि बनकर उपसर्ग तथा परीषह सहन करके स्वर्ग में (ग्रैवयक) देव बनता है और कोई एक मिथ्यादृष्टि व्यक्ति मुनि के ऊपर उपसर्ग करके सप्तम नरक जाता है। इतना ही नहीं अनेक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, पैश्य) भद्र मिथ्यादृष्टि जैन मुनि को आहार देकर या ग्वाला आदि ठण्डी से साधुओं को बचाने के लिए रात को आग जलाकर सेवा करते हैं। जिससे वे आगे जाकर सम्यग्दृष्टि, भोगभूमिज, देव, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, गणधर, तीर्थकर बनकर सिद्ध बनते हैं। इतना ही नहीं जो घोर मिथ्या दृष्टि, पापी, हिंसक, चोर, व्यसनी आदि हैं वे भी अंतर्मुहूर्त (48 मि.) में सम्यक् दृष्टि, मुनि, गणधर, अरिहंत से लेकर सिद्ध भगवान् बन जाते हैं। इसके लिए उदाहरण वर्धमान कुमार एवं उनके मित्र, विद्युत चोर, अंजन चोर, राजा श्रेणिक आदि—आदि। ऐसी परिस्थिति में मिथ्यादृष्टि, पापी, विधर्मी से भी घृणा, द्वेष आदि नहीं करना चाहिए तब तो जो सहधर्मी हैं, जैन हैं, मुनि, आर्यिका, श्रावक—श्राविका हैं उनसे कैसे घृणा, द्वेष, भेद—भावादि एक सच्चा जैनी कर सकता है? कदापि नहीं कर सकता है। यदि करता है तो

वह प्रारंभिक जैन भी नहीं हो सकता है। एक प्राथमिक जैनी भी (1) उपगृहन, (2) स्थितिकरण, (3) वात्सल्य, (4) प्रभावना अंग के कारण (1) स्व के गुणों को बढ़ाता है, दूसरों के दोषों को ढाकता (दोषवादे च मौन) है। (2) स्व-पर को धर्म मार्ग में प्रवृत्त करता है। (3) स्व-आत्मा में एवं दूसरों में वात्सल्य भाव रखता है। (4) स्व-पर में प्रकृष्ट भावना (प्र+भावना=प्रभावना) करता है। इसके साथ-साथ निम्नोक्त भावना एवं व्यवहार से युक्त होता है।

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, किलस्त्वेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

हे भगवान्! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुणा भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्य भाव) रहे।

आत्मवत्परत्र कुशलवृत्ति चिन्तनं शक्तिस्त्याग तपसी च
धर्माधिगमोपायाः (नीति वाक्या.)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण) चिन्तवन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

“सर्वेसत्वेषु हि समता सर्वाचरणानां परमं चरणम् ॥”

समस्त प्राणियों में समता भाव रखना एवं उनकी रक्षा करना सभी सत्कर्तव्यों में सर्वोत्तम कर्तव्य है।

“सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमान्युयात् ॥”

संपूर्ण जीव—जगत् सुखी, निरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहें। कोई भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करें। जब विश्व के एकेन्द्रिय से लेकर पशु—पक्षी, नारकी, पापी से भी जो जैनी मित्रता का भाव रखता है तब वह चतुर्विध संघ से घृणा, भेदभाव कैसे रख सकता है? कदाचित् भी नहीं रख सकता है। जो रखता है वह जैनी नहीं है—वह छैनी है—जो स्वयं के गुणों को एवं चतुर्विध संघ को छिन्न—मिन्न

(हत्या) करता है। गुण—गुणी से प्रमोद, वात्सल्य, बहुमान, विनय, समर्पण, सेवाभाव के परिवर्तन में जो ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा भाव रखता एवं करता है वह घोर मिथ्यादृष्टि है, नीच गोत्र, असातावेदनीय आदि पापकर्म बांधता है। उपसर्ग—परीषह—रोग—तकलीफ से युक्त चतुर्विध संघ या किसी भी प्राणी के प्रति वात्सल्य, दया, करुणा या अभयदान गुण से युक्त होकर सेवा, वैयावृत्ति, दान, रक्षा करना जैनी का एक प्रमुख धर्म है। क्योंकि यह तो यथार्थ से विधिपरक प्रायोगिक अहिंसा है। परन्तु ऐसी परिस्थिति में भी जो सेवा दान आदि के परिवर्तन में निन्दा, आक्षेप करता है वो जैनी होना तो दूर है सामान्य मानवीय गुण से भी दूर है, लोभी है, हिंसक है।

मौन रहो या सत्य कहो की साधना तथा मेरा अनुभव

मौन रहना या सत्य (हित—मित—प्रिय) बोलना महान् गुण होने के साथ—साथ ऐसी प्रवृत्ति का होना कष्ट साध्य है। क्योंकि यह प्रवृत्ति भौतिक—शारीरिक से अधिक मानसिक—आध्यात्मिक है। अतएव इसकी प्राप्ति के लिए शारीरिक साधना से अधिक मानसिक—आध्यात्मिक साधना की आवश्यकता होती है और शारीरिक साधना से मानसिक—आध्यात्मिक साधना सूक्ष्म आंतरिक होने से कष्ट—साध्य है। तथापि यह असंभव नहीं है किन्तु ज्ञान—वैराग्य—समता—अभ्यास से साध्य है। एतदर्थं वस्तुस्वरूप—आत्मस्वरूप का ज्ञान, संसार—शरीर—भोग—आसक्ति से वैराग्य; शत्रु—मित्र—लाभ—अलाभ निन्दा—प्रशंसा—अनुकूलता—प्रतिकूलता आदि से अप्रभावित रहते हुए और इन सबके लिए दृढ़ विश्वास, ज्ञान, ध्यान, चिन्तन, मनन, संयम, अनुशासन, धैर्य, सहिष्णुता, दृढ़ता, स्थिरता आदि रूपी दीर्घ—सतत अभ्यास की अनिवार्यता है। जब तक मन—आत्मा में क्षोभ, आवेग—आवेश, तनाव, संक्लेष, चिन्ता, दुःख, भय, ताप, पाप, तृष्णा, चंचलता, दुर्बलता, असहिष्णुता, खिन्नता, प्रतिशोध की ज्वाला, लालसा आदि अस्थिरता उत्पन्न करने वाली वैभाविक शक्ति है तब तक मौनादि की प्रवृत्ति

संभव नहीं है। क्योंकि मौनादि शारीरिक—वाचनिक—मानसिक तथा आध्यात्मिक होता है जो कि ध्यान की पूर्वावस्था है या ध्यानावस्था है अर्थात् धर्म ध्यान/शुभ ध्यान है जिसकी साधना से श्रेष्ठ ध्यान होता है। रागद्वेष—द्वयी—दीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा ।

अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसारात्मौ भ्रमत्यसौ ॥ (11) इष्टोपदेश

Tied to the long rope intwined with (the strand of) attachments and aversions, the soul is whirled about in the ocean of Samsara (transmigratory existence) for immeasurable time, led by ignorance!

इष्ट वस्तु के प्रति राग और अनिष्ट वस्तु के प्रति द्वेष करता हुआ यह जीव दुःख के कारणभूत कष्ट से पार होने योग्य द्रव्यादि पंच प्रकार के भवरूपी समुद्र में सुदीर्घ काल तक परिभ्रमण करता है। शक्ति—व्यक्ति रूप से दोनों राग—द्वेष की प्रवृत्ति बताने के लिए द्वयी ग्रहण किया गया है और शेष दोष इन दोनों दोषों से प्रतिबद्ध हैं। कहा भी है—

यत्र रागः पदं धत्ते, द्वेषस्तत्रेति निश्चयः।
उभावेतो समालम्ब्य, विक्रमत्यधिकं मनः ॥

जहाँ राग अपने पद को धारण करता है वहाँ निश्चय से द्वेष होगा ही। दोनों मिलकर मन को अत्यधिक विकार युक्त कर देते हैं। और कहा भी—

आत्मनि सति परसंज्ञा स्व—पर—विभागात्परिग्रहद्वेषौ ।
अनयोः सम्प्रतिबद्धाः सर्वे दोषाश्च जायन्ते ॥

क्योंकि जहाँ आत्मा में अपनेपन की कल्पना है वहाँ पर संज्ञा रहती ही है। यह मेरा है और यह दूसरे का है, इस तरह का स्व और पर का विभाग है तो वहाँ पर नियम से राग—द्वेष है और जहाँ पर दोनों रहते हैं वहाँ पर अन्य दोष अनायास ही उग जाते हैं, क्योंकि अन्य दोषों की उत्पत्ति का मूल कारण राग—द्वेष है, सभी दोष राग और द्वेष से परिपूर्ण हैं। जीव की यह राग—द्वेष परम्परा ही संसार परिभ्रमण का कारण है।

कामजे चित्तविभं शस्तन्द्राऽऽलस्यस्यम भोजनम् ।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥(28)

काम ज्वर में चित्तविभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, भोजन की अनिच्छा, हृदय प्रदेश में वेदना तथा मुख का सूखना ये लक्षण होते हैं।

भयात् प्रलापः शोकाच्च भवेत् कोपच्च वेपथुः ।

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥(29)

भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदन कम्पनम् ॥ (सु.उ.त.अ. 39)

भयज तथा शोकज ज्वर में प्रलाप (delirium) होता है। क्रोधजन्य ज्वर में कम्पन होता है। अभिचार और अभिशाप जन्य ज्वर में मूर्छा तथा प्यास होती है, भूताभिषङ्गज ज्वर में घबराहट, कभी हँसी और कभी रोने की प्रवृत्ति तथा कंपन होता है।

राग, द्वेष, धृणा, ईर्ष्या आदि भावों को यथासंभव कम करता हुआ जब जीव तनाव रहित होता हुआ प्रशस्त भाव से एक ध्येय में अपने मन का एकेन्द्रीकरण करके सुध्यान करता है तब पूर्व संचित पापकर्म शिथिल हो जाते हैं तथा कुछ पापकर्म जीव से झङ्ग जाते हैं जिसके कारण जीव को मानसिक शांति के साथ—साथ शारीरिक आरोग्य की उपलब्धि होती है। ध्यान तंत्र की अमर कृति “ज्ञानार्णव” में शुभचन्द्राचार्य ने कहा भी है—

इदमत्यन्तनिर्वदविवेक प्रशमोदभवम् ।

स्वात्मानुभवमत्यक्षं योजयत्यङ्गिनां सुखम् ॥(13)

(ज्ञाना. पृ. 671)

अतिशय संसार व शरीरादि से विरक्ति, भेदविज्ञान और राग—द्वेष के उपशम से उत्पन्न होने वाला वह धर्मध्यान प्राणियों के स्वानुभव—गम्य अतीन्द्रिय सुख से संयुक्त कराता है।

अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभोमूत्रपुरषिमल्पम् ।

कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥

(ज्ञाना. पृ. 672)

विषय लम्पटता का अभाव, निरोगता, दयालुता, शरीर की उत्तम गंध, मूत्र व मल की अल्पता, शरीर में दीप्ति, प्रसन्नता और स्वर की मधुरता, ये योगी के ध्यान में प्रवृत्त होने के चिह्न (पहिचान) हैं।

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौतेय वैराग्येषा च गृह्णते ॥ (35)

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः । (36) अध्याय-6

हे महाबाहु अर्जुन! इसमें संदेह नहीं, कि मन चंचल है और उसका निग्रह करना कठिन है, परन्तु हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से वह स्वाधीन किया जा सकता है। मेरे मत में जिसका अन्तःकरण काबू में नहीं, उसको (इस साम्य बुद्धिरूप) योग का प्राप्त होना कठिन है, किन्तु अन्तःकरण को काबू में रखकर प्रयत्न करने पर, उपाय से (इस योग का) प्राप्त होना संभव है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम् ।

स पश्यत्यत्यालस्तत्त्वं तत्तत्वं नेतरो जनः ॥ (35) समाधि तंत्र

जिस पुरुष का मनरूपी जल, राग—द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः ।

धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः ॥ (36)

मोह—मिथ्यात्व और राग—द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग—द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रांति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग—द्वेष मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए, राग, द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मैला मन नहीं करना चाहिए।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः ।

तदैव ज्ञानं संस्कारै, स्वतस्तत्त्वेऽतिष्ठते ॥ (37)

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में रहकर इन्द्रियों के विषय—भागों में फंस जाता है वही मन आत्मा और शरीर के भेद—विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म—स्वरूप में ठहर जाता है।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः ।

नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥ (38) समाधि तंत्र

जिस मनुष्य के मन में मोह, राग—द्वेष का विकार है उस मनुष्य के अपमान या अवज्ञा करना, अहंकार करना, ईर्ष्या करना, क्रोध करना इत्यादिक भाव होते हैं और जिस मनुष्य के मन में विक्षेप द्वेषादि नहीं है उसके अपमान, अहंकार, ईर्ष्या, लोभादिक दुर्भाव नहीं होते हैं।

वैराग्यं तत्त्वं विज्ञानं नैग्रंथं वशचित्तता ।

परीषहं जयश्चेति पंचं ते ध्यानं हेतवः ॥

(1) वैराग्य, (2) तत्त्व का परिज्ञान, (3) अंतरंग—बहिरंग ग्रन्थी शून्यता, (4) मन के ऊपर विजय, (5) परीषह, उपसर्ग, कष्टादि को समता रूप में सहन करता है। ये पाँच ध्यान के लिए कारण हैं।

तवसुदवदवं चेदा ज्ञाणरहघुरं धरो हवे जह्ना ।

तम्हा तत्त्यणिरदा तल्लद्वीए सदा होई ॥ (57) द्रव्यसंग्रह

तप, श्रुत और व्रत का धारक जो आत्मा है वही ध्यान रूपी रथ की धुरी को धारण करने वाला होता है। इस कारण हे भव्यजनों! तुम उस ध्यान की प्राप्ति के अर्थ निरंतर तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में तत्पर होवो।

As a soul which (practices) penances, holds vows and (has knowledge of) Scriptures, becomes capable of holding the axle of the chariot of meditation, so to attain that (meditation) be always engaged in the these three (i.e. penances, vows and sastras).

योगदर्शन में वर्णित अष्टांग ध्यान साधन—

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार ।

धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावड्गनि ॥ (29)

साधना पाद पृ. 241

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये 8 योग के अंक हैं।

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमा: ॥ (30)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये 5 'यम' कहे जाते हैं।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमा: ॥ (32)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर की विशिष्ट भक्ति) ये 5 'नियम' कहे गए हैं।

दीर्घकालासेवितो निरन्तरासेवितः सत्कारासेवितः तपसा ब्रह्मचर्येण विद्या श्रद्धया च सम्पादितः सत्कारवान् दृढभूमिर्भवति।

दीर्घकाल तक एक अनुष्ठान किया हुआ, बिना व्यवधान के आसेवित (अर्थात् ऊपर से गिरने वाली जलधारा की भाँति निरवचिन्न) श्रद्धापूर्वक अनुष्ठित, शीतोष्णादि द्वंद्व सहिष्णुता, इन्द्रिय निग्रह, प्रणव आदि भगवन्नाम के जप रूप विद्याया शास्त्रों एवं गुरुवचनों पर श्रद्धा भक्ति द्वारा संपादित किया हुआ अभ्यास आदर का विषय होता हुआ दृढ़ अवस्था से संपन्न (वद्धमूल) होता है।

उपर्युक्त महान् मनोवैज्ञानिक—आध्यात्मिक उपाय के साथ—साथ और भी कुछ आलम्बनीय है। यथा—

आदहिदं कादब्वं यदि चेत पर हिदकादब्वं।

आदहिदं परहिदादो आदहिदं सुद्ध कादब्वं ॥

अर्थात् "आद दीपो भव पर दीपो भव" (पहले स्वयं प्रकाशित हो फिर दूसरों को प्रकाशित करो) के अनुसार पहले स्वयं का कल्याण करना चाहिए और संभव हो तो दूसरों का भी कल्याण करना चाहिए तथापि आत्महित—परहित में से आत्महित श्रेष्ठता से करना चाहिए। जैसा कि दीपक पहले स्वयं प्रकाशित होकर ही दूसरों को प्रकाशित कर सकता है अन्यथा नहीं वैसा ही जो स्वयं आदर्श बनते हैं वे दूसरों को आदर्श बना सकते हैं; या दूसरे स्वयं प्रेरित/प्रभावित होकर आदर्श बनते हैं। जैसा कि स्वच्छ आदर्श (दर्पण) में मनुष्य आदि का प्रतिबिंब स्वयं प्रतिबिंबित हो जाता है न कि दर्पण को बलात् प्रतिबिंबित करना पड़ता है। स्वयं दर्पण में तो योग्य क्षेत्र, परिस्थिति

में योग्य वस्तु का प्रतिबिंब स्वयं पड़ता है किन्तु अस्वच्छ दर्पण को वस्तु के पास रखने पर भी प्रतिबिंब नहीं पड़ता है वैसा ही अयोग्य व्यक्ति कुछ कहता है तो भी उसे कोई नहीं मानते हैं। स्वच्छ दर्पण में भी अयोग्य क्षेत्र—परिस्थिति की वस्तु प्रतिबिंबित नहीं होती है या अयोग्य वस्तु (अमूर्तिक, सूक्ष्म, पारदर्शी वस्तु) भी प्रतिबिंबित नहीं होती है वैसा ही आदर्श महापुरुषों के उपदेश से भी अयोग्य व्यक्ति (अभव्य, निकाचित—घनपाप कर्म से युक्त जीव) भी आदर्श नहीं बनता है, उपदेश नहीं सुनता है। जिस प्रकार कि सामान्य अशुद्ध स्वर्ण पाषाण अग्नि से तपकर शुद्ध हो जाता है, सामान्य मूँग अग्नि—पानी से सिङ्गता है परन्तु अंध स्वर्ण पाषाण अग्नि से भी शुद्ध नहीं होता है और वटरा मूँग (गांगडू/मट्ठर) अग्नि—पानी से सिङ्गता नहीं है उसी प्रकार अयोग्य व्यक्ति भी उपदेश का सदुपयोग नहीं करता है। यहाँ तक कि तीर्थकर, गणधर, बुद्ध, ईसा मसीह, सुकरात, ऋषि, मुनि आदि के उपदेश भी सब नहीं मानते हैं तब अन्य की कहना ही क्या है? कहा भी है—

सदगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमै ।

तब कछु बने उपाय, कर्म चोर आवत रूकै ॥

अर्थात् मोहकर्म जब मंद होता है तब जीव सत्गुरु का उपदेश सुनकर सुधरता है न कि तीव्र मोहकर्म के उदय रहते हुए, ऐसी परिस्थिति में उपदेश देना केवल व्यर्थ नहीं होता अनर्थ भी होता है। कहा भी है—

सीख ताको दीजिए, जाको सीख सुहाय ।

सीख न दीजे बांदरा, घर बया को जाय ॥

नाज्ञो विज्ञत्व मायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।

निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धमास्तिकायवत् ॥ (35) आध्या.मनो.

Those not get qualified for the acquisition of truth cannot become the knowers of truth; the knowers of truth cannot become devoid of it; external teachers are useful like eyther which is but helpful in the motion (of moving things).

हे भद्र! तत्त्वज्ञान जो प्राप्त करने में आयोग्य जो अभव्य है वह हजारों धर्माचार्यों के उपदेश से भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिसमें जो स्वभाव है वह स्वभाव की ही अभिव्यक्ति बाह्य क्रिया—निमित्त से होती है परन्तु जिसमें जो स्वभाव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति सैकड़ों क्रियाओं से भी नहीं हो सकती है। जैसे कि तोता को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है परन्तु बगुला नहीं पढ़ सकता है। उसी प्रकार जो अंतरंग में—विज्ञप्ति की शक्ति रखता है वही अभिव्यक्ति रूप से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है वह हजारों से भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभष्टि ज्ञापकत्वतः।

स्वयं हित प्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥ (34)

जो शिष्य निश्चय से सतत कल्याण चाहते और उसके जिज्ञासा के अनुसार उपाय बताते हैं तथा जो अप्रवृत्तमान हैं उन्हें प्रवृत्तन करते हैं उन्हें निश्चय से गुरु कहते हैं। इसी प्रकार होने पर आत्मा का गुरु आत्मा ही है। क्योंकि स्वयं आत्मा स्व—मोक्ष सुख की अभिलाषा करता है अर्थात् मोक्ष सुख मुझे मिले ऐसे सत् प्रशंसनीय आकांक्षा को करता है। स्व—आत्मा स्वयं के लिए मोक्ष सुख की जिज्ञासा करता है, जिज्ञासित मोक्ष सुख का उपाय को आत्म विषय में ज्ञापन देता है अर्थात् मोक्ष सुख का उपाय सेवन करो! ऐसे बोध देता है। तथा मोक्ष सुखोपाय में स्वयं को नियुक्त करता है। इसी प्रकार सुदुर्लभ मोक्ष सुख उपाय में यह दुरात्म अभी प्रवृत्त नहीं हुआ है। ऐसे मोक्ष सुख में अपवर्त्तमान आत्मा को स्वयं आत्मा प्रवृत्तमान करता है इसलिए निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है।

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।

अपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्॥ (32)

हे भव्य! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया है अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि पर द्रव्य हैं, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित है। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था

में लोग दूसरों का उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते हैं।

हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व—उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुए हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो। जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुमने भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लगे हुए हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का, अभिमान ढो रहे हो; गधा अपने पीठ पर चंदन की लकड़ी का भार केवल ढोता रहता है परन्तु चंदन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है। इसी प्रकार जीव शरीर, संपत्ति, कुटुम्ब का भार ढोता रहता है परन्तु आत्मा का आनंद अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बड़प्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है। उस धन के कारण वह स्वयं को बड़ा मान लेता है और दूसरे लोग भी उसको बड़ा मान लेते हैं।

मेरी साधना एवं अनुभव-

उपर्युक्त वर्णन केवल पुस्तक में ही नहीं है अपितु कुछ मेरा अनुभवगम्य भी है। मैं (लेखक) प्रायः बाल्यकाल से 6 वर्ष की आयु से अकेला ही सोना, अध्ययन, मनन, चिंतन, ध्यान, लेखन करता हूँ; एकांत सेवन एवं मौन धारण करता हूँ। बाल्यकाल से (9–10 वर्ष की आयु से) भोजन, शौच, मूत्र त्याग, अध्ययन, लेखन आदि के समय में मौन रखता हूँ अनावश्यक विकथा, गप्पाष्टक—4 विकथा को बोलना—सुनना) लड़ाई—झगड़ा, अनावश्यक वाद—विवाद—तर्क—वितर्क—कुतर्क, वाचालता, दूसरों के मध्य में बोलना, अनावश्यक दूसरों की बात को काटना आदि नहीं करता हूँ। ब्रह्मचारी अवस्था से रात को एवं मध्याह्न में सामायिक से लेकर 2 बजे तक मौन रखने लगा। छुल्लक अवस्था (1978) से 5 प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर प्रायः मौन रहने लगा। मुनि अवस्था (1981) से कभी 15 दिन तो

कभी 1–1½ महीना तक पूर्णतः या 5 प्रकार के स्वाध्याय के अतिरिक्त अन्य समय में मध्य–मध्य में मौन रखता हूँ। 1995 से लेकर 1996 तक 5 प्रकार के स्वाध्याय एवं विशेष परिस्थिति को छोड़कर एक वर्ष का मौन रखा। उसके उद्यापन या सतत् अभ्यास के लिए प्रायः प्रत्येक चतुर्दशी को (प्रतिक्रमणादि के अतिरिक्त) मौन एवं एकान्तवास में रहता हूँ। केंशलौच के दिन भी प्रायः पूर्ण मौन रखता हूँ एवं एकान्तवास में रहता हूँ। गरमी के प्रायः 1½–2 महीना 5 प्रकार के स्वाध्याय के अतिरिक्त अन्य समय में मौन रखता हूँ। ग्राम से ग्रामान्तर के विहार में, लंबा विहार में भी प्रायः मौन रहता हूँ। स्वाध्याय, शिविर, संगोष्ठी, प्रश्नमंच, प्रवचन, सामूहिक तत्त्वचर्चा आदि के अतिरिक्त अन्य समय में अनावश्यक बोलना तो छोड़ों सामान्य प्रश्नों से लेकर धार्मिक प्रश्नों का भी उत्तर नहीं देता हूँ तथा निर्धारित समय में अनुशासन तथा शालीनता से सामूहिक स्वाध्यायादि में संदर्भ के अनुसार जिज्ञासु रूप से प्रश्न करने के लिए प्रेरित करता हूँ। इससे मेरा समय–शक्ति आदि का बचाव हो जाता है, अनेक लोगों को एक साथ ज्ञान–लाभ हो जाता है, मित वचन का भी पालन होता है, पुनरावृत्ति करने से भी बच जाता हूँ। इससे दूसरे लोगों को भी समयानुबद्धता, अनुशासन, समय का महत्व भी प्रायोगिक रूप से समझने में आता है।

उपरोक्त साधना के साथ–साथ मेरी सनम्र सत्यग्राहिता, उदारता, समता, सहिष्णुता, निस्पृहता, पक्षपात रहितता, व्यापकता, प्रगतिशीलता, समन्वय एकता की प्रवृत्ति, परीक्षा–प्रधानता, वैज्ञानिक–गणितीय पद्धति एवं दृष्टि, ख्याति–पूजा–प्रसिद्धि–धन–जन–लोकेषण से रहितता, विश्व मैत्री, विश्व शांति की भावना, अध्ययन–अध्यापन–लेखन–शोध–बोध की प्रवृत्ति, नई पीढ़ी को संस्कारित करने की भावना, सादा जीवन उच्च विचार पद्धति, प्रकृति, संस्कृति–सहज–सरलता–पवित्रता की रूचि के कारण मुझे शांति–आत्मतृप्ति–सहजता–सरलता–लघुत (हल्कापन) स्फूर्ति की अनुभूति होती है, क्षयोपशम (ज्ञान–विवेक–विश्लेषण शक्ति, निर्णय क्षमता) पूर्वभास (स्वप्न, शकुन, अंग स्फुरण,

अन्तःप्रेरणा, चेतना में आभास) में वृद्धि हो रही है। इन सब कारणों से देश–विदेश के दि., श्वे.–जैन–अजैन सज्जन महानुभाव वैज्ञानिक, प्रोफेसर्स, जज, उद्योगपति आदि स्वेच्छा से तन–मन–धन–समय–श्रम से सहयोग देकर साहित्य प्रकाशन, शिविर, संगोष्ठी, विश्वविद्यालय में साहित्य कक्ष की स्थापना एवं शोध कार्य, विदेशों में धर्म प्रचार से लेकर विश्व धर्म संसद में प्रतिनिधित्व रूप में योगदान/सहयोग कर रहे हैं। उपरोक्त कारण के बिना यदि सत्ता–संपत्ति–प्रसिद्धि के लिए कथजिचत् उपरोक्त कार्य होते तो भी मुझे शांति–आत्मतृप्ति–सहज–सरलता का अनुभव नहीं होता तथा यह विकास विनाश के लिए कारण बन जाता। परन्तु “साँच को आँच नहीं”, “सत्यमेव जयते” के अनुसार सच्चाई एवं अच्छाई रूपी स्वर्ण अग्नि से और भी तपकर शुद्ध एवं चमकदार होता जाता है, परन्तु झूठ रूपी लकड़ी की हाण्डी दो बार चूल्हे पर नहीं चढ़ती है।

उपरोक्त वर्णन मैंने कोई अपना अहंकार प्रगट करने के लिए या दूसरों के ऊपर प्रभाव डालने के लिए नहीं किया है अपितु महापुरुषों ने जो आचरण किया तथा दूसरों के उपकार के लिए वर्णन किया है वह सब सत्य–तथ्य है; जिसे हम दीर्घ साधना के बल पर ही अनुभव कर सकते हैं तथा लाभान्वित हो सकते हैं, मेरा इस अनुभवजन्य सत्य को प्रगट करके प्राचीन आध्यात्मिक महापुरुषों के आचरण– उच्चारण को सत्य सिद्ध करके दूसरों के उपकार के लिए लिखा हूँ। क्योंकि पूर्वाचार्य ने कहा भी है—

सोच्चा जाणई कल्लाणं सोच्चा जाणई पाबगं।

उभयपि जाणई सोच्चा जं सेयं तं समाचरेऽ।।

सुनकर (पढ़कर भी) कल्याण को एवं पाप को, उभय को जानते हैं; जो आपके लिए श्रेयस्कर है वह आचरण करो।

मैंने लाखों गृहस्थों से लेकर साधु तक का अनुभव किया है, कि वे उपरोक्त अच्छे गुणों के बिना येन–केन प्रकार से रातोंरात सफलता, प्रसिद्धि, कार्यसिद्धि करना चाहते हैं जो अन्ततोगत्वा असफलता– कुख्यात – अशान्त – किंकर्तव्यविमूढ़ – कार्यनाशक –

अकृतकार्य होते हैं। वे भी शार्टकट, अयोग्य उपायों को छोड़कर दीर्घ साधना, योग्य उपायों को अपनाकर यथार्थ सफलता—सुख—शांति—सिद्धि को प्राप्त करें; यह भी मेरी भावना है।

इन सब कारणों से मैं जब भी सत्य के बारे में पढ़ाता हूँ तब पूर्ववत् या उससे भी अधिक रुचि से, उत्साह से विस्तारपूर्वक जोर देकर/महत्व देकर पढ़ाता हूँ जबकि अन्य विषयों को पूर्ववत् पहले के साधु—संत—विद्यार्थी आदि को नहीं पढ़ा पाता हूँ, पढ़ाने की रुचि (उत्साह) नहीं होती।

प्रस्तुत कृति की रचना स्थल—रामगढ़

रामगढ़ (2009) के चातुर्मास की उपलब्धियाँ—

प्रत्येक कार्य के लिए योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उपकरण, सहयोग आदि की आवश्यकता होती है। इस छोटे से ग्राम तथा छोटा सा जैन समाज में 2009 का चातुर्मास अनेक महान् उपलब्धियों से युक्त रहा है। यथा (1) पर्युषण में जिनसहस्रनाम विधान, (2) 11वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी, (3) आर्थिक सुप्रज्ञाश्री की दीक्षा, (4) 32वाँ शिविर, (5) मेरे अभी तक 6 ग्रन्थों का विमोचन, (6) प्रो. प्रभात द्वारा प्रकाशित 3 ताम्रपत्र ग्रन्थ तथा डॉ. तातेड़ी के एक ग्रन्थ का विमोचन, (7) विश्व धर्म संसद (आस्ट्रेलिया मेलबोर्न) में डॉ. कच्छारा का प्रतिनिधित्व एवं उद्बोधन, (8) कषाय—पाहुड़ का संशोधित प्रकाशन कार्य का प्रारंभ, (9) डॉ. तातेड़ के प्रयास से नवीन 8 प्रदेशों के 18 विश्वविद्यालयों में “आचार्य कनकनंदी साहित्य कक्ष” की स्थापना, (10) डॉ. बी.एल. सेठी के निर्देश में नवीन एक शोधार्थी द्वारा शोध प्रारंभ, (11) नीतिवाक्यामृत के प्रायः 700–800 पेज का लेखन के साथ—साथ और 2–3 ग्रन्थों का लेखन कार्यारंभ, (12) ब्र. तरुण जैन का मेरे से दीक्षा लेने के लिए निवेदन पूर्वक श्रीफल अर्पण आदि अनेक कार्य संपन्न हुए हैं और हो रहे हैं। इन सब कार्यों के लिए यहाँ के लोगों का योगदान तथा निम्नोक्त विशेषताएँ भी सहयोगी हैं।

रामगढ़ की विशेषताएँ—

- (1) आगमनिष्ठ—यहाँ पर आगमोक्त पूजा—पाठ की परंपरा है।
- (2) यहाँ के लोग सरल स्वभावी हैं। (3) ग्रामीण संस्कृति के अनुसार सहज जीवन शैली। (4) शांतिप्रिय व्यवहार एवं वचन। (5) गुरुओं के प्रति बहुमान युक्त आदर—सत्कार—भक्ति। (6) बाहर से पधारे आगन्तुक अतिथियों के लिए आदर—सत्कारपूर्ण भोजन—निवास आदि की व्यवस्था। (7) साधु—संत—अतिथि तथा मंदिर के कर्मचारियों की स्वेच्छा से उत्तम व्यवस्था। (8) शक्ति के अनुसार या शक्ति से भी अधिक वात्सल्यमयी माता के समान आहारदान, अतिथियों के लिए भोजन—निवास दान, विधान आदि के लिए आर्थिक सहयोग। (9) धार्मिक अक्षुण्ण परंपरा। (10) आधुनिक कुसंस्कार (फैशन—व्यसन से रहित) जीवन्त संस्कृति। (11) अच्छाई एवं सुधार के लिए मेरे द्वारा डॉटने पर बुरा न मानकर शक्कर जैसे मीठा मानकर आनंदित होना। (12) यहाँ के बच्चे और बच्चियों में परस्पर प्रेम होने के कारण वे समय—असमय, आवश्यक या अनावश्यक अधिक हँसते हैं।

उपरोक्त कारण से हमारे चातुर्मास के पहिले पाँच चातुर्मास हो चुके हैं, हमारा चातुर्मास छठा चातुर्मास है। अभी तक चातुर्मास में हम करीब साढ़े छः मास प्रवास करने के बाद भी छः दिन के प्रवास जैसा अनुभव हो रहा है। इतना ही नहीं चातुर्मास की अवधि में दूर—दूर से मेरे प्रोफेसर, वैज्ञानिक शिष्यादि 2–3 बार यहाँ आकर 2 से 15–20 दिन तक यहाँ रुके हैं तथापि उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ या असुविधा नहीं होने के कारण वे बार—बार यहाँ आना भी चाहते हैं। यहाँ आकर उन्हें प्रसन्नता होती है। इतना ही नहीं इन सब विशेषताओं के कारण मुझे और हमारे संघ को भी प्रसन्नता और शांति मिल रही है। इसीलिए यहाँ—पुनः—पुनः आने के लिए व चातुर्मास करने की मेरी व संघ की भावना हो रही है। क्योंकि यहाँ की विशेषताएँ और यहाँ से विश्व स्तर पर हो रही प्रभावना इसके लिए प्रेरित कर रही है। उपरोक्त कारणों से रामगढ़ में प्रेम, मैत्री, एकता है, इन सब कारणों से यहाँ अधिक साधु आते हैं एवं उनके वर्षायोग भी होकर अधिक दिनों तक रुकते हैं।

दीपक के नीचे अंधकार के समान कुछ कमियाँ भी हैं। यथा—
(1) समय पर धार्मिक कार्यक्रम में नहीं आना। (2) अनुशासन में कार्य करने की पद्धति में कमी। (3) पढ़ाई का दबाव (दिखावा और ढाँग भी) दिखाई देता है। (4) जिज्ञासापूर्वक एकाग्रता से किसी भी विषय को सुनने, सीखने की प्रवृत्ति भी कम पाई जाती है, इन सब कारणों से स्कूली पढ़ाई के अतिरिक्त द्यूशन आदि करना पड़ता है। इसलिए यहाँ की अच्छी विशेषताएँ व परिस्थितियाँ होने पर भी यहाँ के विद्यार्थी तथा शिक्षकगण प्रवचन, आरती, आहारदान, प्रश्नमंच, शिविर, संगोष्ठी आदि में अपेक्षाकृत कम भाग ले पाते हैं और कम लाभान्वित हो पाते हैं क्योंकि वे केवल पढ़ाई को ही संपूर्ण जीवन का लक्ष्य मानते हैं। इसीलिए पढ़ाई, द्यूशन को अनावश्यक अधिक महत्व देते हैं। उसमें ही वे अस्त-व्यस्त रहते हैं। इसलिए जो विद्यार्थी में गुणवत्ता होनी चाहिए वह सब यहाँ भी कम पाई जाती है। यह समस्या केवल यहाँ की नहीं है किन्तु प्रायः संपूर्ण भारत की है। अन्यत्र विद्यार्थी, शिक्षक से लेकर शिक्षितों में जो फैशन, व्यसन, अहंकार, दिखावा, उद्दण्डता से लेकर घर से भाग जाना, आत्महत्या करना है, वह सब यहाँ नहीं पाई जाती है। उपरोक्त चार कमियाँ दूर होने के बाद रामगढ़ मेरी दृष्टि में राम का गढ़ है अथवा पूरे भारत का सर्वश्रेष्ठ आदर्श ग्राम है। इसलिए इस ग्राम को मैं शांति-शालीनता का आदर्श ग्राम मानता हूँ।

उपरोक्त गुण-दोष लिखने का उद्देश्य यहाँ के लोग यहाँ की कमियाँ माने व जाने तथा विशेषताओं को बढ़ाएँ व कमियों को दूर करें। इन सब कारणों से यहाँ के विद्यार्थियों व बच्चियों आदि को बोला भी हूँ और डाँटा भी है। यहाँ के लोग डाँटने पर अधिक अच्छा मानते हैं और सुधार भी करते हैं। इन सब कारणों से जहाँ भी ग्राम से लेकर नगर, महानगर में जाता हूँ वहाँ के विद्यार्थी से लेकर शिक्षक एवं शिक्षित वर्ग को सामान्य व्यक्तियों से भी अधिक महत्व देकर उन्हें विभिन्न विषयों का अध्ययन शिविर, कक्षा आदि के माध्यम से करता हूँ एवं कराता हूँ, उन्हें संस्कारित करने के लिए उनसे आहार भी लेता हूँ; साहित्य लेखन कार्य में योगदान के लिए प्रेरित करता हूँ क्योंकि

आज के बच्चे कल के राष्ट्र निर्माता हैं एवं शिक्षक राष्ट्र निर्माता के भी निर्माता हैं तथा शिक्षित वर्ग राष्ट्र के कर्णधार होते हैं।

इसके माध्यम से मैं रामगढ़ वालों को तथा राजस्थान से लेकर भारतीयों को आह्वान करता हूँ, शुभाकांक्षाओं के साथ शुभकामनाएँ देता हूँ कि वे सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विशेषताओं को अपनाते हुए महान् बने व स्व-पर विश्व कल्याण करें। इस कृति की रचना में सहयोगी मुनिश्री सुविज्ञसागर जी, मुनिश्री आध्यात्मननंदी जी, ब्र. तरुण, विजय, जितेन्द्र, अर्पित, दीक्षान्त, खुशबू, दीपिका, लीना, स्वीटी, विवेक, आदित्य (रामगढ़) को तथा ज्ञानदानी द्रव्यदाता श्री लालचंदजी बंधु श्री रवीन्द्रजी जैन (महाराष्ट्र) को यथायोग्य प्रतिनिमोऽस्तु, शुभाशीष, शुभकामना है। अखिल जीव-जगत् सत्य, न्याय, समता, प्रेम, सहअस्तित्व के बल पर चिर सुख-शांति प्राप्त करें ऐसी मंगलकामना के साथ!

आचार्य कनकननंदी

दिनांक 16.01.2010

माघ सुदी प्रतिपदा, शनिवार

रामगढ़ (झूंगरपुर) राज.

सत्य-असत्य का स्वरूप एवं उसके फल

सत्य ही सार्वभौम, सार्वकालिक, त्रैकालिक अबाधित होने के कारण समस्त विश्व से लेकर राष्ट्रीय, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, स्थिति, समृद्धि, शांति भी सत्य में निहित है। वस्तु स्वरूप, स्वशुद्ध आत्मस्वरूप सत्य होने के कारण सत्य में किसी भी प्रकार की विकृति, समस्या संभव नहीं है। निश्चयतः स्व-आत्मस्वरूप में स्थित होना परम सत्य है जिसे मोक्ष, निर्वाण, ईश्वरत्व कहते हैं। व्यवहारतः दूसरों की सत्ता, संपत्ति, विभूति, प्रसिद्धि, बुद्धि, कृति, जग्मीन आदि का अनैतिकतापूर्वक अपना नहीं मानना एवं नहीं बनाना, सत्य है। दूसरों की सत्ता-संपत्ति आदि को स्वीकार करना एवं मान्यता देना भी सत्य है। पूर्वोक्त दोषों से रहित होकर यथार्थ स्वरूप को स्वीकार करना सत्य है। इससे व्यक्तिगत कलह, तनाव से लेकर राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय कलह, तनाव, कानूनी लड़ाई, वैमनस्य, पक्षपात आदि समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ (30)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहे जाते हैं।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ (36)

सत्य विषय प्रतिष्ठा की प्राप्ति होने पर शुभाशुभ क्रिया से होने वाले धर्माधर्म एवं इस धर्माधर्म का फल स्वर्ग-नरकादि का आश्रय योगी बन जाता है।

जिस समय जीव असत्य, हिंसादि पाप करता है उस समय में उसका भाव दूषित होने के कारण जो कर्मास्रव होता है, वह कर्मास्रव पाप प्रकृति रूप में परिणमन कर लेता है। यह पाप ही उस पापी को अनेक प्रकार का दुःख देता है। पाप प्रवृत्ति के समय जो दूषित भाव होता है उससे मानसिक-तनाव, मानसिक उद्वेग, चिन्ता, भय आदि

उत्पन्न होते हैं जिसके कारण उसे तत्काल भी मानसिक कष्ट एवं यातनाएँ मिलती हैं जिससे विभिन्न मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोग होता है। जैसे—बल्ड प्रेशर बढ़ना, सिरदर्द, कैंसर, टी. बी., हृदयगति रुकना (हार्ट फेल), उन्माद, पागलपन आदि रोग होते हैं। इतना ही नहीं इस लोक में ही अपमान, प्रताड़ना, जेल जाना, सामाजिक प्रतिष्ठा का हास, अविश्वास, शत्रुता, कलह यहाँ तक कि प्राण दण्डादि कष्ट मिलते हैं। जो हिंसा करता है उसके फलस्वरूप इस जन्म में उसकी हिंसा हो सकती है, पर जन्म में अकाल-मरण, रोग आदि यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं।

झूठ बोलने से दूसरों का विश्वास झूठ बोलने वाले पर से उठ जाता है, जिहवा छेद आदि दण्ड मिलता है। केवल एक बार झूठ बोलने पर राजा वसु का स्फटिकमय सिंहासन फट गया। वह नीचे गिरा तथा पृथ्वी भी फट गई और वह पृथ्वी में समावेश होकर नरक में गया। मिथ्या बोलने वाला परम्भव में गूँगा (मूक) होता है, मुँह में घाव होता है और मुँह में से बदबू आती है।

असत्य बोलने वाले व्यक्ति की जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है और वह सामान्य रोग का भी भोगी बन जाता है। जीवन शक्ति आधार 'तेज' है और वह तेज असत्य से नष्ट हो जाता है। असत्य बोलने वाला तेज हीन हो जाता है साथ ही असत्य बोलने से हृदय और मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं की हानि होती है। कुछ समय पश्चात् वह हृदय के रोग, पागलपन, पथरी, लकवा आदि रोगों से भी दुःखी हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। असत्य चिन्तन, कथन, व्यवहार, लेखन आदि से मस्तिष्क, बुद्धि को अतिरिक्त शक्ति का उपयोग अथवा यथार्थ से कहे तो दुरुपयोग करना पड़ता है। संक्लेश, तनाव, भय, व्यग्रता, ग्लानि, अस्थिरता, मानसिक चंचलता, अशांति आदि झेलना पड़ता है।

कपट करने वाला व्यक्ति भी सूक्ष्म रूप से हिंसा ही करता है। परन्तु उसकी हिंसा करने की युक्ति मायामय-कपटमय होने से दिखायी नहीं देती। वह असाधारण विष-जैसी होती है। इससे ऐसे

मनुष्य भी ऊपर वर्णित हिंसा, झूठ वाले व्यक्ति के, समान ही रोगों का शिकार बन जाते हैं। परन्तु उसे जो रोगों को दण्ड मिलता है, वह धीरे-धीरे असर करने वाले विष के समान ही होता है। छल-कपट-झूठा व्यवहार, भाव करने वाला व्यक्ति इस भय से चिन्तित, व्यग्र, भयभीत रहता है। कहीं मेरे झूठ-छल-कपट प्रगट नहीं हो जावे—इससे अनेक दैहिक-मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं; जिसके कारण मँह से अधिक दुर्गम्भी आती है, भोजन सही रूप से पाचन नहीं होता है, कब्जियत (मलावरोध) रहता है, मल-मूत्र का विसर्जन देरी से होता है।

“मूक बनने का कर्म”—असत्य कथन

प्रजल्पन्ति वृथा येऽत्र विकथाः प्रत्यहं शराः।

दोषन्निर्देषिणां चार्हच्छत्सदगुरुधर्मिणाम् ॥ (108)

पठन्ति पापशा स्त्राणि स्वेच्छया च जिनागमम्।

विनयादि विना लोभख्यातिपूजादिवाज्ञया ॥ (109)

धर्मसिद्धान्तं तत्त्वार्थानयुक्तयाऽन्यान् दिशन्ति च।

ते ज्ञानावृतिपाकेन मूकाः स्युः श्रुतवर्जिताः ॥ (110)

जो शठ यहाँ पर प्रतिदिन वृथा ही विकथाओं को कहते रहते हैं, निर्दोष अर्हन्त, श्रुत, सदगुरु और धार्मिकजनों के मनगढ़न्त दोषों को कहते हैं, पापशास्त्रों को अपनी इच्छा से पढ़ते हैं और जिनागम को विनय आदि के बिना लोभ, ख्याति-पूजा आदि की इच्छा से पढ़ते हैं, जो धर्म, सिद्धान्त और तत्त्वार्थ का कुयकित्यों से अन्यथा रूप दूसरों को उपदेश देते हैं, वे जीव ज्ञानावरण कर्म के विपाक से श्रुतज्ञान से रहित मूक (गूँगे) होते हैं। (श्री वर्धमान चरित सप्तदस अधि.)

“बधिर बनने के कर्म”—

अश्रुतं परदोषादि श्रुतं वदन्ति चेष्या।

ऋणवन्ति परनिंदा ये विकथा दुःश्रुतिं जडाः ॥ (104)

केवल श्रुत सङ्घानं दूषणं चात्र धर्मिणाम्।

भवेयुर्बधिरास्ते कुञ्जानावरणपाकतः ॥ (105)

जो जड़ लोग नहीं सुने हुए भी पर दोषों को ईर्ष्या से कहते हैं, परनिन्दा, विकथा और शत्रुओं को सुनते हैं केवली भगवान्, श्रुत, संघ और धर्मात्माओं को दूषण लगाते हैं, वे कुञ्जानावरण कर्म के विपाक से बधिर (बहिरे) होते हैं। (श्री वर्धमान चरित)

मुख रोगी होने का कर्म—

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु देवि समाहिता।

कुवक्तारस्तु ये देवि जिहवा कटुकं भृशम् ॥

असत्यं परुषं घोरं गुरुन् प्रतिपरान् प्रति।

जिहवाबाधां तदान्येषां कुर्वते कोपकारणात् ॥

प्रायशोऽनृतभूतिष्ठा नयः कार्यवशेन वा ॥

तेषा जिहवाप्रदेशस्था व्याधया सम्बवन्ति ते ॥

महा.भा.दा.ध.पृ. 5965

देवी! एकाग्रचित्त होकर सुनों, मैं प्रसन्नचित्त से तुम्हें सब कुछ बताता हूँ जो कुवाक्य बोलने वाले मनुष्य अपनी जिहवा से गुरुजनों या दूसरों के प्रति अत्यन्त कड़वे, झूठे, रुखे तथा घोर वचन बोलते हैं, जो क्रोध के कारण दूसरों की जीभ काट लेते हैं अथवा जो कार्यवश प्रायः अधिकाधिक झूठ ही बोलते हैं उनकी जिहवा प्रदेश में ही रोग होते हैं।

कर्मरोगी होने का कर्म—

कुश्रोतारस्तु ये चार्थं परेषां कर्मनाशकाः।

कर्ण रोगान् बहुविधाल्लभन्ते ते पुनर्भवे ॥

जो पर दोष या निन्दायुक्त कुवचन सुनते हैं तथा दूसरों के कानों को हानि पहुँचाते हैं वे दूसरे जन्म में कर्ण संबंधी नाना प्रकार के रोगों का कष्ट भोगते हैं।

दन्तरोगशिरोरोग कर्णरोगस्तथैव च।

अन्येमुखाश्रिताः दोषाः सर्वे चात्मकृतं फलम् ॥

ऐसे ही लोगों को दन्तरोग, शिरोरोग, कर्णरोग तथा अन्य सभी

मुख संबंधी दोष अपनी करनी के फलस्वरूप से प्राप्त होते हैं।

उन्मत्तादि होने का कर्म—

भगवन् मानुषः केचिद् दृश्यन्ते मानुषेषु वै ।

उन्मत्ताश्च पिशाचाश्च पर्यटन्तो यतस्ततः ।

केन कर्मविपाकेन तन्मे शंसितुमर्हसि ॥

उमा ने पूछा—भगवन् मनुष्यों में से कुछ लोग उन्मत्त और पिशाचों के समान इधर—उधर घूमते दिखाई देते हैं। इनकी ऐसी अवस्था में कौनसा कर्मफल है? यह मुझे बताइये।

ये पुरा मनुजा देविदर्पहड्कार संयुक्ताः ।

बहुधा प्रलपन्त्येव हसन्ति च परान् भृशम् ॥

मोहयन्ति परान् भोगेर्मदनैर्लोभकारणात् ।

वृद्धान् गुरुश्च ये मूर्खा वृथैवापहसन्ति च ॥

शौण्डा विदग्धाः शास्त्रेषु तथैवानृतवादिनः ।

एवं युक्त समाचाराः पुनर्जन्मनि शोभने ।

उन्मत्ताश्च पिशाचाश्च भवन्त्येव न संशयः ॥

श्री महेश्वर ने कहा—देवी! जो मनुष्य पहले दर्प और अहंकार से युक्त हो नाना प्रकार की अंट—शंट बातें करते हैं, दूसरों की खूब हँसी उड़ाते हैं, लोभवश, उन्मत्त बना देने वाले भोगों द्वारा दूसरों को मोहित करते हैं, जो मूर्ख वृद्धों और गुरुजनों का व्यर्थ ही उपहास करते हैं तथा शास्त्र ज्ञान में चतुर एवं प्रवीण होने पर भी सदा झूठ बोलते हैं, शोभने! ऐसे आचरण वाले मनुष्य पुनर्जन्म लेने पर उन्मत्तों और पिशाचों के समान भटकते फिरते हैं, इसमें संशय नहीं है।

मनोविज्ञान के अनुसार अनेक शारीरिक रोगों के मूल कारण मानसिक रोग ही हैं। यह आधुनिक मनोविज्ञान का सिद्धांत भारतीयों के लिए नवीन नहीं है। परन्तु यह सिद्धांत अत्यंत प्राचीन एवं अति परिचित भी है। आधुनिक चिकित्सा की विभिन्न शाखाओं एवं उपशाखाओं भारतीय जनजीवन में धार्मिक शास्त्रों में, धार्मिक क्रियाकाण्डों में एवं

आयुर्वेद में यत्र—तत्र बिखरी पड़ी हुई हैं। निम्न में एक आयुर्वेद का सूत्र प्रस्तुत कर रहा हूँ—

नित्यं हिताहार विहार समीक्ष्यकारी विषयेष्वसत्ता ।

दाता समः परः क्षमावनाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ अष्टांग 36

जो सतत हितकर आहार, योग्य विहार करता है, विवेकपूर्वक परिणाम से विचार करके प्रत्येक कार्य करता है, पंचेन्द्रियजनित विषय में आसक्त नहीं होता है, यथायोग्य पात्र को यथायोग्य दान देता है, लाभ—अलाभ, शत्रु—मित्र में समता भाव धारण करता है। सत्यग्राही, क्षमावान्, देवशास्त्र—गुरु, गुणीजन—वृद्धजनों की सेवा करता है, वह निरोग होता है।

जैन धर्मानुतार रोग होने का मूल कारण पूर्व उपार्जित पापकर्म का कारण खोटा आचार—विचार है। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य के साथ—साथ मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए संपूर्ण पापकर्मों से निवृत्त होना आवश्यक है। इसलिए जैन आयुर्वेद कल्याण—कारक में जैनाचार्य उग्रादित्य ने संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए पापकर्मों से निवृत्त होने पर जोर दिया है। यथा—

कर्मों के उदय के लिए निमित्त कारण—

जीवस्वकर्मार्जितपुण्यपाप । फलं प्रयत्नेन विनापिभुंक्ते ।

दोषप्रकोपोपशमौ च ताम्या । मुदाहृतौ हेतुनिबंधनौ तौ (10) क.का.

यह जीव अपने कर्मोपार्जित पुण्य—पाप फल को बिना प्रयत्न के ही अवश्य अनुभव करता है। वातपित्तादि दोषों के प्रकोप और उपशम पापकर्म व पुण्यकर्म के फल को देने में निमित्त कारण है।

रागोत्पत्ति के हेतु—

सहेतुकास्सर्व विकार जाता । स्तेषां विवेको गुणमुख्यभेदात् ।

हेतुः पुनः पूर्वकृतं स्वकर्म । ततः परे तस्य विशेषणानि (11)

शरीर में सर्व विकार (रोग) सहेतुक ही होते हैं। परन्तु उन हेतुओं को जानने के लिए गौण और मुख्य विवक्षा से विवेक से काम लेने की जरूरत है। रागादि विकारों के मुख्य हेतु अपने पूर्वकृत कर्म हैं। बल्कि वे सब उसके विशेषण हैं अर्थात् निमित्त कारण है, गौण हैं।

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण क्या है?—तीव्र ध्वनि यदि सुनने को बाध्य किया जाता है तो निश्चित ही आपकी मनःस्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और स्वाभाविक है कि कोई भी शोरनुमा ध्वनि आपसे सहन नहीं होगी। अतः अब प्रश्न यह उभरकर आता है कि किस ध्वनि को आप शोर कहेंगे। गलत जगह, गलत समय और गलत ध्वनि ही वास्तव में शोर का रूप है और यह शोर ही ध्वनि प्रदूषण का मूल कारण है। यही शोर हमारे कानों के परदों तथा मस्तिष्क पर अत्यधिक हानिकारक प्रभाव डालता है। आज शोर की तीव्रता में वृद्धि हो रही है। भारतवर्ष में 1968 में शोर का स्तर 1938 स्तर से 32 गुना अधिक हो गया था। आज इसका स्तर कितने गुना बढ़ चुका है। इसकी कल्पना की जा सकती है। आज शोर का स्तर 1938 के स्तर से 100 गुना से अधिक होने से एक गंभीर समस्या बन गई है तथा चिंता का विषय बन गया है। शोर द्वारा होने वाली ध्वनि का वेग, उसकी गति तथा कम्पन द्वारा मापा जाता है। अलेकजेण्डर ग्राह्य बैल, जिसने टेलीफोन का आविष्कार किया था ध्वनि मापन के लिए एक स्केल दी थी जिसकी इकाई डी.बी. (डेसीबिल) कहलाती है। प्रायः एक व्यक्ति 70–80 डी.बी. तक ही ध्वनि सहन कर सकता है। इस तरह 80 डी.बी. तक सामान्य और औसत व्यक्ति की ध्वनि श्रवण क्षमता स्वीकार कर ली गई है। लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दिन में 45 डेसीबिल तक की ध्वनि को कर्णप्रिय तथा मानवीय स्वास्थ्य के लिए सर्वाधिक सुरक्षित बताया है।

ध्वनि प्रदूषण के मुख्य कारक—प्रायः इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है—

- (i) प्राकृतिक (Natural)
- (ii) मनुष्य द्वारा उत्पादित (Man Generated)
- (i) प्राकृतिक—इसके अंतर्गत प्रकोप जैसे आँधी, तूफान, भूकंप, तेज वर्षा तथा बिजली की कड़कझाहट आदि आते हैं।

(ii) मनुष्य द्वारा उत्पादित—

- (अ) परिवहन के साधनों द्वारा जैसे—ट्रक, बसें, कार, स्कूटर, हवाई जहाज तथा रेलगाड़ी द्वारा।
- (ब) मनोरंजन के साधनों—टी.वी. रेडियो, डिस्को संगीत आदि से।
- (स) पूजा स्थल से—हारमोनियम, ढोलक, लाउडस्पीकर आदि द्वारा।
- (द) सैनिक अभ्यास द्वारा—टैंक, मशीनगनें तथा हथगोले प्रयोग आदि से।
- (ड) कारखाने और उद्योगों द्वारा—मशीनें, साइरन, जेनरेटर आदि से।

अन्य साधनों से मकानों के निर्माण, आटे की चक्की, सिनेमागृह, नेताओं के भाषणों के आयोजन से घरेलू उपकरण द्वारा भी ध्वनि प्रदूषण होता है। ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव (Effect of Noise Pollution) (i) तेज आवाज से कान के पर्दे फट जाने का डर रहता है। इसके कारण, व्यक्ति को कम सुनाई देता है, कानों में सीटी का आवाजों का आना तथा कान का सुन हो जाना प्रायः हो जाता है। 100 डी.बी. ध्वनि के वातावरण में जीने को बाध्य व्यक्ति पूरी तरह से बहरेपन का शिकार हो जाता है। 160 डी.बी. शोर से कान का पर्दा फट जाता है और व्यक्ति सदैव के लिए बहरा हो जाता है।

(ii) ध्वनि प्रदूषण से उत्पन्न अन्य विकार है—सिरदर्द, उच्च रक्तचाप, अनिद्रा, हृदयगति का बढ़ना, श्वसन तीव्र होना, जी मचलाना, थकान अनुभव करना तथा स्वभाव से चिड़चिड़ापन होना। अत्यधिक शोर के कारण व्यक्ति शारीरिक रूप से उद्दोलित हो जाता है और अंत में आक्रमक हो जाता है।

(iii) व्यक्ति को ध्वनि प्रदूषण के समय अनुकूलन प्रक्रिया में परेशानी आती है। उसे इस समय अनुकूलन प्रक्रिया में अधिक मानसिक ऊर्जा (Psychic Energy) खर्च करनी पड़ती है जिसके

कारण वह अपनी कुंठाओं (Frustration) का सामना करने में असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार के परीक्षण ग्लास महोदय ने 1977 में किये हैं।

(iv) ग्लास एवं सिंगर (Glass and Singer) ने अपने अध्ययनों से स्पष्ट किया कि अत्यधिक शोर निष्पादन में अधिक बाधा डालता है और ध्यान विकेन्द्रीकरण करता है। इसके विपरीत संगीत बजने से कर्मचारी अधिक कार्य के लिए प्रोत्साहित होते हैं, समय तेजी से गुजरता, एकाकीपन दूर होता है और यह कार्य को सरल बनाता है।

(v) तेज शोर से वार्तालाप करने से स्वर यंत्र में सूजन पड़ जाती है तथा गले में खराश हो जाती है, पेट से लेकर गला, मुँह में तनाव—खींचाव के कारण दर्द होता है गला—मुँह सुखते हैं, प्यास अधिक लगती, मन—चंचल होता है, दूसरों को बाधा पहुँचती है, शालीनता, गंभीरता, मर्यादा, अनुशासन आदि भंग होते हैं।

(vi) ध्वनि प्रदूषण से आँखों की पुतली का आकार छोटा हो जाता है तथा रंग पहचानने की क्षमता में कमी आ जाती है तथा रात्रि में दृष्टि क्षमता कम हो जाती है। इसके अलावा शरीर की बाहरी त्वचा से रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने लगती है।

अध्याय-2

हितोपदेशी तथा श्रोता

(ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न उपाय—हितोपदेश)

महान् ज्ञान को प्राप्त करने के योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से युक्त शिष्य एवं गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है। क्योंकि शिष्य एवं गुरु के अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग सम्पूर्ण कारणों के सम्यक् समवाय से ही ऐसा महान् बोधि लाभ सम्भव है। यथा—

सर्व दुःख नाशकारी शिदा—

दुःखद्विभेषि नितरामभिवाऽछसि सुखमतोऽहमप्यात्मन् ।

दुःखापहारि सुखकरमनुशास्मि तवानुभतमेव ॥२ आत्मानु

हे आत्मन्! तू दुःख से अत्यन्त डरता है और सुख की इच्छा करता है, इसलिए मैं भी तेरे लिए अभीष्ट उसी तत्त्व का प्रतिपादन करता हूँ जो कि तेरे दुःख को नष्ट करके सुख को करने वाला है।

यद्यपि कदाचिदस्मिन् विपाकमधुरं तदात्वकदु किंचित् ।

त्वं तस्मान्मा भैषीर्यथातुरो भेषजादुग्रात् ॥३

यद्यपि इस (आत्मानुशासन) में प्रतिपादित किया जाने वाला कुछ सम्यग्दर्शनादि का उपदेश कदाचित् सुनने में अथवा आचरण के समय में थोड़ा सा कड़ुआ (दुःख दायक) प्रतीत हो सकता है, तो भी वह परिणाम में मधुर (हितकर) ही होगा। इसलिए हे आत्मन्! जिस प्रकार रोगी तीक्ष्ण (कड़ुवी) औषधि से नहीं डरता है उसी प्रकार तू भी उससे डरना नहीं।

जिस प्रकार ज्वर आदि से पीड़ित बुद्धिमान् मनुष्य उसको नष्ट करने के लिए चिरायता आदि कड़ुवी भी औषधि को प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करता है उसी प्रकार संसार के दुःख से पीड़ित भव्य जीवों को इस उपदेश को सुनकर प्रसन्नता पूर्वक तदनुसार आचरण करना चाहिए। कारण यह कि यद्यपि आचरण के समय वह कुछ कष्टकारक

अवश्य दिखेगा तो भी उसका फल मधुर (मोक्षप्राप्ति) होगा।

हितोपदेशी दुर्लभ-

जना धनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युरुयोत्थिताः ।

दुर्लभा ह्यन्तराद्वास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः ॥ (4)

जिसका उत्थान (उत्पत्ति एवं प्रयत्न) व्यर्थ है ऐसे वाचाल मनुष्य और मेघ दोनों ही सरलता से प्राप्त होते हैं। किन्तु जो भीतर से आर्द्ध (दयालु और जल से पूर्ण) होकर जगत् का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे वे मनुष्य और मेघ दोनों दुर्लभ हैं।

विशेषार्थ—जो मेघ गरजते तो हैं, किन्तु जलहीन होने से बरसते नहीं हैं, वे सरलता से पाये जाते हैं। परन्तु जो जल से परिपूर्ण होकर वर्षा करने के उन्मुख हैं, वे दुर्लभ ही होते हैं। ठीक इसी प्रकार से जो उपदेशक अर्थहीन अथवा अनर्थकारी उपदेश करते हैं वे तो अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं, किन्तु जो स्वयं मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होकर दयाद्वचित होते हुए अन्य उन्मार्गगामी प्राणियों को उससे उद्धार करने वाले सदुपदेश करते हैं वे कठिनता से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे ही उपदेशक का प्रयत्न सफल होता है।

हितोपदेशी का स्वरूप-

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः ।

प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ॥

प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया ।

ब्रुयाद्वर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥ (5)

जो त्रिकालवर्ती पदार्थों को विषय करने वाली प्रज्ञा से सहित हैं, समस्त शास्त्रोंके रहस्य को जान चुके हैं, लोक व्यवहार से परिचित हैं, अर्थ—लाभ और पूजा—प्रतिष्ठा आदि की ईच्छा से रहित है, नवीन—नवीन कल्पना की शक्तिरूप अथवा शीघ्र उत्तर देने की योग्यतारूप उत्कृष्ट प्रतिभा से सम्पन्न है, शांत है, प्रश्न करने से पूर्व में ही वैसे प्रश्न के उपस्थित होने की संभावना से उसके उत्तर को देख चुका है, प्रायः अनेक प्रकार के प्रश्नों के उपस्थित होने पर उनको

राहन करने वाला है अर्थात् न तो घबराता है और न उत्तेजित ही होता है, श्रोताओं उपर प्रभाव डालने वाला है, उनके (श्रोताओं के) मन को आकर्षित करने वाला अथवा उनके मनोगत भाव को जानने वाला है, तथा उत्तमोत्तम अनेक गुणों का स्थानभूत है; ऐसा संघ का स्वार्मी आचार्य दूसरों की निन्दा न करके स्पष्ट एवं मधुर शब्दों में धर्मोपदेश देने का अधिकार होता है।

सच्चे गुरु-

श्रुतमविकलं शुद्धाः वृत्तिः परप्रतिबोधने

परिणतिरुल्लयोगोमार्गं प्रवर्तनसद्विधो ।

बुधनुतिरनुत्सेकोलोकज्ञतामृदुताऽस्पृहा

यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्येचसोऽस्तुगुरुः सताम् ॥

जिसके परिपूर्ण श्रुत है अर्थात् जो समस्त सिद्धान्त का जानकार है, जिसका चारित्र अथवा मन, वचन व कार्य की प्रवृत्ति पवित्र है; जो दूसरों को प्रतिबोधित करने में प्रवीण है, मोक्षमार्ग के प्रचार रूप समीचीन कार्य में अतिशय प्रयत्नशील है, जिसकी अन्य विद्वान् स्तुति करते हैं, तथा जो स्वयं भी विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा एवं उन्हें नमस्कारादि करता है, जो अभिमान से रहित है, लोक और लोकमर्यादा का जानकार है, सरल परिणामी है, इस लोक सम्बन्धी इच्छाओं से रहित है, तथा जिसमें और भी आचार्य पद के योग्य गुण विद्यमान हैं; वही हेयोपादेय—विवेक ज्ञान के अभिलाषी शिष्यों का गुरु हो सकता है।

सच्चे शिष्य-

भव्यः किं कुशलं ममेति विमृशन् दुःखाद् भृशं भीतवान् ।

सौख्यैषीश्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम् ।

धर्म शर्मकरं दयागुणमयं युक्त्यागमाभ्यां स्थितं,

गृह्ण धर्मकथां श्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः ॥ 17

जो भव्य है; मेरे लिए हितकारक मार्ग कौनसा है, इसका विचार करने वाला है; दुःख से अत्यंत डरा हुआ है, यथार्थ सुख का अभिलाषी

है, श्रवण आदि रूप बुद्धि वैभाव से संपन्न है, तथा उपदेश को सुखकारक और उसके विषय में स्पष्टता से विचार करके जो युक्ति व आगम से सिद्ध है ऐसे सुखकारक दयामय धर्म को ग्रहण करने वाला है; ऐसा दुराग्रह से रहित शिष्य धर्मकथा के सुनने में अधिकारी माना गया है।

यहाँ धर्मोपदेश के सुनने का अधिकारी कौन है, इस प्रकार श्रोता के गुणों का विचार करते हुए सबसे पहले यह बतलाया है कि भव्य होना चाहिए। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को प्राप्त करके भविष्य में अनंत चतुष्टय स्वरूप से परिणत होने वाला है वह भव्य कहलाता है। यदि श्रोता इस प्रकार का भव्य नहीं है तो उसे उपदेश देना वर्थ ही होगा। कारण कि जिस प्रकार पानी के सींचने से ही मिट्टी गीलेपन को प्राप्त हो सकती है उसी प्रकार पत्थर नहीं हो सकता, अथवा जिस प्रकार नवीन घट के ऊपर जल बिन्दुओं के डालने पर वह उन्हें आत्मसात् कर लेता है उस प्रकार धी आदि से चिक्कणता को प्राप्त हुआ घट उन्हें आत्मसात नहीं कर सकता है—वे इधर—उधर बिखरकर नीचे गिर जाती हैं। ठीक यही स्थिति उस श्रोता की भी है—जिस श्रोता का हृदय सरल है वह सदुपदेश को ग्रहण करके तदनुसार प्रवृत्ति करने में प्रयत्नशील होता है, किन्तु जिसका हृदय कठोर है उसके ऊपर सदुपयोग का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव सबसे पहले उसका भव्य होना आवश्यक है। दूसरी विशेषता उसकी यह निर्दिष्ट की गई है कि उसे हिताहित का विवेक होना चाहिए। कारण कि मेरा आत्मकल्याण किस प्रकार से हो सकता है, यह विचार यदि श्रोता के रहता है तब तो वह सदुपदेश को सुनकर तदनुसार कल्याण मार्ग में चलने के लिए उद्यत हो सकता है। परन्तु यदि उसे आत्महित की चिंता अथवा हित और अहित का विवेक नहीं है तो मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकेगा। किन्तु जब और जिस प्रकार का प्रतिकूल उपदेश उसे प्राप्त होगा तदनुसार वह अस्थिर से आचरण करता रहेगा। इस प्रकार से वह दुःखी ही बना रहेगा। इसलिए उसमें आत्महित का विचार और उसके परीक्षण की योग्यता अवश्य होना चाहिए। इसी प्रकार उसे दुःख का भय और

सुख की अभिलाषा होनी चाहिए, अन्यथा यदि उसे दुःख से किसी प्रकार का भय नहीं है या सुख की अभिलाषा नहीं है तो फिर भला वह दुःख को दूर करने वाले सुख के मार्ग में प्रवृत्त ही क्यों होगा? नहीं होगा। अतएव उसे दुःख से भयभीत और सुखाभिलाषी भी अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसमें निम्न प्रकार बुद्धि का वैभाव या श्रोता के आठ गुण भी होना चाहिए—

शुश्रुषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।

स्मृत्यूहापोहनिर्णातिः श्रोतुरस्तौ गुणान् विदुः ॥

सबसे पहले उसे उपदेश सुनने की उत्कंठा (शुश्रुषा) होनी चाहिए, अन्यथा तदनुसार आचरण करना तो दूर रहा किन्तु वह उसे लचिपूर्वक सुनेगा भी नहीं। अथवा शुश्रुषा से अभिप्राय गुरु की सेवा का भी हो सकता है, क्योंकि वह भी ज्ञान प्राप्ति का साधन है। इसके अनन्तर श्रवण (सुनना), सुने हुए अर्थ को ग्रहण करना, ग्रहण किये हुए अर्थ को हृदय में धारण करना, उसका स्मरण करना (रखना) उसके योग्यायोग्य का युक्तिपूर्वक विचार करना, इस विचार से जो योग्य प्रमाणित हो उसे ग्रहण करके अयोग्य अर्थ को छोड़ना, तथा योग्य तत्त्व के विषय में दृढ़ता से रहना, ये श्रोता के आठ गुण हैं जो उसमें होने चाहिए। उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त श्रोता में हठाग्रह का अभाव भी होना चाहिए, क्योंकि वह यदि हठाग्रही है तो वह यथावत् वस्तु का स्वरूप का विचार नहीं कर सकेगा। कहा भी है—

आग्रहीवत् निनीषति युक्ति तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ।

पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम् ॥

अर्थात् दुराग्रही मनुष्य ने जो पक्ष निश्चित कर रखा है वह युक्ति को उसी ओर ले जाना चाहेगा। किन्तु जो आग्रह से रहित होकर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना चाहता है वह युक्ति का अनुसरण करके उसके ऊपर विचार करता और तदनुसार वस्तु—स्वरूप का निश्चय करता है। इस प्रकार जिस श्रोता में ये गुण विद्यमान होंगे वह पालचिपूर्वक धर्मोपदेश को सुन करके तदनुसार आत्महित के मार्ग में अवश्य प्रवृत्त होगा।

गुरु के कठोर वचन भी हितकारी—

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरुकत्तयः॥142

(आत्मानुशासन पृ. 134)

जिस प्रकार सूर्य की किरणें भी कमल को प्रफुल्लित करती हैं उसी प्रकार गुरु की कठोर वाणी भी भव्य जीव के मन को प्रफुल्लित करती है।

श्री गुरुदोष छुड़ाने और गुण-ग्रहण कराने के लिए कदाचित् असुहावने कठोर वचन भी कहे तो भी भव्य जीव का मन उन वचनों को सुनकर प्रसन्न ही होता है, उसे चिन्ता या खेद नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य की किरणें यद्यपि औरों को आताप उत्पन्न करने वाली उग्र और कठोर होती हैं, तथापि वे कमल की कली को प्रफुल्लित ही करती हैं, उसी प्रकार गुरु के वचन पापियों को स्वयं हीन होने के कारण यद्यपि दुःख उत्पन्न करने वाले कठोर होते हैं, तथापि वे धर्मात्मा के मन को आनंद ही उत्पन्न करते हैं। धर्मात्मा जीवों को श्री गुरु जब दबाकर (अत्यंत कठोरता के साथ) उपदेश देते हैं, तब वे अपने को धन्य मानते हैं।

प्रश्न—कठोर उपदेश से पापियों को तो दुःख ही होगा?

उत्तर—श्रीगुरु जिसे पापी या तीव्र कषायी समझते हैं, उसे कठोर उपदेश नहीं देते, वहाँ माध्यस्थ भाव रखते हैं।

यहाँ तो आचार्य शिष्य को शिक्षा देते हैं कि श्रीगुरु तेरा भला करने के लिए कठोर वचन कहते हैं, उन्हें तुझसे ईर्ष्या का प्रयोजन नहीं है, अतः उन्हें इष्ट जानकर उनका आदर ही करना चाहिए।

धर्मात्माओं की दुर्लभता—

लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाःपुरा।

दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः। (143)

पूर्व काल में दोनों लोकों में हितकारी धर्म को कहने और सुनने वाले सुलभ थे, किन्तु करने वाले दुर्लभ थे, किन्तु इस काल में तो

कहने और सुनने वाले भी दुर्लभ हो गये हैं।

इस लोक और परलोक में जीव का हित करने वाले धर्म को कहने वाले और सुनने वाले पहले चतुर्थ काल में बहुत होते थे, परन्तु अंगीकार करने वाले तो उस समय भी थोड़े ही थे, क्योंकि संसार में धर्मात्मा थोड़े ही होते हैं।

लेकिन अब यह पंचम काल ऐसा निकृष्ट है कि इसमें सच्चे धर्म को कहने वाले तो अपने लोभ और मान के अभिलाषी हो गये हैं, इसलिए वे यथार्थ नहीं कहते तथा सुनने वाले जड़ और वक्र हो गये हैं, इसलिए वे परीक्षा-रहित, हठग्राही होने से यथार्थ बात नहीं सुनते। जब कहना सुनना ही दुर्लभ हो गया तो अंगीकार करने की बात ही क्या करना?

इस प्रकार इस काल में धर्म दुर्लभ हो गया है, सो ठीक ही है, क्योंकि यह पंचम काल ऐसा निकृष्ट है कि जिसमें सभी उत्तम वस्तुएँ अल्प होती जाती हैं और धर्म भी तो उत्तम है, अतः उसकी वृद्धि कैसे हो सकती है? इसलिए इस निकृष्ट काल में जिन्हें धर्म की प्राप्ति होती है, वे ही धन्य हैं।

तीन बंदर की मूर्तियाँ ही नहीं; चार चाहिए

तीन बंदर की मूर्तियाँ—(1) बुरा नहीं देखना, (2) बुरा नहीं सुनना, (3) बुरा नहीं बोलना के प्रतीक स्वरूप क्रमशः हाथों से दोनों आँख दोनों कान एवं मुख को बंद करती हुई बंदर की 3 मूर्तियाँ पर्याप्त नहीं हैं। इसके साथ-साथ बुरा नहीं सोचने के भाव के प्रतीक स्वरूप छाती में हाथ रखती हुई चौथी बंदर की मूर्ति की भी नितान्त अनिवार्यता है। क्योंकि यदि कोई अंधा-बधिर-मुक भी है परन्तु बुरा सोच रहा है तो वह बुरा ही है परन्तु वितराग सर्वज्ञ भगवान् सब कुछ देखने-सुनने पर भी तथा 718 भाषा में बोलने पर भी बुरा नहीं है। अच्छा-बुरा का उद्गमस्रोत विचार ही है। विचार के अनुसार ही उच्चारण-श्रवण-दर्शन-आचरण होता है। अच्छा विचार (सुधार करने के लिए, हित करने के लिए) से यदि दूसरों के बुरे गुणों के बारे

में कोई सोच—विचार कर रहा है, बुरे वचनों को सुन रहा है, बुरे कामों को देख रहा है और हितकर कटु (बुरा) बोल रहा है तो भी वह बुरा नहीं है। अपितु ऐसे परोपकारी, हितोपदेशी, सज्जन, गुणीजन, गुरुजन उनसे श्रेष्ठ हैं जो दूसरों के हित के लिए दिल—दिमाग—आँख—कान—मुँह बंद रखते हैं। दुर्जन, पर अहितकारी लोगों के लिए यह 3, तीन मूर्तियाँ सही हैं। क्योंकि वे गंदगी की मक्खी, मच्छर, खटमल के जैसे केवल दूसरों को क्षति पहुँचाने के लिए ही दूसरों के बुरा देखते हैं, बुरा सुनते हैं, बुरा बोलते हैं।

न विना परिवादेन् रमते दुर्जनो जनः।

काकः सर्वरसान् भुक्त्वा विना मेघ्यं न तृप्यति ॥382॥ स.कौ.

दुष्ट मनुष्य को निन्दा किये बिना चैन नहीं पड़ती क्योंकि कौआ समस्त रसों को छोड़कर अशुचि पदार्थ के बिना संतुष्ट नहीं होता।

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।

आत्मनो विल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥383॥ स.कौ.

दुष्ट पुरुष, दूसरों के सरसों बराबर दोषों को देखता है और अपने बेल के बराबर दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है।

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्क्रूरतः खलः ।

मन्त्रेण शाम्यते सर्पः खलः केनोपशाम्यते ॥384॥

सर्प क्रूर है और दुर्जन भी क्रूर है परन्तु दुर्जन, सर्प की अपेक्षा अधिक क्रूर है क्योंकि सर्प तो मंत्र से शांत हो जाता है परन्तु दुर्जन किससे शांत होता है? अर्थात् किसी से नहीं।

अतिमालिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः।

तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ॥1504॥

अत्यंत मलिन कार्य के करने में दुर्जनों की बुद्धि अत्यंत निपुण होती है क्योंकि उल्लुओं की दृष्टि अंधकार में रूप को ग्रहण करती है।

इन सबसे भी श्रेष्ठ हैं समता रस में लीन निर्विकार ज्ञाता—दृष्टा—टंकोत्कीर्ण—शुद्धात्मा ।

हित—मित—प्रिय या हित—अमित—अप्रिय

सामान्य जन के लिए सामान्य परिस्थिति में तो हित—मित—प्रिय वचन ही श्रेष्ठ है परन्तु विशेष जन (हिताकांक्षी, सहृदयी, गुरु, माता—पिता, अभिभावना—डॉक्टर—वैद्य, न्यायाधीश आदि) के लिए विशेष परिस्थिति में विशेष, विशेष व्यक्तियों के लिए हित—मित—प्रिय से भी हित—अमित—अप्रिय वचन श्रेयस्कर है, श्रेष्ठ है, कथनीय है। जैसा कि—

गुरु कुम्हार कुंभ शिष्य है गढ—गढ काढे खोट ।

अंदर हाथ पसारकर, ऊपर मारे चोट ।

परोपकारायददाति गौः पयः, परोपकारायफलन्ति वृक्षाः

परोपकाराय वहन्ति नद्य, परोपकाराय सत्तां प्रवृत्तिः ।

जैसा कि रोग को दूर करने वाली कड़ी औषधि रोग को बुद्धि करने वाला मिष्टान्न से भी श्रेष्ठ है उसी प्रकार हिताकांक्षी—हितोपदेशी सच्चे—अच्छे गुरु के कटु वचन भी उन ठग, वैश्या, चाटुकार के मधुर—प्रिय वचन से भी अधिक श्रेष्ठ है, सत्य है, गाह्र है। गुरु भी यदि शिष्य के हित के लिए कठोर वचन नहीं बोलते हैं तो कुगुरु है। यथा—
दोषान् कांश्चन तान्प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं,
सार्धं तैः सहसा भ्रियेद्यदि गुरुः पश्चात् करोत्येष किम् ।
तस्मान्मे न गुरुर्गुरुतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं,
ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणं सोऽयं खलः सदगुरुः । (141)

कोई व्यक्ति गुरु—प्रवृत्ति कायम रखने के अभिप्राय से शिष्य में विद्यमान दोषों को छिपाता है और यदि उन दोषों के रहते हुए ही शिष्य का मरण हो जाए गुरु क्या करेगा? इसलिए ऐसा गुरु मेरा गुरु नहीं है तथा जो मेरे दोषों को देखने में प्रवीण अर्थात् निरंतर मेरे दोषों को अच्छी तरह देखने वाला और मेरे थोड़े दोषों को भी बढ़ा—चढ़ाकर कहने वाला दुर्जन भी मेरा सच्चा गुरु है।

गुरु के कठोर वचन भी हितकारी हैं

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः ।

खेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरुक्तयः । (142) (आ.शासन)

जिस प्रकार सूर्य की किरणें भी कमल को प्रफुल्लित करती हैं उसी प्रकार गुरु की कठोर वाणी भी भव्य जीव के मन को प्रफुल्लित करती है।

गुणागुणविवेकिभिर्विहितमप्यलं दूषणं,
भवेत् सदुपदेशवन्मतिमतामतिप्रीयते ।

कृतं किमपि धार्ष्यतः स्तवनमप्यतीर्थोषितैः,
न तोषयति तन्मनांसि खलु कष्टमज्ञानता । (144) आत्मानुशासन

गुण—दोष के विवेक से युक्त सत्पुरुषों द्वारा अपने दोष अधिकता से प्रगट करना भी बुद्धिमानी जीवों को भले उपदेश के समान अत्यंत प्रीति उत्पन्न करने वाला होता है और धर्मतीर्थ का सेवन न करने वाले (दुष्ट पुरुषों) द्वारा धीरता से किया गया गुणानुवाद भी उन बुद्धिमान विवेकी जीवों को संतोष उत्पन्न नहीं करता। परन्तु तुझे (शंकाकार को) अन्यथा भासित होता है; तेरी इस अज्ञानता से हमें खेद होता है।

त्यक्तहेत्वन्तरापेक्षौ गुणदोषनिबन्धनौ ।

यस्यादानपरित्यागौ स एव विदुषां वरः । (145)

अन्य कारणों की अपेक्षा छोड़कर जो जीव गुणों और दोषों के कारण ही ग्रहण और त्याग करते हैं, वे ही ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं।

हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीर्दुःखायसे भृशम् ।

विपर्यये तयोरेषि त्वं सुखायिष्यसे सुधीः । (146) आत्मा. पृ. 138

हे जीव! तू दुर्बुद्धि होता हुआ हित को छोड़कर अहित में स्थित रहकर अपने को अत्यंत दुःखी करता है, इसलिए अब इसका उल्टा कर! अर्थात् सुबुद्धि होता हुआ अहित को छोड़कर हित में स्थित रहते हुए उसी की वृद्धि कर! इससे तू अपने स्वाभाविक सुख को प्राप्त करेगा।

प्राचीन महान् हितोपदेशी आचार्यों ने भी कभी—कभी शिष्यों को सुधारने के लिए कठोर वचनों का प्रयोग किया है। इसके साथ—साथ ही कोई विषय यदि शिष्य को समझ में नहीं आता है तो अनेक बार (अमित) समझाया है। समयसार जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ तक में भी

अनेक उदाहरणों के माध्यम से अनेक गाथाओं में एक ही विषय को समझाया गया है। किन्तु सामान्य व्यक्ति अहितकर वचन, विकथा आदि वाचालता से करते हैं तथा आर्तध्यान, रौद्रध्यान से युक्त होकर अप्रिय बोलते हैं इसलिए उनको इस दुष्प्रवृत्ति से निवृत्त होने के लिए तो हित के साथ—साथ मित एवं प्रिय ही बोलना चाहिए।

कथचित् मौन से भी श्रेष्ठ सत्य कथन—

समतापूर्वक, मन—वचन—काय से मौनपूर्वक ध्यान—अध्ययन—साधन—लेखन आदि करना श्रेष्ठ है तथापि विशेष परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार हितकर—सत्य वचन बोलना मौन से भी श्रेयस्कर है। इसलिए मनुस्मृति में कहा है—मौनात्सत्यं विशिष्यते। जैनाचार्य ने भी कहा है—

मौन रहे या सत्य कहे-

मौनमेव हितं पुसां शश्वत्सर्वार्थसिद्धये ।

वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्त्वोपकारियत् ॥ 16 ॥

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों का सिद्ध करने वाला निरंतर मौन ही अवलंबन करना हितकारी है। और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिए जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करने वाला हो।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धांतार्थं विप्लवे ।

अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपं प्रकाशने ॥ (ज्ञानार्णव)

जब जहाँ सत्य धर्म का नाश होता हो, यथार्थ क्रिया का विधंस होता हो, समीचीन सिद्धांत—अर्थ का अपलाप। विनाश होता हो उस समय सम्यक धर्म क्रिया और सिद्धांत के प्रचार—प्रसार, सुरक्षा के लिए बिना पूछे भी सज्जनों को बोलना चाहिए क्योंकि इससे धर्म की रक्षा होती है जिससे स्व—पर—राष्ट्र—विश्व की सुरक्षा समृद्धि होती है।

अज्ञानतिभिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।

जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ 18 ॥

अज्ञानरूपी अंधकार के विस्तार को दूर कर अपनी शक्ति के अनुसार जिनशासन के अनुसार महात्म्य को प्रकट करना प्रभावना गुण है।

रूसउ वा परो मा वा, विसं वा परियतउ।

भासियब्बा हिया भासा सपक्खगुण करिया ॥ श्वे. साहित्य

जिसे उपदेश दिया जाता है, वह चाहे रोष करे, चाहे उपदेश को विष रूप समझे परन्तु उपदेशक को हितरूप वचन अवश्य कहना चाहिए।

न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हित श्रवणात् ।

ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्ध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ॥

उपेदश सुनने वाले सभी श्रोताओं को पुण्य नहीं होता है क्योंकि जो उपदेश अच्छी भावना से सुनता है। उसे पुण्य होता है। जो शुभ भावना से नहीं सुनता है उसे पुण्य नहीं होता है, परन्तु जो परोपकार की भावना से अनुग्रह बुद्धि से हितकर उपदेश करता है उसे अवश्य ही पुण्य होता है।

इसलिए तो पंचनमस्कार मंत्र में सिद्ध भगवान् के पहले अरिहंत भगवान् को नमस्कार किया गया भले सिद्ध भगवान् अरिहंत भगवान् से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि सिद्ध भगवान् उपदेश नहीं देते हैं तथा अरिहंत भगवान् उपदेश देते हैं। इसलिए तो मार्गदर्शन—हितोपदेशी गुरु का स्थान सर्वोपरि है। ज्ञानदान/हितोपदेश को सबसे बड़ा पापरहित दान कहा गया है और ज्ञानदानी को गुरु कहा गया है। आहार, औषधि, अभय दान करने वाले दानी, पुण्यात्मा होते हुए भी गुरु नहीं है, गुरु के जैसे श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, पूजनीय नहीं है। यदि तीर्थकर, केवली, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, शिक्षक, समाज सुधारक, महान् क्रांतिकारी नेता, माता—पिता आदि हितोपदेश, शिक्षा, मार्गदर्शन नहीं देंगे तो मानव समाज का विकास ही रुक जायेगा।

समवशरण में भगवान् की दिव्यधनि का निसृत होना, महात्मा बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन, धर्म प्रचारक से लेकर साधु—संतों के प्रवचन

(सत्संग, कथावाचन) क्रांतिकारी नेता—समाज सुधारक आदि का भाषण, तत्त्वचर्चा, शंका समाधान आदि सब हितोपदेश के ही भेद—प्रभेद हैं। भले प्रवचन (प्र+वचन) सर्वज्ञ हितोपदेशी का ही होता है तथापि उनके अनुसार कथन करने वालों का भी प्रवचनसम (गौण रूप से प्रवचन) होता है और अपने—अपने क्षेत्र—विषयों में जो सत्य—तथ्य—हितकर वचन वह भी उपचार। व्यवहार से प्रवचन है। इन सबके द्वारा धर्मतीर्थ प्रवर्तन से लेकर लोक व्यवहार का भी प्रवर्तन होता है। ऐसे बहुगुण युक्त, ज्ञान—विज्ञान—नीति—समाजनीति—राजनीति—न्यायनीति के संवाह का, प्रवर्तक वचन—शक्ति का सदा—सर्वदा—सर्वथा सदुपयोग रूप में ही प्रयोग करना अनिवार्य है वचेत दुरुपयोग से विनाश—ही—विनाश संभव है। इसलिए कहा है—“बातें हाथी पाये, बातें हाथी पायें” अर्थात् अच्छे वचनों से पुरस्कार रूप में हाथी मिल सकता है तो गलत वचनों से हाथी के पैर के नीचे दबाकर मृत्यु दण्ड भी प्राप्त हो सकता है। इसलिए वचन बोलने के पहले तौलकर बोलना चाहिए अन्यथा मौन रहना ही श्रेयस्कर है। इसलिए नीतिकार कहते हैं—“बोलना चांदी है तो मौन सोना है।” “बोलने से जानकारी बढ़ती है तो मौन से विवेक बढ़ता है।” अतएव बोलने के पहले विवेक से तौलकर बोले। कथंचित् धनुष से छोड़ा हुआ बाण को संहार (वापिस) करना असंभव है परन्तु मुख से छोड़ा हुआ वाक्—बाण को संहार करना असंभव या असंभवसम या कष्ट साध्य है। जिस प्रकार कि आहार आदि दाता विशेष, पात्र विशेष, द्रव्य विशेष, विधि विशेष, क्षेत्र विशेष, काल विशेष आदि के अनुसार दिया जाता है उसी प्रकार या उससे भी अधिक महादान स्वरूप ज्ञानदान/हितोपदेश को दातादि विशेष से युक्त होकर देना चाहिए लेना चाहिए अन्यथा लाभ से अधिक हानियाँ संभव हैं।

भाषा विज्ञान एवं कर्म सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में वचनगुणित एवं उसके फल शब्द के स्वरूप एवं भेद-प्रभेद

शब्द तीन प्रकार का होता है जैसे कि—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। इन तीनों में सभी शब्दों का अंतर्भाव हो जाता है। चौथे प्रकार का शब्द विश्व भर में नहीं है। जीव के द्वारा जो शब्द होता है उसके दो ही प्रकार हैं—एक अक्षरात्मक और दूसरा अनक्षरात्मक। उक्त दोनों शब्दों का समावेश भाषा में हो जाता है। सूत्रकार ने जीव शब्द को भाषा के नाम से व्यवहृत किया है। क्योंकि भाषा—पर्याप्ति— नाम कर्मदय से उत्पन्न हुआ जीव शब्द भाषा ही कहलाता है जो जीव के द्वारा बोलने में आती है वही भाषा है। द्वान्द्विय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव तक जो कुछ भी वे जानते हैं स्वभाव से बोलते हैं वही भाषा है। वह वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक दोनों तरह की होती है। नन्दीसूत्र में इन्हें अक्षर—श्रुत और अनक्षर—श्रुत के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

नो भाषा शब्द दो प्रकार का होता है, जैसे कि—आतोध अर्थात् वाद्य—विशेष से होने वाला शब्द और नोआतोध अर्थात् बिना वाद्य—पनों से उत्पन्न शब्द इनमें जो आतोध—जन्य शब्द है उसके मुख्यतया दो भेद हैं—तत और वितत/चमड़ा लपेटे हुए ढोल मृदंग आदि वाद्यों से होने वाले शब्द को तत कहते हैं। तार वाले—सारंगी, सितार, वीणा और तानपूरा आदि वाद्यों से होने वाले शब्द को वितत कहते हैं। झालर, घुंघरूं एवं घंटे आदि से होने वाले शब्द को घन कहते हैं और बैंड, बीन, बंसी आदि वाद्यों से होने वाले शब्द को शुषिर कहते हैं। आदि शब्द से हार्मोनियम आदि आधुनिक वाद्यों का भी इसी भेद में समावेश हो जाता है। वृत्तिकार लिखते हैं—

तंत वीणादिकं ज्ञेयं, विततं पटहादिकं।

घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम् ॥

विश्व में जितने तरह के बाजे हैं, उनमें कुछ मुँह से बजाये जाते हैं और कुछ हाथ आदि साधनों से बजाये जाते हैं। उसकी रचना जीव के द्वारा होती है। और जीव ही उन्हें बजाता है अतः भाषा शब्द का प्रयोग किया गया है जितने भी संगीत के उपकरण (साज—बाज) हैं वे सब नोभाषा शब्द की कोटी में आ जाते हैं। नोभाषा शब्द भी दो प्रकार के होते हैं—एक भेद में उपकरणों का अंतर्भाव हो जाता है और दूसरे भेद में भूषण शब्द और नोभूषण शब्दों का समावेश होता है। भूषणों की मधुर ध्वनि का होना गति और नृत्य पर ‘अवलंबित है अतः नो भूषण, शब्द के दो भेद हैं—जैसे कि ताल—हाथों से ताली बजाना, लतिया—पैरों की आहट या अभिमान से एवं अतिर्हष से पाण्डिप्रहार करना इत्यादि शब्द जीव के द्वारा किए जाते हैं।

पुद्रलों के मिलने पर, संयोग से, संघर्ष से और टक्कर आदि से शब्द की उत्पत्ति होती है जैसे कि दो विरोधी दिशाओं की वायु की टक्कर से शब्द होता है पृथ्वी के साथ पृथ्वी, जल के साथ जल, तेज के साथ तेज मिलने से माचिस की तीली धिसाने से अर्थात् पुद्रल का संघर्ष है तब शब्द होता है इसी प्रकार उनके भेदन से, छेदन से, बिछुड़ने से शब्द उत्पत्त हुआ करता है। जैसे कि बाँस के विदारण कटने से, कपड़ा फाड़ने से, धागा तोड़ने से, बम से फठने से गोली से चलने शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। जितने भी प्रकार के शब्द उत्पन्न होते हैं। वे उक्त दो भेदों में समाविष्ट हो जाते हैं। शब्द उत्पत्ति का तीसरा कोई कारण नहीं है। (पृ. 206 स्थानांग सूत्र—2)

वाणी—वर्णन

वाणी का अर्थ है वचन, भाषा—पर्याप्ति अर्थात् अभिव्यक्ति का सामर्थ्य अभिव्यक्ति का सामर्थ्य होने पर ही वाणी का प्रयोग किया जाता है। यहाँ शब्द से भावावाक् का ग्रहण हुआ है। औदारिक, वैक्रियक और आहारक शरीरों के व्यापार से गृहीत वाग्—द्रव्य—समूह की सहायता से जो जीव का व्यापार होता है वह वाग्—योग कहलाता है। यद्यपि वाणी सत्य, असत्य, मिश्र, असत्यामृषा इस तरह चार प्रकार की है, तथापि वचन सामान्य कि अपेक्षा समस्त वचनों में एकत्व

जीवों के कारण वाणी को भी एक कहा गया है।

त्रीन्द्रिय—जाति, त्रीन्द्रिय—जाति, चतुरिन्द्रिय—जाति, और असंज्ञी पञ्चन्द्रिय जीवों की वाणी असत्यामृषा ही होती है किन्तु विशिष्ट राज्ञी—तिर्यच चारों प्रकार की वाणी का प्रयोग कर सकता है। तेहरवें गुणस्थान तक वाग्—योग पाया जाता है। फिर भी ‘सर्ववाचां वचनसामान्येऽत्तर्भा—वादिति’ वचन—सामान्य की अपेक्षा वाणी रूप होने से समस्त जीवों की वाणी एक ही है। (पृ. 31 स्थानांग सूत्र—2)

भाषा के ५ भेद

चत्तारि भासाजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चमेगं भासज्जायं,
वीयं मोसं तद्यं सच्चमोसं, चउत्थं असच्चमोसं।

मानवता कभी मूक नहीं रही अतः मानवता और भाषा का साक्षात् संबंध है। यद्यपि विभिन्न प्रदेशों के लोग विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं तदापि उनका सामान्यतः चतुर्विध वर्गीकरण स्वीकार किया गया है—सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(1) **सत्यभाषा**—जो भाषा ज्ञानियों एवं संतों को प्रिय है जो अनुसंधान और परीक्षण में सही उत्तरने वाली है, जिसमें मन—वचन और काया का सामंजस्य होता है। उसे सत्यभाषा कहते हैं।

(2) **असत्य भाषा**—जो अनुसंधान एवं परीक्षण से प्रमाणित नहीं होती, जिसे उत्तम पुरुष एवं महात्मा पसंद नहीं कहते जो, सत्य से सर्वथा विपरीत है उसे असत्य भाषा कहते हैं। जैसे कि “आत्मा, परमात्मा, धर्म, कर्म, लोक, परलोक, आदि कोई वस्तु नहीं है। यह सत्य से विपरीत असत्य भाषा है।

(3) **मिश्रभाषा**—जिस भाषा में सत्य और असत्य दोनों का मिला—जुला सा प्रयोग होता है। उसे मिश्रभाषा कहते हैं। क्योंकि एक और उसका अस्तित्व मानना और दूसरी ओर उसके गुण स्वभाव से विपरीत बात करना मिश्रभाषा का प्रयोग कहा जा सकता है। राजनैतिक मस्तिष्क के व्यक्ति प्रायः इसी भाषा का प्रयोग किया करते हैं।

(4) **असत्य—मृषा भाषा**—जो भाषा न सत्य की कोटि में हो और असत्य की कोटि में भी न हो अर्थात् दोनों से विलक्षण हो उसी भाषा को असत्यामृषा या व्यवहार भाषा कहा जाता है। शास्त्रकारों ने इसके बारह रूपों का वर्णन किया है। इनमें से महापुरुष सत्यभाषा और व्यवहार भाषा का ही उपयोग करते हैं शेष भाषाओं का नहीं। (पृ. 655 क्षी.स्थानांगसूत्र)

(धर्मकथा के ५ भेद)

विकथाओं के परित्याग के अनन्तर ही धर्म कथा का लाभ प्राप्त हो सकता है। अतः विक्रया के अनन्तर सूत्रकार धर्मकथा के स्वरूप एवं भेदोपभेदों की अवतारण करते हैं। जिसके कहते और सुनने से धर्म जिज्ञासा उत्पन्न हो तथा कर्म—बंधन से छूटकर निर्वाण—पद प्राप्त करने की उत्कंठ इच्छा उत्पन्न हो, उसे धर्म—कथा कहते हैं। किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सदा रहे उससे कभी भी अलग न हो वह धर्म है।

विनय, ऋजुता, अहिंसा, सत्य, संयम, तप, त्याग, सदाचार, संतोष, दान, समता, शांति, इत्यादि, सभी गुण धर्म के अंग हैं और आत्मा के अपने विशेष ‘गुण’ हैं। जब तक आत्मगुणों का पूर्ण विकास न हो जाए तब तक विकास—साधना के लिए निरंतर यत्नशील रहना धर्म है। दूसरे शब्दों में वैभाविक गुणों से निवृत्त होकर स्वाभाविक गुणों में रमण करना ही धर्म है। जो प्रवचन धर्म तत्त्व को जागृत करने वाले हैं उनके कहने और सुनने को धर्म कथा कहा जाता है। उसके मुख्यतया चार भेद हैं। जैसे कि आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेगनी और निर्वेदनी।

आक्षेपणी—वह धर्म—कथा जिसके कहने और सुनने से वक्ता और श्रोता मोह से हटकर तत्त्व की ओर आकृष्ट हो उसे आक्षेपणी धर्म—कथा कहा जाता है। इनके भी चार रूप हैं जैसे कि आचार, व्यवहार, प्रज्ञप्ति और दृष्टिवाद इनकी संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है—

(1) **आचार—आक्षेपणी कथा**—साधु और श्रावक के आचार को

बताने वाली कथा अथवा—आचार प्रधान शास्त्रों को कथा या व्याख्या के द्वारा श्रोताओं को धर्म की ओर आकृष्ट करने वाली कथा/आचार—आक्षेपणी कथा है।

(2) व्यवहार—आक्षेपणी कथा—कोई भी दोष लग जाने पर उसकी विशुद्धि के लिए या प्रायश्चित्त करने के लिए जिस कथा से श्रोता उद्यत हो अथवा व्यवहार आदि सूत्रों की ऐसी विस्तृत व्याख्या करना जिससे प्रायश्चित्त आदि के द्वारा शिष्य या श्रोता विशुद्ध हो सके उस कथा को व्यवहार—आक्षेपणी धर्म—कथा, कहा जाता है।

(3) प्रज्ञप्ति—आक्षेपणी कथा—संशयापात्र श्रोताओं के संशयों को मधुर वचनों से दूर करने वाली कथा या प्रज्ञप्ति सूत्र के व्याख्यान द्वारा श्रोताओं की तत्वों की ओर आकृष्ट करने वाली कथा प्रज्ञप्ति आक्षेपणी धर्म—कथा कहलाती है।

(4) दृष्टिवाद—आक्षेपणी कथा—श्रोताओं को लक्ष्य में रखकर सात नयों से या प्रमाणों के अनुरूप अनुयोग या निक्षेपों के अनुसार जीव आदि तत्वों का सूक्ष्म विवेचन अथवा दार्शनिक विषयों की ऐसी व्याख्या करने वाली कथा जिससे श्रोताओं में धर्म—तत्व के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो जाए उसे दृष्टिवाद—आक्षेपणी धर्म—कथा कहते हैं। (पृ. 784 स्थानांग सूत्र)

विक्षेपणी कथा—श्रोताओं को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगाने वाली कथा या सन्मार्ग के गुण या लाभ बताकर तथा उन्मार्ग के दोष एवं हानियाँ बताकर सन्मार्ग में रुचि जागृत करने वाली कथा विक्षेपणी धर्मकथा कहलाती है। इसके भी चार भेद हैं—स्वसमय, परसमय, सम्यग्वाद और मिथ्यावाद। इनका विवेचन इस प्रकार हैः—

(1) स्वसमय का अर्थ है 'अपना—सिद्धांत।' पहले अपने सिद्धांत पर प्रकाश डालकर फिर दूसरों के सैद्धांतिक दोषों को प्रदर्शित करने वाली कथा पहली विक्षेपणी कथा है।

(2) पहले दूसरे के सैद्धांतिक दोषों को प्रदर्शित कर फिर स्वसिद्धांत की स्थापना करने वाली कथा दूसरी विक्षेपणी—कथा है।

(3) दूसरे के सिद्धांत में जितनी बातें घुणाक्षर न्याय से जिनागम समस्त हो उन्हें कहकर जिनागम से विपरीत सिद्धांत में दोष दिखाना अथवा आस्तिकवाद का अभिप्राय बताकर नास्तिकवाद में दोष प्रमाणित करने वाली तथा तीसरी विक्षेपणी—धर्मकक्षा है।

(4) सम्यग्वाद का अर्थ है आस्तिकवाद और मिथ्यावाद का अर्थ है नास्तिकवाद। पहले मिथ्यावाद को कहकर फिर सम्यक्वाद की स्थापना करने वाली अथवा नास्तिकवाद का खंडन करके फिर आस्तिकवाद की स्थापना करने वाली चौथी विक्षेपणी धर्मकथा है।

विक्षेपणी कथा कहने का अधिकार उसी वक्ता को है जो स्वसिद्धांत और परसिद्धांत में निपुण है। व्याख्यान—लब्धि—संबंध तथा प्रवचना—प्रभावना में कुशल और प्रभावशाली है अन्यथा लाभ के बदले हानि ही उठानी पड़ती है।

संवेगनी कथा—जिस धर्मकथा के द्वारा वक्ता और श्रोता के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो, संसार से निवृत्ति के भावना जाग उठे और मोक्ष प्राप्त करने की उत्कंठ भावना जागृत हो, उसे संवेगनी—धर्मकथा कहा जाता है। इसके भी मुख्यतया चार भेद हैं—इहलोक—संवेगनी, परलोक—संवेगनी, स्वशरीर—संवेगनी और परशरीर—संवेगनी।

(1) इहलोक संवेगनी कथा—जिससे हृदयमान जगत की असारता से विरक्ति हो वह 'इहलोक—संवेगनी' कहलाती है।

(2) जिस कथा के सुनने से परलोक संबंधी दुःखों का ज्ञान हो या परलोक का स्वरूप बताकर वैराग्य उत्पन्न हो जैसे कि परलोक में देवता भी भय शोक ईर्ष्या विषाद वियोग इत्यादि विविध दुःखों से दुःखी हैं, इत्यादि रूपों में परलोक का स्वरूप बताकर श्रोताओं के हृदय में संसार से विरक्ति जागृत करने वाली कथा (परलोक—संवेगनी कथा कहलाती है)।

(3) जिसके सुनने से अपने शरीर से भी घृणा हो जाए, जैसे कि यह शरीर अपवित्र है। क्योंकि इसमें मांस, मेद, अस्थियाँ और मलमूत्र जैसे गंदे पदार्थ भरे पड़े हैं। यह अपवित्र द्वारा से निकला हुआ है और अपवित्रता को जन्म देने की परंपरा का कारण है इस प्रकार की

भावनाओं को जागृत कर विरक्ति उत्पन्न करने वाली कथा को "आत्म-शरीर संवेगनी-कथा" कहा जाता है।

(4) जिस कथा का संबंध स्व-शरीर न होकर हो अर्थात् किसी अपाहिज की दुर्दशा का किसी कुष्ठी का किसी वेदना का किसी भयंकर रोग से ग्रस्त व्यक्ति की पीड़ाओं का ऐसा मार्मिक वर्णन करना कि उससे श्रोताओं में वैराग्य वृत्ति जागृत हो जाए ऐसे कथा की 'परलोक-संवेगनी-कथा' कहा जाता है।

निर्वेदनी कथा—इस संसार में किये हुए कर्मों का फल जीव को यहीं भोगना पड़ता है। जो किसी पूर्वकृत महान् कर्मों के उदित होने के कारण उन कर्मों का फल यहाँ नहीं भोग पाते उन्हें उन कर्मों का फल परलोक में भोगना पड़ता है। कृत कर्म का फल भोगे बिना जीव का छूटकारा नहीं है। 'कर्म-गति टारी नाहीं टरे' के सिद्धांत का विवेचन कर विरक्ति जागृत करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहा जाता है। इस कथा के दो भाग हैं। पाप और पुण्य। पाप से संबंध रखने वाली चार भंग और पुण्य से संबंध रखने वाले चार भंग होने से इसके आठ भंग बन जाते हैं।

(1) कभी—कभी इस जन्म में किए हुए पापकर्म इसी जन्म में दुःख देने वाले बन जाते हैं। जैसे चोरी करने वाले परस्त्री गमन करने वाले एवं हत्यारे लोग यहीं पर जेलों में सङ्करे, अपमानित होते हैं और फाँसी के फंदों में लटकते देखे जाते हैं। यह प्रथम निर्वेदनी कथा है।

(2) कभी—कभी इस जन्म में किए हुए दुष्कर्म यहाँ फल नहीं दे पाते क्योंकि पूर्वकृत किसी महान् पुण्य के उदय होने के कारण उस पाप-कर्म को फल देने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता तब वे कर्म इस लोक में अपना फल न देकर परलोक में अर्थात् नरक-यातना के रूप में फल दिया करते हैं। इस प्रकार के कार्यों की विवेचना करने वाली कथा द्वितीय निर्वेदनी कथा कही जाती है।

(3) जीवों को अन्य लोकों में लोकों में किए हुए दुष्कर्मों का फल कभी—कभी यहाँ आकर भुगतना पड़ता है क्योंकि वहाँ पर कृत दुष्कर्मों को फल देने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता, इन्हीं कर्मों के कारण

अनेक जीव जन्मजात रोगी, अंधे, कूबड़े एवं अपांग होते हैं। (पृ. 784 क्षी. स्था. सूत्र) कर्मों की इस प्रकार की कथा को तृतीय निर्वेदनी-कथा कहा जाता है।

(4) कभी—कभी जीव को परलोक में अर्थात् तिर्यच आदि योनियों में एवं कृत कर्मों का फल भोगने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता, तब वह अन्य तिर्यच आदि योनियों में एवं नरकादि में ही जाकर उन कर्मों का फल भोगता है। कर्म-गति का ऐसा वर्णन करना जिससे श्रोताओं में वैराग्य का उदय हो जाये उसे चतुर्थ 'निर्वेदनी-कथा' कहा जाता है।

इसी प्रकार शास्त्रकार ने पुण्यानुबंधी कर्मों का भी चतुर्विध विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कहा है—

(1) कभी—कभी जीव इस लोक में किये हुए उत्कृष्ट शुभ कर्मों के फल को यहाँ भोगने का अवसर प्राप्त कर जैसे तीर्थकर का दिया हुआ वर्षीदान इस लोक में ही फलदायक होता है, उसे 'प्रथम पुण्यानुबंधिनी निर्वेदनी-कथा' कहा जाता है।

(2) कभी—कभी जीव अपने द्वारा कृत पुण्य कर्मों का फल यहाँ नहीं प्राप्त कर पाता है, क्योंकि पूर्व-जन्मों में किए गए पाप-पुण्य का उदय उन्हें साधना एवं तप में लीन रहने के कारण फल देने का अवसर नहीं आने देता है तब जीव उन कर्मों का फल परलोक में जाकर प्राप्त करता है जैसे सम्यक् साधना संपन्न सु-साधु इस लोक में सुख-भोग प्राप्त न करके परलोक में जाकर प्राप्त करता है। इस प्रकार के कर्मों का वैराग्य साधक वर्णन करना पुण्यानुबंधिनी निर्वेदनी-कथा का द्वितीय रूप है।

(3) कभी—कभी जीव अतीत भवों में कृत पुण्य कर्मों का फल इस संसार में मानव-रूप में जन्म लेकर प्राप्त करता है। जैसे तीर्थकर बनने वाली दिव्य आत्माएँ पर लोग—कृत पुण्यों के उदय से तीर्थकर पद प्राप्त कर देती हैं। कर्म-परंपरा के वैराग्य के उदय में सहायक इस रूप को पुण्यानुबंधिनी तृतीय निर्वेदनी कथा कहा जाता है।

(4) जब जीव अन्य जन्म में कृत कर्मों का फल मध्य के भव में न

भाकर हम भव में आकर प्राप्त करता है। जैसे तीर्थकर नाम गोत्र भासकर आगे चाली आत्माएँ स्वर्गादि में फल न पाकर यहाँ आकर तीर्थकर पव प्राप्त करती हैं तब कर्म—गति के इस वैराग्य—साधक रूप के वर्णन को पुण्यानुबंधिनी निर्वदनी कथा का चतुर्थ रूप कहा जाता है। धर्म—कथा का प्रवचन एवं विश्लेषण श्रोता और वक्ता दोनों के लिए कल्याणकारी है, क्योंकि प्रवचन—समय में वक्ता की चित्त—वृत्तियाँ धर्मसागर की चिंतन लहरों में तैरने लगती हैं। चित्त—धर्म—वृत्ति पर एकाग्र हो जाता है। धीरे—धीरे पाप से उपरति और धर्म के प्रति अनुरक्ति बढ़ने लगती है यह धर्मानुरक्ति कर्म—निर्जरा में सहायक होती है। श्रोता भी पाप और पुण्य के स्वरूप को समझता हुआ पाप से दूर और धर्म के निकट होता जाता है। वह भी प्रवचन काल में इतना एकाग्र हो जाता है कि कुछ क्षणों के लिए आत्म—प्रतिष्ठित होकर कर्म निर्जरा करता हुआ शुद्ध—बुद्ध हो जाता है।

अतः यह धर्म कथा—विश्लेषण वक्ता श्रोता दोनों के लिए मंगलकारी है। (पृ. 784 स्थानांग सूत्र)

शब्द भी पुद्गल की पर्याय

शब्दबन्धसौक्ष्यस्थैल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽतपोद्योतवन्तश्च ।

(स्व.सू.पृ. 308 (24))

शब्द—बन्ध—सौक्ष्य—स्थैल्य—संस्थान—भेद—तमः
छाया—आतप—उद्योत—वन्तश्च पुद्गला भवन्ति ।

Manifestations of pudgala (matter) take the form of sound, union, fineness, grossness, figure, divisibility, darkness, shade or image, sunshine and moonlight.

तथा वे शब्द, बंध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद, अंधकार, छाया, आतप और उद्योत वाले होते हैं।

इस सूत्र में आधुनिक विज्ञान की, भौतिक विज्ञान की विभिन्न शाखायें तथा रासायनिक विज्ञान की शाखाओं का वर्णन किया गया है पाँचों इन्द्रियों के विषय अर्थात् पाँचों इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य

संपूर्ण पदार्थ पुद्गल की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। जैसे—कान से सुनने योग्य शब्द, आँखों से देखने योग्य वर्ण एवं संस्थान, प्रकाश अंधकार, छोटा—बड़ा आकार आदि। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने कहा है—

सद्वो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमश्छाया ।

उज्जोदादवसहिया पुग्गलदब्बस्स पज्जाया ॥ (16) द्रव्य संग्रह

शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप इससे सहित जो हैं वे सब पुद्गल द्रव्य के पर्याय हैं।

(1) शब्द—शब्द के दो भेद हैं—(1) भाषात्मक शब्द, (2) अभाषा रूप। भाषात्मक शब्द के दो प्रकार है :—(1) साक्षर, (2) अनक्षर। जिसमें शास्त्र रचे जाते हैं और जिससे आर्य और म्लेच्छों का व्यवहार चलता है ऐसे संस्कृत शब्द और इससे विपरीत शब्द ये सब साक्षर शब्द हैं। जिससे उनके सातिशय ज्ञान के स्वरूप का पता लगता है ऐसे दो इन्द्रिय आदि जीवों के शब्द अनक्षरात्मक शब्द हैं। ये दोनों प्रकार के शब्द प्रायोगिक हैं। अभाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं—(1) प्रायोगिक, (2) वैस्त्रसिक। मेघ आदि के निमित्त से जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे वैस्त्रसिक शब्द हैं। तथा तत, वितत, घन और सौषिर के भेद से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं। चमड़े से मढ़े हुए पुष्कर, मेरी और दुर्दर से जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत् शब्द है। तांत वाले वीणा और सुघोष आदि के ताड़न से जो शब्द उत्पन्न होता है वह वितत शब्द है। ताल, घंटा आदि के ताड़न से जो शब्द उत्पन्न होता है वह घन शब्द है। तथा बाँसुरी और शंख आदि के फूँकने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह सौषिर शब्द है।

(2) बंध—बंध के दो भेद हैं—वैस्त्रसिक और प्रायोगिक। जिसमें पुरुष का प्रयोग अपेक्षित नहीं है वह वैस्त्रसिक बंध है। जैसे स्निग्ध और रुक्ष गुण के निमित्त से होने वाला बिजली, उल्का, मेघ, अग्नि और इन्द्रधनुष आदि का विषयभूत बंध वैस्त्रसिक बंध है। और जो बंध पुरुष के प्रयोग के निमित्त से होता है वह प्रायोगिक बंध है। इसके दो भेद हैं—अजीव संबंधी और जीवाजीव संबंधी। लाख और लकड़ी आदि का

अजीव संबंधी प्रायोगिक बंध है। तथा कर्म और नोकर्म का जो जीव से बंध होता है वह जीवाजीव संबंधी प्रायोगिक बंध है।

(3) सूक्ष्मत्व—सूक्ष्मत्व के दो भेद हैं—(1) अन्त्य, (2) आपेक्षिक। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मत्व है तथा बेल, ऊँवला और बेर आदि में आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है।

(4) स्थूलत्व—स्थौल्य भी दो प्रकार का है—(1) अन्त्य, (2) आपेक्षिक। जगव्यापी महास्कंध में अन्त्य स्थौल्य है तथा बेर, ऊँवला और बेल आदि में आपेक्षिक स्थौल्य है।

(5) संस्थान—संस्थान का अर्थ आकृति (आकार) हैं इसके दो भेद हैं—(1) इत्थंलक्षण, (2) अनित्थंलक्षण। जिसके विषय में यह संस्थान इस प्रकार का है यह निर्देश किया जा सके वह इत्थंलक्षण संस्थान है। वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, आयत, परिमण्डल आदि ये सब इत्थंलक्षण संस्थान हैं। तथा इसके अतिरिक्त मेघ आदि के आकार जो कि अनेक प्रकार के हैं और जिनके विषय में यह इस प्रकार का है यह नहीं कहा जा सकता वह अनित्थंलक्षण संस्थान है।

(6) भेद—भेद के छह भेद हैं—(1) उत्कर, (2) चूर्ण, (3) खण्ड, (4) चूर्णिका, (5) प्रतर, (6) अणुचटन। करोंत आदि से जो लकड़ी को चीरा जाता है वह उत्कर नाम का भेद है। जौ और गेहूँ आदि का जो सत्तू और कनक आदि बनता है वह चूर्ण नाम का भेद है। घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते हैं वह खण्ड नाम का भेद है। उड़द और मूँग आदि का जो खण्ड किया जाता है वह चूर्णिका नाम का भेद है। मेघ के जो अलग—अलग पटल आदि होते हैं वह प्रतर नाम का भेद है। तपाये हुए लोहे के गोले आदि के घन आदि से पीटने पर जो स्फुलिंगे निकलते हैं वह अणुचटन नाम का भेद है।

(7) अंधकार—जिससे दृष्टि में प्रतिबंध होता है और जो प्रकाश का विरोधी है वह तम कहलाता है।

(8) छाया—प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है वह छाया कहलाती है। उसके दो भेद हैं—एक तो वर्णादि के विकार रूप से परिणत हुई और दूसरी प्रतिबिम्ब रूप।

(9) आतप—जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है उसे आतप कहते हैं।

(10) उद्योत—चन्द्रमणि और जुगुनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश पैदा होता है उसे उद्योत कहते हैं।

कम्पन (योग) से कर्म परमाणुओं का आक्रमण—बंधन

सः आस्रवः । (2)

This yoga is the channel of Asrava or inflow of karmic matter into the soul.

वही आस्रव है— काययोग, वचनयोग एवं मनोयोग से आस्रव होने के कारण इन योगों को ही आस्रव कहा है। कर्म परमाणु का योग के द्वारा आकर्षित होकर आने को आस्रव कहते हैं। योग आस्रव होने में कारण है तथापि सूत्र में कारण में कार्य का उपचार कर योग को ही आस्रव कहा है। जैन अन्न प्राण नहीं है तो भी प्राण की स्थिति में कारण होने से अन्न को ही प्राण कह देते हैं।

जैसे—नौका में छिद्र होने पर छिद्र से पानी नौका में प्रवेश कर लेता है उसी प्रकार मन, वचन, काय के परिस्पन्दन रूपी छिद्र से कर्म का आगमन होता है, उसे आस्रव कहते हैं। आस्रव के दो भेद हैं। (1) द्रव्य आस्रव, (2) भाव आस्रव।

द्रव्य संग्रह में द्रव्य आस्रव एवं भाव आस्रव का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

(1) भाव आस्रव—

आस्रवदि जेण कम्मं परिणामेणप्णो स विण्णेऽो ।

भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥ (29) पृ.69

जिस परिणाम से आत्मा के कर्म का आस्रव होता है उसको श्री जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिए। और भावास्रव से भिन्न ज्ञानावरणादिरूप कर्मों का जो आस्रव है सो द्रव्यास्रव है।

(2) द्रव्य आस्रव-

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समास्रवदि ।

दव्वास्रवो स ऐओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥ (31) पृ. 71

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गलं आता है उसको द्रव्यास्रव जानना चाहिए। वह अनेक भेदों सहित है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

योग के निमित्त से आस्रव के भेद

शुभः पुण्यास्याशुभः पापस्य । (3)

Asrava is of 2 kinds : शुभ or good which is the inlet of virtue of meritorious karmas अशुभ or bad which is the inlet of vice or demeritorious karmas.

शुभ योग पुण्य का और अशुभ योग पाप का आस्रव है।

शुभ योग पुण्य और अशुभ योग पापास्रव का कारण है। हिंसा, असत्य भाषण, वध आदि की चिंता रूप अपध्यान अशुभ योग है। हिंसा, दूसरे की बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण (चोरी), मैथुन—प्रयोग आदि अशुभ काययोग है। असत्य भाषण, कठोर मर्मभेदी वचन बोलना आदि अशुभ वचन योग है। हिंसक परिणाम, ईर्ष्या, असूया आदि रूप मानसिक परिणाम अशुभ मनोयोग है।

अशुभ योग से भिन्न अनन्त विकल्प वाला शुभ योग है। जैसे अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि शुभ काययोग है। अर्हन्त भवित्ति, तप की रुचि—श्रुत का विनय आदि विचार शुभ मनोयोग है। सत्य, हित—मित वचन बोलना शुभ वाग्योग है।

शुभ परिणामपूर्वक होने वाला योग शुभ योग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ योग कहलाता है। “पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेतिवा पुण्यम्। कर्मणः स्वातन्त्र्य विवक्षाया पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्। पारतन्त्र्य विवक्षायां करणत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् तत्सद्वेद्यादि । (तत्त्वार्थ वार्तिके)

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र की जाती है वह पुण्य कहलाता है। अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुखसाता का अनुभव करे, वह साता वेदनीय आदि कर्म पुण्य हैं। स्वतंत्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य से निष्पन्न पुण्य शब्द है। पारतन्त्र्य विवक्षा में करण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है, जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है, वह पुण्य है। “तत्प्रतिद्वन्द्वरूपं पापम्। तस्य पुण्यस्य प्रतिद्वन्द्वरूपं पापमिति विज्ञायते। पाति रक्षत्यात्मानम् अस्माच्छुभं परिणामादिति पापभिधानम्। तत्सद्वेद्यादि ।” (तत्त्वार्थ वार्तिके)

पुण्य का प्रतिद्वन्द्वी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा की शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे वह पाप कहलाता है, वह असातावेदनीय आदि पापकर्म है।

प्रश्न—जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी को परतंत्र करना, वैसे ही पुण्य—पाप दोनों ही आत्मा को परतंत्र करने में निमित्त कारण है। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ है, पाप है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है।

उत्तर—पुण्य—पाप को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि सोने या लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा की परतंत्रता में कारण हैं तथापि इष्ट फल और अनिष्ट फल के निमित्त से पुण्य और पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषय आदि का निवर्तक (हेतु) है, वह पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रियों के विषय आदि का कारण है वह पाप है। इस प्रकार पुण्यकर्म और पापकर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्रव का कारण है और अशुभ योग पापास्रव का कारण है।

ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव

तत्प्रदोषनिहनवमात्सर्यान्तरायासादनोपघातादर्शनज्ञानावरणयोः ।

(स्व.सू.पृ. 370 (10))

1. प्रदोष—Depreciations of the learned scriptures.
2. निन्हव—Concealment of knowledge.
3. मात्सर्य—Envy, Jealousy, Refusal to impart knowledge out of envy.
4. अन्तराय—Obstruction, Hindering the progress of knowledge.
5. आसादना—Denying the truth proclaimed by another by body and speech.
6. उपघात—Refuting the truth, although it is known to be such.

ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निन्हव, मात्सर्य, अंतराय, आसादना और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्र हैं।

1. प्रदोष—किसी के ज्ञानकीर्तन (महिमा सुनने) के अनंतर मुख से कुछ न कहकर अंतरंग में पिशुनभाव होना, ताप होना प्रदोष है। मोक्ष की प्राप्ति के साधनभूत मति, श्रुत आदि पाँचों ज्ञानों की वा ज्ञान के धारी की प्रशंसा करने पर वा प्रशंसा सुनने पर मुख से कुछ नहीं कहकर के मानसिक परिणामों में पैशून्य होता है वा अंतःकरण में उसके प्रति जो ईर्ष्या का भाव होता है, वह प्रदोष कहलाता है।
2. निन्हव—दूसरे के अभिसंधान से ज्ञान का व्यपलाप करना निन्हव है। यत्किंचिंत् परनिमित्त को लेकर किसी बहाने से किसी बात को जानने पर भी मैं इस बात को नहीं जानता हूँ, पुस्तक आदि के होने पर भी “मेरे पास पुस्तक आदि नहीं है” इस प्रकार ज्ञान को छिपाना, ज्ञान का व्यपलपन करना, ज्ञान के विषय में वंचना करना निन्हव है।
3. मात्सर्य—देय ज्ञान को भी योग्य पात्र के लिए नहीं देना मात्सर्य है। किसी कारण से आत्मा के द्वारा भावित, देने योग्य ज्ञान को भी योग्य पात्र के लिए नहीं देना मात्सर्य है।
4. अंतराय—ज्ञान का व्यवच्छेद करना अंतराय है। कलुषता के

कारण ज्ञान का व्यवच्छेद करना, कलुषित भावों के वशीभूत होकर ज्ञान के साथ पुस्तक आदि का व्यवच्छेद करना, नाश करना, किसी के ज्ञान में विघ्न डालना अंतराय है।

5. आसादना—वचन और काय से वर्जन करना आसादना है। दूसरे के द्वारा प्रकाशित ज्ञान का काय एवं वचन से वर्जन (गुण—कीर्तन, विनय आदि नहीं करना) आसादना है।

6. उपघात—प्रशस्त ज्ञान में दूषण लगाना उपघात है। स्वकीय बुद्धि और हृदय की कलुषता के कारण प्रशस्त ज्ञान भी अप्रशस्त, युक्त भी अयुक्त प्रतीत होता है अतः समीचीन ज्ञान में भी दोषों का उद्भावन करना, झूठा दोषारोपण करना उपघात कहलाता है, उसको उपघात जानना चाहिए।

प्रदोषादि के विषय भेद से, भेद सिद्ध होने से ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्र पृथक्-पृथक् हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्र भिन्न—भिन्न समझने चाहिए, क्योंकि विषय—भेद से प्रदोषादि भिन्न हो जाते हैं। ज्ञानविषयक प्रदोषादि ज्ञानावरण के और दर्शन विषयक प्रदोषादि दर्शनावरण के आस्र के कारण होते हैं। आचार्य और उपाध्याय के प्रतिकूल चलना, अकाल में अध्ययन करना, अश्रद्धा, शास्त्र अभ्यास में आलस्य करना, अनादर से अर्थ का श्रवण, तीर्थोपरोद्ध (दिव्य ध्वनि) के काल में स्वयं व्याख्यान करने लगना, स्वकीय बहुश्रुत का गर्व करना, मिथ्योपदेश देना, बहुश्रुतवान् का अपमान का अनादर करना, अपने पक्ष का दुराग्रह, स्वपक्ष के दुराग्रह के कारण असंबद्ध प्रलाप करना, सूत्रविरुद्ध बोलना, असिद्ध से ज्ञानाधिगम (असिद्ध से ज्ञान—प्राप्ति) शास्त्रविक्रय और हिंसादि कार्य ज्ञानावरण कर्म के आस्र के कारण हैं। दर्शन मात्सर्य, दर्शनान्तराय, आँखें फोड़ना, इन्द्रियों के विपरीत प्रवृत्ति, अपनी दृष्टि का गर्व, बहुत देर तक सोये रहना, दिन में सोना, आलस्य, नास्तिक्य, सम्यग्दृष्टियों में दूषण लगाना, कुतीर्थ प्रशंसा, जीवहिंसा और मुनिगणों के प्रति ग्लानि के भाव आदि भी दर्शनावरण कर्म के आस्र के कारण हैं।

महाभारत में कहा भी है—

ये पुरा मनुजा देवि ज्ञानदर्पसमन्विताः ।
 श्लाघमानाश्च तत् प्राप्य ज्ञानाहङ्कारमोहिता ॥
 वदन्ति ये परान् नित्यं ज्ञानाधिक्येनदर्पिताः ।
 ज्ञानादसूयां कुर्वन्ति न सहन्ते हि चापरान् ॥
 तादृशा मरणं प्राप्ताः पुनर्जन्मनि शोभने ।
 मानुष्यं सुचिरात् प्राप्य तत्र बोधविवर्जिताः ॥
 भवन्ति सततं देवि यत्रतो हीनमेधसः ॥

जो मनुष्य ज्ञान के घमण्ड में आकर अपनी झूठी प्रशंसा करते हैं और ज्ञान पाकर अहंकार से मोहित हो दूसरों पर आक्षेप करते हैं, जिन्हें सदा अपने अधिक ज्ञान का गर्व रहता है, जो ज्ञान से दूसरों के दोष प्रकट किया करते हैं, और दूसरे ज्ञानियों को नहीं सहन कर पाते हैं, शोभने! ऐसे मनुष्य मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म लेने पर चिरकाल के बाद मनुष्य योनि पाते हैं। देवी! उस जन्म में वे सदा यत्न करने पर भी बोधहीन और बुद्धि रहित होते हैं।

दुःखदायी कर्म के आगमन (आस्रव)

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य । (11)

The inflow of pain bringing feeling असातावेदनीय Karmic matter is due to the following :

1. दुःख pain, 2. शोक sorrow, 3. ताप remorse, 4. आक्रंदन weeping, 5. वध depriving of vitality, 6. परिदेवना piteous or pathetic moaning to attract compassion. अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान, दुःख, शोक, ताप, आक्रंदन, वध और परिदेवना ये असातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं।

(1) दुःख—पीड़ा लक्षण परिणाम को दुःख कहते हैं। विरोधी पदार्थों का मिलना, अभिलिष्ट (इष्ट) वस्तु का वियोग, अनिष्ट संयोग एवं निष्ठुर वचन श्रवण आदि बाह्य साधनों की अपेक्षा से तथा असातावेदनीय के उदय से उत्पद्यमान पीड़ा लक्षण परिणाम दुःख कहा जाता है।

(2) शोक—अनुग्राहक के संबंध का विच्छेद होने पर वैकल्पविशेष शोक कहलाता है। अनुग्रह एवं उपकार करने वाले जो बंधु आदि हैं उनका विच्छेद वा वियोग हो जाने पर उसका बार-बार विचार करके जो चिंता, खेद और विकलता आदि मोहकर्म विशेष शोक के उदय से मानसिक ताप होता है, वह शोक कहलाता है।

(3) ताप—परिवादादि निमित्त के कारण कलुष अंतःकरण का तीव्र अनुशय ताप हैं परिभवकारी कठोर वचन के सुनने आदि से कलुष चित वाले व्यक्ति के जो भीतर—ही—भीतर तीव्र जलन या अनुशय पश्चाताप के परिणाम होते हैं, उसे ताप कहते हैं।

(4) आक्रंदन—परिताप से उत्पन्न अश्रुपात, प्रचुर विलाप आदि से अभिव्यक्त होने वाला क्रंदन ही आक्रंदन है। मानसिक परिताप के कारण अश्रुपात, अंगविकार—माथा फोड़ना, छाती कूटना आदि पूर्वक विलाप करना, रुदन करना आदि क्रियाएँ होती हैं, वह आक्रंदन है वा उसे आक्रंदन समझना चाहिए।

(5) वध—आयु, इन्द्रिय, बल, श्वासोच्छ्वास आदि का वियोग करना वध है। भवधारण का कारण आयु है। रूप—रसादि, ग्रहण करने का साधन वा निमित्त इन्द्रियाँ हैं। कायादि वर्गणा का अवलंबन श्वासोच्छ्वास लक्षण प्राण है। इन प्राणों का परस्पर विघात करना, वध कहा जाता है।

(6) परिदेवन—अतिसंक्लेशपूर्वक स्व—पर अनुग्राहक, अभिलिष्ट विषय के प्रति अनुकंपा, उत्पादक रुदन परिदेवन है। अतिसंक्लेश परिणामों के अवलंबनपूर्वक ऐसा रुदन करना, विलाप करना जिसे सुनकर अपने तथा दूसरे को अनुकंपा उत्पन्न हो जाय, उसे परिदेवन कहते हैं।

यद्यपि दुःख की ही अनंत जातियाँ होने से ये सभी दुःख रूप हैं तथापि कुछ मुख्य—मुख्य जातियों का निर्देश किया है। जैसे 'गौ' अनेक प्रकार की होती है और केवल 'गौ' कहने से सबका ज्ञान नहीं हो पाता अतः खण्डी, मुण्डी, शाबलेय, श्वेत—काली आदि विशेषों को ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार दुःख विषयक आस्रव के असंख्ये

लोक प्रमाण भेद संभव होने से दुःख ऐसा कहने पर विशेष ज्ञान न होने से कुछ विशेष निर्दर्शन से उसके विवेक (भेद) की प्रतिपत्ति किस प्रकार हो सके, इसलिए शोकादि को पृथक् ग्रहण किया है; जिससे ये सर्व भिन्न-भिन्न सुगृहीत होते हैं, इनमें दुःख का लक्षण और उसी का विस्तार है, वह सुष्ठु रीति से दुःख के पर्यायवाची शब्दों को जानने के लिए है।

दुःख, शोक, ताप, आक्रंदन का ग्रहण दुःख के विकल्पों का उपलक्षण रूप है। जो उपलक्षण होता है, वह अपने सदृश का ग्राही होता है अतः शोकादि के ग्रहण से असातावेदनीय के आस्रव के कारणभूत अन्य सर्व विकल्पों का संग्रह हो जाता है। अशुभ प्रयोग, पर परिवाद, पैशून्य, अनुकंपा का अभाव (अदया), परपरिताप, आंगोपांगच्छेद, भेद, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सन तक्षण, विशंसन, बंधन, रोधन, मर्दन, दमन, वाहन, विहेड़न, हेपण, शरीर को रुखा कर देना, परनिंदा, आत्म प्रशंसा, संकलेश प्रादुर्भावन, अपनी आयु यदि अधिक हो तो उसका अभिमान, निर्दयता, हिंसा, महारंभ, महापरिग्रह का अर्जन, विश्वासघात, कुटिलता, पापकर्म जीवित्व, अनर्थदण्ड, विषमिश्रण, बाण, जाल, पाश, रस्सी, पिञ्जरा, यंत्र आदि हिंसा के साधनों का उत्पादन, बलाभियोग, शस्त्र देना और पापमिश्रित भाव इत्यादि भी दुःख शोकादि से गृहीत होते हैं। आत्मा में, पर में और उभय में रहने वाले ये दुःखादि परिणाम असातावेदनीय के आस्रव के कारण होते हैं।

दर्शनमोहनीय का आस्रव

केवलिश्रुतसंघर्षदेवावर्णवादोदर्शनमोहस्य । (13)

केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है।

जिनका ज्ञान आवरण रहित है वे केवली कहलाते हैं। अतिशय बुद्धि वाले गणधर देव उनके उपदेशों का स्मरण करके जो ग्रंथों की रचना करते हैं वह श्रुत कहलाता है। रत्नत्रय से युक्त श्रमणों का समुदाय संघ कहलाता है। सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित आगम में उपादिष्ट

अहिंसा ही धर्म है। चार निकाय वाले देवों का कथन पहले कर आये हैं। गुण वाले बड़े पुरुषों में जो दोष नहीं है उनका उनमें उद्भावन करना अवर्णवाद है। इन केवली आदि के विषय में किया गया अवर्णवाद दर्शनमोहनीय के आस्रव का कारण है। यथा केवली कवलाहार से जीते हैं इत्यादि रूप से कथन करना केवलियों का अवर्णवाद है। शास्त्रों में मांस भक्षण आदि को निर्दोष कहा है इत्यादि रूप से कथन करना श्रुत का अवर्णवाद है। ये शूद्र हैं, अशुचि हैं, इत्यादि रूप से अपवाद करना संघ का अवर्णवाद है। जिनदेव के द्वारा उपदिष्ट धर्म में कोई सार नहीं जो इसका सेवन करते हैं, वे असुर होंगे इस प्रकार कथन करना धर्म का अवर्णवाद है। देव सुरा और मांस आदि का सेवन करते हैं इस प्रकार का कथन देवों का अवर्णवाद है।

अशुभ नामकर्म का आस्रव

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः । (22)

The inflow of अशुभनाम bad body-making karma is caused by a non-straight forward or deceitful working of the mind, body or speech or by विसंवाद Wrangling, etc. wrong-belief, envy, back-bitting, self praise, censuring and others etc.

योग वक्रता और विसंवाद ये अशुभ नामकर्म के आस्रव हैं। मन में कुछ सोचना, वचन से कुछ दूसरे प्रकार से कहना और काय से भिन्न रूप से ही प्रवृत्ति करना योगवक्रता है। मन, वचन और काय का व्याख्यान पहले ही किया जा चुका है, उनकी कुटिलता योगवक्रता कहलाती है। अनार्जव का प्रयत्न ही कुटिलता है।

अन्यथा प्रवृत्ति करना, कराना विसंवादन है। दूसरों को अन्यथा प्रवृत्ति कराना, वस्तु के स्वरूप का अन्यथा प्रतिपादन करना अर्थात् श्रेयोमार्ग पर चलने वालों को उस मार्ग की निंदा करके बुरे मार्ग पर चलने को कहना विसंवादन है।

'च' शब्द अनुकृत के समुच्चय के लिए है। अनुकृत अशुभ

नामकर्म के आस्रव का संग्रह करने के लिए 'च' शब्द का प्रयोग किया गया है। अनुकृत अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण कौन—कौन हैं? मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिर चित्त स्वभावता, कूटमान—तुलाकरण (झूठे बाट, तराजू रखना), कृत्रिम सुवर्ण मणिरत्न आदि बनाना, झूठी साक्षी देना, अंग—उपांग का छेदन करना, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श का विपरीतपना अर्थात् स्वरूप विकृति कर देना, यंत्र, पिंजरा आदि पीड़ाकारक पदार्थ बनाना, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का विषय संबंध करना, माया की बहुलता, परनिन्दा, आत्म प्रशंसा, मिथ्या भाषण, परद्रव्य हरण, महारंभ, महापरिग्रह, उज्ज्वल वेष और रूप का घमण्ड करना, कठोर और असभ्य भाषण करना, क्रोधभाव रखने और अधिक बकवाद करने में अपने सौभाग्य का उपभोग करना, दूसरों को वश करने के प्रयोग करना, दूसरे में कौतूहल उत्पन्न करना, बढ़िया—बढ़िया आभूषण पहनने की चाह रखना, जिन्मंदिर—चैत्यालय से गंध (चंदन) माल्य, धूप आदि को चुरा लेना, किसी की विडम्बना करना, उपहास करना, ईंट—चूने का भट्ठा लगाना, वन में अग्नि लगाना, प्रतिमा का, प्रतिमा के आयतन का अर्थात् चैत्यालय का और जिनकी छाया में विश्राम लिया जाए ऐसे बाग—बगीचों का विनाश करना, तीव्र क्रोध, मान, माया और लोभ करना तथा पापकर्म जिसमें हो ऐसी आजीविका करना इत्यादि बातों से भी अशुभ नामकर्म का आस्रव होता है। ये सब अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

नीच गोत्र का आस्रव

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोदभावनेचनीचैर्गोत्रस्य ।

The inflow of नीच गोत्र low-faimily-determining karma is caused by-

1. परनिन्दा—Seaking ill of others.
2. आत्म प्रशंसा—Praising oneself.
3. सद्गुणोच्छादन—Concealing the good qualities of other; and.

4. असद्गुणोदभावन—Proclaiming in oneself the good qualities which one does not possess.

परनिन्दा, आत्म प्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन, असद्गुणों का उदभावन ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।

सच्चे या झूठे दोष को प्रकट करने की इच्छा निन्दा है। गुणों को प्रकट करने का भाव प्रशंसा है। पर और आत्म शब्द के साथ इनका क्रम से संबंध होता है। यथा परनिन्दा और आत्म प्रशंसा। रोकने वाले कारणों के रहने पर प्रकट नहीं करने की वृत्ति होना उच्छादन है और रोकने वाले कारणों का अभाव होने पर प्रकट करने की वृत्ति होना उदभावन है। यहाँ भी क्रम से संबंध होता है। यथा—सद्गुणोच्छादन और असद् गुणोदभावन इन सबको नीच गोत्र के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

उच्च गोत्र कर्म का आस्रव

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य । (26)

The inflow of the next, i.e., उच्च गोत्र hight-faimily-determining karma is caused by the opposite of the above, i.e. by-

1. पर प्रशंसा—Praising others;
2. आत्म निन्दा—Denouncing one's self;
3. सद्गुणोदभावन—Proclaiming the good-qualities of others.
4. असद्गुणोदछादन—Not proclaiming one's own;
5. नीचैर्वृत्ति—An attitude of humility towards one's better;
6. अनुत्सेक—Not being proud of one's own achievements or attainments.

उनका विपर्यय अर्थात् पर प्रशंसा, आत्म निन्दा, सद्गुणों का उदभावन और असद् गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं।

जो गुणों में उत्कृष्ट हैं उनके प्रति विनय से नम्र रहना नीचैवृत्ति है। ज्ञान आदि की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुए भी उसका मद न करना अर्थात् अहंकार रहित होना अनुत्सेक है। ये उत्तर अर्थात् उच्च गोत्र के आस्रव के कारण हैं।

तीर्येश गुरु सङ्घानामुच्चैः पदमयात्मनाम् ।

प्रत्यहं व नुतिं भवितं तन्वन्ति गुण कीर्तनम् ॥ (196)

स्वस्य निन्दां च येऽत्रार्या गुणिदोषोपगूहनम् ।

तेऽपुत्र त्रिजगद्वन्द्यं गोत्रंश्रयन्ति गोत्रतः ॥ (197)

जो आर्यजन तीर्थकर, सुगुरु, जिनसंघ और उच्चपदमयी पंच परमेष्ठियों की प्रतिदिन पूजा—भवित करते हैं, उनके गुणों का कीर्तन करते हैं उन्हें नमस्कार करते हैं, अपने दोषों की निन्दा करते हैं और दूसरे गुणीजनों के दोषों का उपगूहन करते हैं, वे पुरुष उच्च गोत्र कर्म के परिपाक से पर भव में त्रिजगद्वन्द्य उच्च गोत्र कर्म का आश्रय प्राप्त करते हैं अर्थात् तीर्थकर होते हैं।

कर्मास्रव रोकने के कारण

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ 2 ॥

Stoppage (is effected) by control, carefulness, virtue, contemplation conquest by endurance and conduct. It is produced by-

3 kinds of गुप्ति, preservation, contrd.

5 kinds of समिति, carefulness.

10 kinds of धर्म, observances, virtue.

12 kinds of अनुप्रेक्षा, Meditation, contemplation.

22 kinds of परीषहजय, subdual of sufferings or conquest by endurance.

5 kinds of चारित्र, conduct.

वह संवर, गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है।

गुप्ति—संसार के कारणों से आत्मा के गोपन वा रक्षण को गुप्ति कहते हैं।

समिति—दूसरे प्राणियों की रक्षा की भावना से सम्यक् प्रवृत्ति करने को समिति कहते हैं।

धर्म—इष्ट स्थान में जो धरता है, वह धर्म है। जो आत्मा को नरेन्द्र, सुरेन्द्र, मुनीन्द्र आदि स्थानों में धरता है, वह धर्म है।

अनुप्रेक्षा—शरीरादि के स्वभाव का बार—बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है।

परीषहजय—परीषह का जीतना परीषहजय कहलाता है।

चारित्र—जो आचरण किया जाय, वह चारित्र है।

गुप्ति, समिति आदि के द्वारा कर्मों का निरोध किया जाता है। अतः गुप्ति आदि संवर से पृथक् सिद्ध होते हैं, गुप्ति आदि कारण है और संवर कार्य है। इनमें कार्य—कारण भेद भी है, क्योंकि गुप्ति आदि के द्वारा संवर होता है।

द्रव्य संग्रह में कहा है—

वदसमितिगुप्तीओं धम्माणुपेहा परीसहजओय ।

चारित्तं बहुभेया णायव्वाभावसंवरविसेसा ॥ (35) ॥

पाँच व्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहों का जय तथा अनेक प्रकार का चारित्र इस प्रकार ये सब भाव संवर के भेद जानने चाहिए।

गुप्ति का लक्षण

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः । (4) ॥

Curbing activity well is control. गुप्ति Prevention of proper control nigraha over mind मन, speech वचन, and body काय।

योगों का सम्यक् प्रकार निग्रह करना गुप्ति है।

उस मन—वचन, काय को यथेच्छ विचरण से रोका जाता है,

उसको निपाह कहा जाता है। मन, वचन—काय रूप योग का निग्रह
योग निपाह कहा जाता है।

इसका 'सम्यक्' यह विशेषण सत्कार, लोकपंवित आदि
आकांक्षाओं की निवृत्ति के लिए है। पूजा पुरस्सर क्रिया सत्कार
कहलाती है, 'यह संयत महान् है' ऐसी लोक प्रसिद्धि लोकपंवित है।
इस प्रकार और भी इहलौकिक फल की आकांक्षा आदि का उद्देश्य
न लेकर तथा पारलौकिक सुख की आकांक्षा न करके किया गया
योग का निग्रह गुप्ति कहलाता है। उसका ज्ञान कराने के लिए
सम्यक् विशेषण दिया गया है।

इसलिए कायादि के निरोध होने से तद् निमित्तक कर्मों के रुक
जाने से गुप्ति आदि में संवर की प्रसिद्धि है ही अर्थात् सम्यग्विशेषण
विशिष्ट, संक्लेश परिणामों के प्रादुर्भाव से रहित कायादियोगों का
सम्यक् प्रकार निरोध हो जाने पर काय—वचन—मन रूप योग के
निमित्त से होने वाले, आने वाले कर्मों का आस्रव रुक जाना ही संवर
है, कर्मों का रुक जाना ही संवर है, ऐसा जानना चाहिए। गुप्ति तीन
प्रकार की है—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। इसमें अयत्नाचारी
के बिना देखे, बिना शोधे भूमि प्रदेश पर घूमना, दूसरी वस्तु रखना,
उठाना, शयन करना, बैठना आदि शारीरिक क्रियाओं के निमित्त से
जो कर्म आते हैं, वा कायिक निमित्त जिन कर्मों का अर्जन होता है,
उन कर्मों का आस्रव काययोग का निग्रह करने वाले अप्रमत्त
गुणस्थानवर्ती संयमी के नहीं होता। इसी प्रकार वाचनिक असंवरी—संवर
रहित असत् प्रलापी जीव के अप्रिय वचनादि का हेतुक (अप्रिय वचन
बोलने आदि से) जो वाचनिक व्यापार निमित्तक कर्म आते हैं, वचनों
का विग्रह करने वाले वचनयोगी के उन कर्मों का आस्रव नहीं होता।
जो राग—द्वेषादि से अभिभूत प्राणी के अतीत, अनागत विषयाभिलाषा
आदि से मनोव्यापार निमित्तक कर्म आते हैं, वे कर्म मनोनिग्रही के नहीं
आते, अतः योगनिग्रह (योग का निरोध) हो जाने पर तत्संबंधी कर्म
कभी नहीं आते अर्थात् उन कर्मों का संवर हो जाता है। अतः
योगनिग्रही के संवर सिद्ध है।

समिति के भेद

इर्याभाष्यादाननिक्षेपोत्सर्गः समितयः । (5)

Walking, speech, eating, lifting and laying down and depositing waste products constitute the fivefold regulation of activities.

समिति—Carefullness in to take.

सम्यक् ईर्या समिति—Proper care in walking.

सम्यक् भाषा समिति—Proper care in speaking.

सम्यक् एषणा समिति—Proper care in eating.

सम्यक् आदाननिक्षेप समिति—Proper care in lifting and laying.

सम्यक् उत्सर्ग समिति—Proper care in excreting.

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ
हैं।

(1) ईर्या समिति—

फासुयमग्गेण दिवा जुंगतरप्पेहिणा सकज्जेण।

जंतूणि परिहरंतेणिरियासमिदि हवे गमणं ॥ (11) मूलाचार भाग—1

प्रयोजन के निमित्त चार हाथ आगे जमीन देखने वाले साधु के
द्वारा दिवस में जीवों की रक्षा करते हुए गमन करना ईर्या समिति है।

(2) भाषा समिति—

पेसुणहासककसपरणिदाप्पपसंसविकहादी।

वज्जित्ता सपरहियं भासासमिदि हवे कहणं ॥ (12)

चुगली, हँसी, कठोरता, परनिन्दा, अपनी प्रशंसा और विकथा
आदि को छोड़कर अपने और पर के लिए हितरूप बोलना भाषा
समिति है।

पिशुन—चुगली के भाव को पैशुन्य कहते हैं—अर्थात् निर्दोष के
दोषों का उद्भावन करना, निर्दोष को दोष लगाना। हास्य कर्म के
उदय से अधर्म के लिए हर्ष होना हास्य है। कान के लिए कठोर, काम

और युद्ध के प्रवर्तक वचन कर्कश हैं। पर के सच्चे अथवा झूठे दोषों को प्रकट करने की इच्छा होना अथवा अन्य के गुणों को सहन नहीं कर सकना यह परनिन्दा है। अपनी प्रशंसा-स्तुति करना अर्थात् अपने गुणों को प्रकट करने का अभिप्राय रखना और स्त्रीकथा, भक्तकथा, चोरकथा और राजकथा आदि को कहना विकथादि हैं। इन चुगली आदि के वचनों को छोड़कर अपने और पर के लिए सुखकर अर्थात् कर्मबंध के कारणों से रहित वचन बोलना भाषा समिति है।

तात्पर्य यह है कि पैशुन्य, हास्य, कर्कश, परनिन्दा, आत्म प्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर स्व और पर के लिए हितकर जो कथन करना है, वह भाषा समिति है।

(3) एषणा समिति-

छादालदोषसुद्धं कारणजुतं विसुद्धणवकोडी ।

सीदादीसमभुत्ती परिसुद्धा एसणासमिदि ॥ (23)

छ्यालीस दोषों से रहित शुद्ध, कारण से सहित, नव—कोटि से विशुद्ध और शीत—उष्ण आदि में समान भाव से भोजन करना यह संपूर्णतया निर्दोष एषणा समिति है।

(4) आदान—निक्षेपण समिति-

णाणुवहि संजमवहिं सउचुवहिं अण्णमप्पमुवहिं वा ।

पयदं गहणिक्खेवोसमिदि आदाणणिक्खेवा ॥ (34)

ज्ञान का उपकरण, संयम का उपकरण, शौच का उपकरण अथवा अन्य भी उपकरण को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना और रखना आदान—निक्षेपण समिति है।

(5) प्रतिष्ठापन समिति-

एगंते अच्चित्ते दूरेगूढे विसालमविरोहे ।

उच्चारादिच्चाओ पदिठावणिया हवे समिदि ॥ (15)

एकान्त, जीव—जंतु रहित, दूर स्थित, मर्यादित, विस्तीर्ण, और

विरोध रहित स्थान में मल—मूत्रादि का त्याग करना प्रतिष्ठापना समिति है।

दश—धर्म

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपत्यागा—
किंचन्नब्रह्मचर्याणि धर्मः । (6)

Supreme forbearance, modesty, straight forwardness, purity, truthfullness, self restraint, austerity, renunciation, non-attachment and celibacy constitute virtue or duty.

The दशलाक्षणीधर्म, 10 observances are constitute virtue are :

उत्तम क्षमा—Forgiveness or supreme forbearance.

उत्तम मार्दव—Humility or modesty.

उत्तम आर्जव—Straight forwardness, honesty.

उत्तम शौच—Contentment or purity.

उत्तम सत्य—Truth or truthfullness.

उत्तम संयम—Restraint.

उत्तम तप—Austerities.

उत्तम त्याग—Renunciation.

उत्तम आकिंचन—Not taking the non-self for one's own self and

उत्तम ब्रह्मचर्य—Chastity, all of the highest degree.

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग आकिंचन और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है।

अध्याय-४

मौन, प्रवचनमाता एवं उसके फल

मौन के भेद एवं लाभ

मौनाद् भोजनवेलायां ज्ञानस्य विनयो भवेत् ।

रक्षणं चापमानस्य तद्वदन्ति मुनीश्वराः ॥ (38)

अक्षरैर्न विना शब्दास्तेऽपि ज्ञानप्रकाशकाः ।

तद्-रक्षार्थं च षट्स्थाने मौनं श्रीजिनभाषितम् ॥ (39)

पूज्यपाद श्रावका, श्रावकाचार संग्रह भाग—॥॥

भोजन के समय मौन रखने से ज्ञान का विनय होता है, तथा अपमान से भी अपनी रक्षा होती है, ऐसा मुनीश्वर कहते हैं। अक्षरों के बिना पद-वाक्यादि रूप शब्द नहीं होते, अतः वे भी ज्ञान के प्रकाशक हैं। इसलिए ज्ञान की रक्षा के लिए छह स्थानों पर मौन रखना चाहिए ऐसा श्री जिन भगवान् ने कहा है वे छह स्थान इस प्रकार हैं—भोजन, पूजन, मैथुन—सेवन, मलमूत्र—विसर्जन, गमन और आवश्यक क्रिया करते समय मौन रखें।

मौन के अतिवार

मुखहस्ताङ्गुलीसंज्ञाखात्कारस्थालवादनैः ।

नन्दवद्धाक्षरालापैर्जायिते मौनदूषणम् ॥ (464)

ब्रतोद्योतन श्रावका.

मुख, हाथ, अंगुली से संकेत करना, खंखारना, थाली बजाना, मेंढक के समान अक्षरों को बोलना (टर्ट-टर्ट करना) ये मौन ब्रत के दूषण हैं।

श्रुत्वाऽतिकर्कशा क्रन्द विड्वर प्रायनिःस्वनम् ।

मुक्त्वा नियमितं वस्तु भोज्येऽशक्यविवेचनैः ॥ (32)

संसृष्टे सति जीवदिभर्जीवैर्वा बहुभिर्मृतैः ।

इदं मांसमिति दृष्ट—संकल्पै चाशनं त्यजेत् ॥ (33)

गृद्ध्यैहुड्कारादि सज्ज्ञां संकलेशं च पुरोऽनु च ।

मुञ्चन्मौनमदन्कुर्यात् तपः संयम वृंहणम् ॥ (34)

अभिमानावने गृद्धिरोधाद् वर्धयते तपः ।

मौनं तनोति श्रेयश्च श्रुतप्रश्रयतायनात् ॥ (35)

शुद्धमौनान्मनः सिद्ध्या शुक्लध्यानाय कल्पते ।

वाक्सद्ध्या युगपत्साधुस्त्रैलोक्यानुग्रहाय च ॥ (36)

उद्योतनं नहेनैकघण्टादानं जिनालये ।

असर्वकालिके मौने निर्वाहः सर्वकालिके ॥ (37)

आवश्यके मलक्षेषे पापकार्यं य वान्तिवत् ।

मौन कुर्वीत शश्वद्वा भूयोवाग्दोषविच्छिदे ॥ (38)

सागरधर्ममृत

खाने योग्य पदार्थ की प्राप्ति के लिए अथवा भोजन विषयक इच्छा को प्रगट करने के लिए हुँकारना और ललकारना आदि इशारों को तथा भोजन के पीछे संकलेश को छोड़ता हुआ भोजन करने वाला ब्रती श्रावक तप और संयम को बढ़ाने वाले मौन को करें। भावार्थ—मौन से तप और संयम की वृद्धि होती है। इसलिए ब्रती श्रावक भोजन करते समय मौन का पालन करें। तथा किसी वस्तु की लोलुपता से ‘हूँ हूँ’ करना, अंगुली का इशारा करना, खाँसना, खखारना, भौंहे चलाना, सिर मटकाना इत्यादि इशारे का त्याग करें। लोग भोजन कराते समय परोसने आदि का ख्याल नहीं रखते अथवा परवाह नहीं करते इत्यादि रूप से भोजन के आगे या पीछे संकलेश नहीं करें। मौन स्वाभिमान की अर्थात् अयाचक्त्व रूप ब्रत की रक्षा होने से तथा भोजन विषयक लोलुपता के निरोध से तप को बढ़ाता है और श्रुतज्ञान की विनय के संबंध से पुण्य को बढ़ाता है। भावार्थ—मौनपूर्वक भोजन करने से मौनी के स्वाभिमान की रक्षा होती है, याचनाजनित दोष नहीं लगता, संतोष के कारण भोजन विषयक लोलुपता का निरोध होता है,

इससे तप की वृद्धि होती है तथा भोजनादिक में मौन रखने से शब्दात्मक द्रव्यश्रुत की विनय पलती है इसलिए कल्पाण की वृद्धि होती है। श्रावक और मुनि निरतिचार मौनव्रत पालन से मन की सिद्धि के द्वारा शुक्ल ध्यान के लिए समर्थ होता है और वचन की सिद्धि के द्वारा एक ही काल में तीनों लोकों के भव्य जीवों का उपकार करने के लिए समर्थ होता है। भावार्थ—साधु तथा श्रावक के भोजनादि के समय निरतिचार मौनव्रत के पालन से मन की सिद्धि होती है, जिससे वे शुक्ल ध्यान के लिए समर्थ होते हैं। यथा वाक्सिद्धि भी प्राप्त होती है, जिसके प्रसाद से केवलज्ञान या दिव्य ध्वनि द्वारा धर्मोपदेश देने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। अपनी शक्ति के अनुसार किसी नियत काल के लिए ग्रहण किये गये मौनव्रत में बड़े भारी उत्सव अथवा पूजन के साथ जिनमंदिर में एक घंटा का दान करना उद्यापन है और जीवन पर्यन्त के लिए ग्रहण किये गये मौनव्रत में उस मौन का निराकुल रीति से पालन करना उद्यापन ही है। भावार्थ—परिमित काल के लिए ग्रहीत मौन को असार्वकालिक मौनव्रत और यावज्जीवन के लिए ग्रहीत मौन को सार्वकालिक मौनव्रत कहते हैं। असार्वकालिक मौनव्रत का ही उद्यापन किया जाता है। और उत्सव या जिनपूजन पूर्वक जिनमंदिर में एक 'घंटा' दान करना ही उसका उद्यापन है। सार्वकालिक मौनव्रत में यावज्जीव मौन का पालन करना ही उद्यापन है। श्रावक या मुनि वमन की तरह सामायिक आदि छह आवश्यकों में, मलमूत्र के क्षेपण करने में, पाप के कार्यों में और स्नान, भोजन तथा मैथुन आदिक में मौन को करे अथवा बहुत से वचन संबंधी दोषों को दूर करने के लिए निरंतर ही मौन करें।

तथा मौनं विधातव्यं व्रतिना मानवर्द्धनम्।

वाग्दोषहानये द्वेधा कादाचित्कं सदातनम्॥ (43)

भोजनं पूजनं स्नानं हृदनं मूत्रणं तथा।

आवश्यकं रतिं नार्याः कुर्यान्मौनेन तद्व्रती॥ (44)

हुंकारो हस्तसंज्ञा च मुक्तो भूचापचालनम्।

गृद्धयै पुरोऽनु च क्लेशो न कार्यं मौन धारिणा॥ (45)

साधुर्मौनान्मनः शुद्धिं लभते शुक्लदायिनीम्।

युगपद्वाक्यसिद्धिं च त्रैलोक्याणुगृहानुगाम्॥ (46)

मौने कृते कृतस्तेन श्रुतस्य विनयो ह्यतः।

तेन सम्प्राप्यते ज्ञानं केवलं केवलाच्छिवः॥ (47)

उद्योतनं मखेनैकघंटादानं जिनालये।

कादाचित्कालिके मौने निर्वाहः सर्वदातने॥ (48)

धर्मसंग्रह श्रावकाचार

व्रती पुरुषों को अपने वचन दोष दूर करने के लिए काल की अवधि तक अथवा जीवन—पर्यन्त इस तरह दो प्रकार मौन धारण करना चाहिए। मौनव्रत धारण करने वालों को भोजन, जिन भगवान् का पूजन, स्नान, शौच, मूत्र आवश्यक (सामायिकादि षट्कर्म) और स्त्रियों के साथ रमण ये सब कार्य मौनपूर्वक करना चाहिए। मौनव्रत के धारण करने वालों को भोजन करते समय लोलुपता के अर्थ हुँकार, हाथ से किसी प्रकार का संकेत, भ्रू आदि को चलाना तथा क्लेश आदि नहीं करना चाहिए। साधु पुरुष (मुनि) इसी मौनव्रत के प्रभाव से शुक्ल ध्यान को प्राप्त कराने वाली मनःशुद्धि तथा तीन लोक में अनुग्रह करने वाली वचनशुद्धि को एक साथ प्राप्त होते हैं। जिस पुरुष ने मौनव्रत धारण किया है उसने मौनव्रत ही धारण नहीं किया है किन्तु इसके साथ ही श्रुत (शास्त्र) का भी विनय किया है। इसलिए मौनव्रत धारण करने वाले नियम से पहले लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त करके फिर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जिनपुरुषों ने काल की मर्यादा लिए मौनव्रत धारण किया है उन्हें जिनपूजनादि उत्सव करके मौनव्रत का उद्योतन (उद्यापन) करना चाहिए। तथा जिनालय में एक घंटा दान देना चाहिए। और जिन महात्मा पुरुषों ने आजीवन के लिए मौनव्रत धारण किया है उन्हें तो बस आजीवन पर्यन्त ठीक रीति से उसका पालन करना चाहिए, उनके लिए यही उद्यापन है।

भोजन के समय मौन

भोजनं कुर्वता कार्यं मौनं शीलवता सता।

सन्तोषित्वमिवानिन्द्यं भैक्ष्यशुद्धिविधायिना। (101)

सर्वदा शास्यते जोषं ब्रु भोजने तु विशेषतः।
एसायनं सदा श्रेष्ठं सरोगित्वे पुनर्न किम्॥ (102)

(अमित. श्रा.)

अब आचार्य मौन के गुणों का वर्णन करते हुए भोजनादि के समय मौन-धारण करने का उपदेश देते हैं—जैसे भिक्षा की शुद्धि का आचरण करने वाले साधु को अनिन्द्य सन्तोषपना के साथ मौन-धारण करना आवश्यक है, उसी प्रकार शीलवान् पुरुष को भी भोजन करते हुए सदा मौन धारण करना चाहिए। मौन, रहना सदा—सदा ही प्रशंसनीय है। फिर भोजन के समय में तो मौन रखना विशेषकर प्रशंसनीय है।

मौन से संतोष में दृढ़ता-

संतोषो भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दृश्यते।

संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते॥ (103)

जो पुरुष मौन धारण करता है, उसका संतोष दृढ़ होता है, उससे वैराग्य भाव दिखाई देता है और उससे संयम पुष्ट होता है।

मौन से दोष निवारण-

वचोव्यापारतो दोषा ये भवन्ति दुरुत्तराः।

ते सर्वेऽपि निर्वार्यन्ते मौनव्रत विधायिना॥ (104)

सागरोऽपि जनो येन प्राप्यते यत्संयमम्।

मौनस्य तस्य शक्यन्ते केन वर्णयितुं गुणाः॥ (105)

जोषेण विशतो रोधः कल्प्य विधीयते।

बलिष्ठेन महिष्ठेन सलिलस्येव सेतुना॥ (106)

वचनों के व्यापार से जो भयंकर दोष उत्पन्न होते हैं, वे सब मौनव्रत के धारण करने वाले पुरुष के द्वारा सहज में ही निवारण कर दिये जाते हैं। जिस मौनव्रत के द्वारा गृहस्थ भी मनुष्य मुनि के संयम को प्राप्त होता है, उस मौनव्रत के गुण किसके द्वारा वर्णन किये जा सकते हैं। जैसे पुरुषा बने हुए महान् बाँध के द्वारा जल रोका जाता

है, उसी प्रकार मौन के द्वारा भीतर प्रवेश करते हुए पापों का निरोध किया जाता है।

मौन के दोष-

हुङ्काराङ्गलिखात्कारभूमर्द्धचलनादिभिः।

मौनं विदधता सञ्ज्ञा विधातव्या न गृद्धते॥ (107)

मौन को धारण करने वाला पुरुष भोजन की गृद्धि के लिए हुँकार, अँगुलि-चालन, खात्कार (खंखारना), भृकुटी चढ़ाना और सिर हिलाना आदि के द्वारा किसी प्रकार का संकेत न करें।

मौन के भेद-

सार्वकालिकमन्यच्च मौनं द्वेधा विधीयते।

भक्तितः शक्तितो भव्यैर्भवभ्रमणभीरुभिः॥ (108)

भव्येन शक्तितः कृत्वा मौनं नियतकालिकम्।

जिनेन्द्रभवने देया घण्टिका समहोत्सवे॥ (109)

न सार्वकालिके मौने निर्वाहव्यतिरेकतः।

उद्यापनं परं प्राज्ञैः किञ्चनापि विधीयते॥ (110)

भवभ्रमण से भयभीत भव्य पुरुषों को अपनी शक्ति के अनुसार भवितपूर्वक सर्वकालिक और असार्वकालिक यह दो प्रकार का मौन धारण करना चाहिए। भावार्थ—जीवन पर्यन्त के लिए धारण किया गया मौन सार्वकालिक कहा जाता है। अल्प या नियत समय के लिए धारण किया गया मौन असार्वकालिक कहलाता है। नियत कालिक मौन पालन करके भव्य पुरुषों के भवित से जिनेन्द्र भवन में महोत्सव करके घंटा देना चाहिए। सार्वकालिक मौन में निर्वाह के अतिरिक्त और किसी प्रकार के उद्यापन का कुछ भी विधान ज्ञानियों ने नहीं किया है। भावार्थ—असार्वकालिक मौनव्रत की पूर्णता होने पर मंदिर में घंटा का दान करना उसका उद्यापन है। किन्तु सार्वकालिक मौन में उसका पूर्ण रूप से निर्वाह करना ही उद्यापन है।

मौन पारण के योग्य समय-

आवश्यके मलक्षेपे पापकार्यं विशेषतः।

मौनी न पीडिते पापैः सन्नद्धः सायकैरिव ॥ (111)

जिस प्रकार सदा बख्तर (कवच) आदि से सन्नद्ध योद्धा बाणों से पीड़ित नहीं होता है, उसी प्रकार सामायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओं के करते समय, मलमूत्र के क्षेपण के समय, भोजन के समय और विशेषकर मैथुन—सेवनादि पाप कार्यों के करते समय मौन धारण करने वाला पुरुष पापों से पीड़ित नहीं होता है।

मौन के नाशक-

कोपादयो न संक्लेशा मौनव्रतफलार्थिना ।

पुरः पश्चाच्च कर्तव्या सूद्यते तद्वितैः कृतैः ॥ (112)

मौनव्रत के फलार्थी पुरुष को भोजनादि के करने से पूर्व या पश्चात् क्रोधादिक अथवा किसी प्रकार का संक्लेशादिक नहीं करना चाहिए। क्योंकि कषाय या संक्लेशादि करने से मौनव्रत का विनाश हो जाता है।

मौन से उत्तम गुणों की प्राप्ति-

वाचंयमः पवित्राणां गुणानां हित कारिणाम् ।

सर्वेषां जायते स्थानं मणीनामिव नीरधिः ॥ (113)

वाणी मनोरमा तस्य शास्त्रसन्दर्भगर्भिता ।

आदेया जायते येन क्रियते मौनमुज्ज्वलम् ॥ (114)

पदानि यानि विद्यन्ते वन्दनीयानि कोविदैः ।

सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिना मौनकारिणा ॥ (115)

निर्मलं केवलज्ञानं लोकालोकावलोकनम् ।

लीलया लभ्यते येन किं तेनान्यन्न कांक्षितम् ॥ (116)

(अमि.श्रा.अ. 12)

जैसे समुद्र सर्व प्रकार के मणियों का स्थान है, उसी प्रकार वचन का संयम पालने वाला मौन धारक पुरुष सभी सुखकारी पवित्र गुणों का स्थान हो जाता है अर्थात् मौन धारण करने वाले पुरुष को सभी उत्तम गुण स्वयं प्राप्त होते हैं। जो पुरुष उज्ज्वल निर्दोष मौन का पालन करता है, उसकी वाणी शास्त्र—सन्दर्भ से युक्त, मनोहर और सर्व के द्वारा आदरणीय हो जाती है। संसार में विद्वानों के द्वारा वंदनीय जितने भी पद हैं, वे सब मौन धारण करने वाले प्राणियों को प्राप्त होते हैं। जिस मौनव्रत के द्वारा लोक और परलोक (अलोक) का अवलोकन करने वाला निर्मल केवलज्ञान लीलामात्र से प्राप्त हो जाता है, उससे अन्य मनोवांछित कौनसी वस्तु नहीं मिलेगी? सर्व ही मिलेगी।

मौनाध्ययन वृत्ति क्रिया-

कृतदीक्षोपवासस्य प्रवृत्तेः पारणाविधो,

मौनाध्ययनवृत्तत्वमिष्टमाश्रुतनिष्ठितेः ।

वाचंयमोविनीतात्मा विशुद्धकरणत्रयः,

सोऽधीयीत श्रुतं कृत्स्नमामूलादगुरुसन्निधो ।

श्रुतं हि विधिनानेन भव्यात्मभिरुपासितम्,

योग्यतामिह पुण्याति परत्रापि प्रसीदति । (श्रावका. संग्रह । पृ. 42)

जिसने दीक्षा धारणकर उपवास किया है, तथा विधिपूर्वक पारणा करने में प्रवृत्ति की है ऐसा वह साधु श्रुत के अभ्यास की समाप्ति पर्यन्त मौन धारण कर शास्त्रों के अभ्यास में संलग्न रहता है, इसे मौनाध्ययनवृत्ति कहते हैं। वचन—संयमी, विनयशील, मन—वचन—काय से विशुद्ध उस साधु को गुरु के गुरु के समीप में रहकर आदि से लेकर अंत तक समस्त शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार की विधि से भव्यात्माओं के द्वारा उपासना किया गया वह शास्त्रज्ञान इस भव में योग्यताओं को पुष्ट करता है और परभव में प्रसन्न रखता है।

सम्यक्त्वपूर्वक मन—वचन—काय से मौन धारणपूर्वक जो ध्यान—अध्ययनादि करते हैं उन्हें मुनि कहते हैं। यथा—

मौनवृति संपन्न मुनि—

मन्यते यो जगत्तत्वं, स मुनिः परिकीर्तिः।

सम्यक्त्वमेव तन्मौनं, मौनं सम्यक्त्वमेव च॥ (1)

ज्ञान सार पृ. 97

जो जगत् के स्वरूप को जानता है उसी को मुनि कहा जाता है इसलिए सम्यक्त्व ही मुनित्व (मौन) है और मुनित्व (मौन) ही सम्यक्त्व है।

Sagehood-One who realizes the true nature of life and matter on this earth is called a 'Muni.' Thus the state of a muni (sagehood) is synonymous with righteousness.

आत्माऽत्मन्येव यच्छुद्धं, जानात्यात्मानमात्मना।

सेयं रत्नत्रये ज्ञप्तिरुच्याचारैकता मुनेः॥ (2)

आत्मा आत्मा में ही शुद्ध आत्मा को आत्मा के द्वारा जानता है ऐसी ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रयी श्रद्धा और आचार को अभेद परिणति मुनि को होती है।

The soul realizes the inherent purity of soul through the natural activity of soul. Such is the sublime fused state of the trilogy of knowledge, perception and conduct. Such a fusion manifests itself in a true sage.

चारित्रमात्मचरणाद् ज्ञानं वा दर्शनं मुनेः।

शुद्धज्ञानये साध्यं, क्रियालाभात् क्रियानये। (3)

आत्मा में आचरण से चारित्र है ऐसे शुद्ध ज्ञान नय के अभिप्राय से ज्ञान और दर्शन मुनि के साध्य हैं। क्रियानय के अभिप्राय से ज्ञान के फल रूप क्रिया के लाभ से साध्य रूप है।

True conduct is delving in the soul. From the view point of such pure knowledge the goal of a sage is perception and knowledge. From the view point of action the goal is the ben-

efits drawn from the actions guided by pure knowledge.

यतः प्रवृत्तिर्न मणौ, लभ्यते वा न तत्फलम्।

अतात्त्विकी मणिज्ञप्तिर्मणिश्रद्धा च सा यथा। (4)

जिससे न तो मणि में प्रवृत्ति हो और न उस प्रवृत्ति का फल प्राप्त होता हो ऐसे अवास्तविक मणि का ज्ञान और मणि की श्रद्धा जैसी होती है।

As the knowledge of and faith in a non-existent jewel neither inspires one to obtain it nor can it be obtained.

तथा यतो न शुद्धात्मस्वभावाऽचरणं भवेत्।

फलं दोषनिवृत्तिर्वा, न तद् ज्ञानं न दर्शनम्। (5)

वैसे ही जिससे शुद्ध आत्मा स्वभाव का आचरण अथवा दोष निवृत्ति रूप फल नहीं मिलता वह न तो ज्ञान है और न दर्शन है।

Similarly, that which does not lead to pursuits of the self or purification of inner faults is neither true perception nor true knowledge.

यथा शोफस्य पुष्टत्वं, यथा वा वध्यमण्डनम्।

तथा जानन्मवोन्मादमात्मतृप्तो मुनिर्भवेत्। (6)

जिस प्रकार सूजन आ जाने से पुष्ट हो जाने की कल्पना करे अथवा वध करने योग्य पुरुष को माला पहनाने से वह गौरव की कल्पना करें। संसार का उन्माद ऐसा ही है इसलिए ऐसे उन्माद को जानने वाले मुनि आत्मा के विषय में संतुष्ट रहते हैं।

Just like a flabby body need not be healthy and a garlanded man, prepared for the sacrificial altar, is not to be enoied, so a sage knows that this vivacious world is actually full of miseries and thus he remains content with his soul and his 'self.'

सुलभं वाग्नुच्चारं मौनमेकेन्द्रियेष्वपि।

पुद्गलेष्वप्रवृत्तिस्तु, योगानां मौनमुत्तमम्। (7)

वाणी का उच्चारण नहीं करने रूप मौन एकेन्द्रियों को भी

पुलभ है लेकिन पुदगलों में मन—वचन—काया की अप्रवृत्ति ही श्रेष्ठ
मीठ कहलाता है।

To not utter the spoken world is not true speechlessness. For even the unicellular organisms are adept at that. Observance of true speechlessness is effected through non-indulgence in matter (anything other than self) by all the three modes-mind, speech and body.

ज्योतिर्मयीव दीपस्य, क्रिया सर्वापि चिन्मयी ।

यस्याऽनन्यस्वभावस्य, तस्य मौनमनुत्तरम् । (8)

जिस प्रकार दीपक की सभी क्रियाएँ (ज्योति का ऊँचा नीचा आड़ा—टेढ़ा होना) प्रकाशमय होती है उसी प्रकार अन्य स्वभाव में अपरिणित जिस आत्मा की सभी क्रियायें ज्ञानमय है उसका मुनित्व सर्वोत्कृष्ट है।

Just like a lamp, with its flame in to matter which direction or position, always emits light, so a sage well established in the knowledge of his soul spreads knowledge no matter what he says or does. (ज्ञानसार पृ. 97)

प्रवचनमाता

माता के समान रक्षण करने वाली तथा द्वादशाङ्गरूप प्रवचन को प्रसव करने वाली प्रवचनमाता का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र में निम्न प्रकार से किया है—

अद्व पवयणमायाओ समई गुत्ती तहेव य ।

पंचेव य समीर्जो तओ गुत्तीओ आहिया ॥ (1)

चौबीसवाँ अध्य.

समिति और गुप्ति—रूप अष्ट प्रवचन—माताएँ हैं। समितियाँ पाँच और गुप्तियाँ तीन कही गई हैं।

इरियाभासेसणादाणे उच्चारे समई इय ।

मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती य अद्वमा ॥ (2)

ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान समिति और

उच्चार समिति (ये पाँच समितियाँ हैं) तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति, ये (ये तीन गुप्तियाँ हैं)।

एयाओ अद्व समईओ समासेण वियाहिया ।

दुवालसंगं जिणक्खायं मायं जत्थ उ पवयणं ॥ (3)

ये आठ समितियाँ संक्षेप में कही गई है, जिनमें जिनेन्द्र कथित द्वादशांग रूप समग्र प्रवचन अंतर्भूत है।

भाषा समिति—

कोहे माणे य मायाए लोमे य उवउत्तया ।

हासे भए मोहरिए विगहासु तहेव य ॥ (9)

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, मौख्य और विकथाओं के प्रति सतत् उपयोग युक्त होकर रहे।

एयाइं अद्व ठाणाइं परिवज्जित्तु संजए ।

असावज्जं मियं काले भासं भासेज्ज पन्नवं ॥ (10)

प्रज्ञावान् संयमी साधु इन आठ (पूर्वोक्त) स्थानों को त्यागकर उपयुक्त समय पर निरवद्य (दोषरहित) और परिमित भाषा बोले।

वचनगुप्ति : प्रकार और विधि—

सच्चा तहेव मोसा य सच्चामोसा तहेव य ।

चउत्थी असच्चमोसा वझगुत्ती चउविहा ॥ (22)

वचनगुप्ति के चार प्रकार हैं—(1) सत्या, (2) मृषा तथा (3) सत्यामृषा और (4) असत्यामृषा।

संरम्भ—समारम्भे आरम्भे य तहेव य ।

वयं पवत्तमाणं तु नियत्तेज्ज जयं जई ॥ (23)

यतनावान् यति (मुनि) संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्त्तमान वचन का निवर्त्तन करे (रोके और शुभ में प्रवृत्त करे)।

सामिति और गुप्ति में अंतर-

एयाओ पंच समईओ चरणस्स य पवत्तणे ।

गुत्ती नियत्तणे वुत्ता असुभत्थेसु सव्वसो ॥ (26)

ये पाँच समितियाँ चारित्र की प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्तियाँ समस्त अशुभ विषयों (अर्थों) से निवृत्ति के लिए कही गई हैं।

विवेचन-निष्कर्ष-समितियाँ प्रवृत्ति रूप हैं, जबकि गुप्तियाँ प्रवृत्ति निवृत्ति उभयरूप हैं।

प्रवचनमाताओं के आचरण का सुफल-

एया पवयणमाया जे सम्म आयरे मुणी ।

से खिप्पं सव्वसंसारा विष्पमुच्चई पण्डिए ॥

जो पण्डित मुनि इन प्रवचनमाताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही समग्र संसार (जन्म-मरण रूप चारुगतिक संसार) से मुक्त हो जाता है।

साधुओं के मौन-योग्य (भाषा-समिति)

ठाणाइं संति सङ्घीणं, गामेसु णगरेसु वा ।

अथि वा णथि वा धम्मो? अथि धम्मो ति णो वदे ॥ (16)

(सूत्रकृतांग पृ. 391)

अथि वा णाथि वा पुण्ण? अथि पुण्ण ति वो वदे ।

अहवा णथि पुण्ण ति, एवमेयं महब्यं ॥ (17)

ग्रामों या नगरों में धर्म श्रद्धालु श्रावकों के स्वामित्व के स्थान साधुओं को ठहरन के लिए प्राप्त होते हैं। वहाँ कोई धर्म श्रद्धालु हिंसामय कार्य करे तो आत्मगुप्त (अपने को पाप प्रवृत्ति से बचाने वाला) जितेन्द्रिय साधु उस हिंसा का अनुमोदन न करें।

दाण्ड्याए जे पाणा, हम्मंति तस-थावरा ।

तेसिं सारक्खद्वाण, तम्हा अथि ति णो वए ॥ (18)

जेसिं तं उवकप्पेति, अण्ण-पाणं तहाविहं ।

तेसिं लाभंतराय ति, तम्हा णथि ति णो वदे ॥ (19)

यदि कोई साधु से पूछे कि इस (पूर्वोक्त प्रकार के आरंभजन्य) कार्य में पुण्य है या नहीं? तब साधु पुण्य है, यह न कहे अथवा पुण्य नहीं होता, यह कहना भी महाभयकारक है । (17)

अन्न या पानी आदि के दान के लिए जो त्रस और स्थावर अनेक प्राणी मारे जाते हैं उनकी रक्षा करने के हेतु वे साधु उक्त कार्य में पुण्य होता है, यह न कहे। किन्तु, जिन जीवों को दान देने के लिए तथा विधि (आरंभपूर्वक) अन्नपान बनाया जाता है, उनको (उन वस्तुओं के) लाभ होने में अंतराय होगा, इस दृष्टि से साधु उस कार्य में पुण्य नहीं होता ऐसा भी न कहे।

जे य दाणं पसंसति, वहमिच्छन्ति पाणिणं ।

जे य णं पडिसेहंति, वित्तिच्छेयं करेंति ते ॥ (20)

जो दान (सचित्त पदार्थों के आरंभ से जनित वस्तुओं के दान) की (आरंभ क्रिया करते समय) प्रशंसा करते हैं, वे (प्रकारान्तर से) प्राणियों के वध की इच्छा (अनुमोदना) करते हैं, जो दान का निषेध करते हैं, वे वृत्ति छेदन (प्राणियों की जीविका का नाश) करते हैं।

दुहओ वि ते ण भासंति, अथि वा नथि व पुणो ।

आयं रयस्स हेच्चाणं, णिव्वाणं पाउणंति ते ॥ (21)

(सूत्रकृतांग 11 पृ. 391)

अतः (हिंसा रूप आरंभ से जन्य वस्तुओं के) दान में 'पुण्य होता है' या 'नहीं होता है,' ये दोनों बाते साधु नहीं कहता है। ऐसे (विषय में) मौन या तटस्थ रहकर या निरवद्य भाषण के द्वारा) कर्मों की आय (आश्रव) को त्यागकर (निर्वाण) मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

भाषा-समिति-मार्ग-विवेक-

प्रस्तुत सूत्र गाथाओं में अहिंसा महाव्रती साधुओं को अहिंसा व्रत की सुरक्षा के लिए भाषा समिति का विवेक बताया गया है।

भाषा विवेक संबंधी गाथाओं का हार्द-

साधु पूर्ण अहिंसाव्रती है, वह मन-वचन-काय से न स्वयं हिंसा

कर या करा सकता है, न ही हिंसा का अनुमोदना कर सकता है। और यह भी स्वाभाविक है कि धर्म का उत्कृष्ट पालक एवं मार्गदर्शक होने के नाते ग्रामों या नगरों में धर्म श्रद्धालु लोगों द्वारा बनवाये हुए धर्मशाला, पथिकशाला, जलशाला, अन्नशाला आदि किसी स्थान में वे लोग साधु को ठहरायें। वहाँ कोई व्यक्ति दान-धर्मार्थ किसी चीज को आरंभपूर्वक तैयार करना चाहे या कर रहे हों, उस संबंध में साधु से पूछे कि हमारे इस कार्य में पुण्य है या नहीं?

साधु के समक्ष इस प्रकार का धर्मसंकट उपस्थित होने पर वह क्या उत्तर दें? शास्त्रकार ने इस संबंध में भाषा समिति से अनुप्राणित धर्म मार्ग का विवेक बतलाया है, कि साधु यह देखे कि उस दानार्थ तैयार की जाने वाली वस्तु में त्रस-स्थावर प्राणियों की हिंसा अनिवार्य है, या हिंसा हुई है, ऐसी स्थिति में यदि वह उस कार्य को पुण्य है, ऐसा कहता है या उसकी प्रशंसा करता है तो उन प्राणियों की हिंसा के अनुमोदन का दोष उसे लगता है, इसीलिए उक्त आरंभजनित कार्य में 'पुण्य है', ऐसा न कहे। साथ ही वह ऐसा भी न कहे कि 'पुण्य नहीं होता है,' क्योंकि श्रद्धालु व्यक्ति साधु के मुँह से 'पुण्य नहीं होता है,' ऐसे उद्गार सुनकर उनको उक्त वस्तुओं का दान देने से रुक जायेगा। फलतः जिन लोगों को उन वस्तुओं का लाभ मिलना था, वह नहीं मिल पाएगा, उनके जीविका में बहुत बड़ा अंतराय आ जाएगा। संभव है, वे लोग उन वस्तुओं के न मिलने से भूखे-प्यासे मर जायें। इसीलिए शास्त्रकार स्पष्ट मार्गदर्शन देते हैं—दुहओं वि तेण भासन्ति, अथि वा नस्थि वा पुणो।' अर्थात्—साधु ऐसे समय में पुण्य होता है, या नहीं होता है, इस प्रकार दोनों तरफ की बात न कहे, तटस्थ रहे। इस कारण भी शास्त्रकार 20वीं सूत्रगाथा में स्पष्ट कर देते हैं। साधु के द्वारा आरंभजनित उक्त दान की प्रशंसा करना या पुण्य कहना आरंभ क्रिया जनित प्राणीवध को अपने पर ओढ़ लेना है, अथवा अनुकम्पा बुद्धि से दिये जाने वाले उक्त दान करने से लाभ मिलने वाले प्राणियों का वृत्तिच्छेद-आजीविका-भंग है। वृत्तिच्छेद करना भी एक प्रकार की हिंसा है।

प्रश्न होता है—एक ओर शास्त्रकार उन दानादि शुभ कार्यों की प्रशंसा करने या उनमें पुण्य बताने का निषेध करते हैं, दूसरी ओर वे उन्हीं शुभ कार्यों का निषेध करने या पुण्य न बताने का भी निषेध करते हैं; ऐसा क्यों? क्या इस विषय (संबंध) में साधु को 'हाँ' या 'ना' कुछ भी नहीं कहना चाहिए?

वृत्तिकार इस विषय में स्पष्टीकरण करते हैं कि इस संबंध में किसी के पूछने पर मौन धारण कर लेना चाहिए, यदि कोई अधिक आग्रह करे तो साधु को कहना चाहिए कि हम लोगों के 42 दोष वर्जित आहार लेना कल्पनीय है, अतः ऐसे विषय में कुछ कहने का मुमुक्षु साधुओं का अधिकार नहीं है।

किन्तु शास्त्रकार ने सूत्रगाथा 21 के उत्तरार्द्ध में स्वयं एक विवेक सूत्र प्रस्तुत किया है—“आयं रयस्स हेच्चा.....पाउण्टि।” इसका रहस्यार्थ यह है कि जिस शुभ कार्य में हिंसा होती हो या होने वाली हो, उसकी प्रशंसा करने या उसे पुण्य कहने से हिंसा अनुमोदन होता है, तथा हिंसाजनक होते हुए भी जिस शुभ कार्य का लाभ दूसरों को मिलना हो, उसका निषेध करने या उसमें पाप बताने से वृत्तिच्छेद रूप लाभान्तराय कर्म का बंध होता है। इस प्रकार दोनों ओर से होने वाले कर्मबंधन को मौन से या निरवद्य भाषण से टालना चाहिए।

इससे यह फलितार्थ निकलता है कि जिस दानादिक शुभ कार्य के पीछे कोई हिंसा नहीं होने वाली है, या नहीं हो रही है, ऐसी अचित प्रासुक आरंभरहित वस्तु का कोई दान करना चाहे अथवा कर रहा हो, और साधु से उस संबंध में कोई पूछे तो उसमें उसके शुभ परिणामों (भावों) की दृष्टि से साधु 'पुण्य' कह सकता है और अनुकम्पा बुद्धि से दिये जाने वाले दान का निषेध तो उसे कदापि नहीं करना है, क्योंकि शास्त्र में अनुकम्पा दान का निषेध नहीं है। भगवतीसूत्र की टीका में भी स्पष्ट कहा है कि “जिनेश्वरों ने अनुकम्पा दान का तो कदापि निषेध नहीं किया है।” ऐसे निरवद्य भाषण द्वारा साधु कर्म आगमन को भी रोक सकता है और उचित मार्गदर्शन भी कर सकता है। यही भाषा विवेक संबंधी इन गाथाओं का रहस्य है।

पाठान्तर और व्याख्या-

“अस्थि वा णत्थि वा धम्मो अस्थि धम्मो त्ति णो वदे” के स्थान पर वृत्तिकार सम्मत पाठान्तर है—“हण्टं णाणुजाणेज्जा आयगुते जिइंदिए” इसकी व्याख्या वृत्तिकार करते हैं—कोई धर्म श्रद्धालु धर्मबुद्धि से कुआ खुदाने, जलशाला या अन्नसत्र बनाने की परोपकारिणी, किन्तु प्राणियों की उपमर्दनकारिणी क्रियाएँ करने के संबंध में साधु से पूछे कि इस कार्य में धर्म हा या नहीं? अथवा न पूछे तो भी उसके लिहाज या भय से आत्म—गुप्त (आत्मा की पाप से रक्षा करने वाला) जितेन्द्रिय साधु उस व्यक्ति की प्राणी हिंसा युक्त (सावद्य) कार्य का अनुमोदन न करे, न ही उस कार्य में अनुमति दे। “अस्थि वा णत्थि वा पुण्णं?” के बदले पाठान्तर है—तहा गिरं समारब्ध। इन दोनों का भावार्थ समान है। (सूत्रकृतांग एकादश अध्ययन पृ. 394)

वाणी—संयम एवं कट्टुवाणी सहन

सक्का सहेऊँ आसाए कंटया, अओमया उच्छहया नरेण।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए, वईमए कण्णसरे स पुज्जो॥ (6)

(दश.वैका.पृ. 452)

पुरुष धन आदि की आशा से लोहमय काँटों को सहन कर सकता है परन्तु जो किसी प्रकार की आशा रखे बिना कानों में पैठते हुए वचनरूपी काँटों को सहन करता है, वह पूज्य है।

मुहुतदुक्खा हु हवंति कंटया, अओमया ते वि तओ सुउद्धरा।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबंधीणि महब्मयाणि॥ (7)

लोहमय काँटे अल्प समय तक दुःखदायी होते हैं और वे भी शरीर से सहजतया निकाले जा सकते हैं किन्तु दर्वचनरूपी काँटे सहजतया नहीं निकाले जा सकने वाले, वैर की परंपरा को बढ़ाने वाले और महाभयंकर होते हैं।

समावयंता वयणाभिद्याया, कण्णंगया दुभ्मणियं जणंति।
धम्मो त्ति किच्चा परमगग्सूरे, जिइंदिए जो सहई स पुज्जो॥ (8)

सामने से आते हुए वचन के प्रहार कानों तक पहुँचकर दौर्मनस्य उत्पन्न करते हैं। जो शूर व्यक्तियों में अग्रणी, जितेन्द्रिय पुरुष ‘यह मेरा धर्म है’—ऐसा मानकर उन्हें सहन करता है, वह पूज्य है।

अवण्णवायं च परम्मुहस्स, पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं।
ओहारिणि अप्पियकारिणि च, भासं न भासेज्ज सया स पुज्जो॥ (9)

जो पीछे से अवर्णवाद नहीं बोलता, जो सामने विरोधी वचन नहीं कहता, जो निश्चयकारिणी और अप्रियकारिणी भाषा नहीं बोलता, वह पूज्य है।

अलोलुए अक्कुहरे अमाई, अपिसुणे यावि अदीणवित्ती।
नो भावए नो वि य भावियप्पा, अकोउहल्ले य सया स पुज्जो॥ (10)

जो रसलोलुप नहीं होता, इन्द्रजाल आदि के चमत्कार प्रदर्शित नहीं करता, माया नहीं करता, चुगली नहीं करता, दीन भाव से याचना नहीं करता, दूसरों से आत्मश्लाघा नहीं करवाता, स्वयं भी आत्मश्लाघा नहीं करता और जो कुतूहल नहीं करता, वह पूज्य है।

तहेव डहरं व महल्लगं वा, इत्थीपुमं पव्वझयं गिहिं वा।
नो हिलए नो वि य खिंसएज्जा, थंभं च कोहं च चए स पुज्ज। (12)

बालक या वृद्ध, स्त्री या पुरुष, प्रव्रजित या गृहस्थ को दुश्चरित की याद दिलाकर जो लज्जित नहीं करता, उसकी निंदा नहीं करता, जो गर्व और क्रोध का त्याग करता है वह पूज्य है।

तेसिं गुरुणं गुणसागराणं, सोच्वाण मेहावि सुभासियाइं।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो॥ (14)

जो मेधावी मुनि उन गुण—सागर गुरुओं के सुभाषित सुनकर उनका आचरण करता है, पाँच महाव्रतों में रत, मन, वाणी और शरीर से गुप्त तथा क्रोध, मान, माया और लोभ को दूर करता है वह पूज्य है।

न य बुग्गहियं कहं कहेज्जा, न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते।
संजमधुवजोगजुत्ते, उवसंते अविहेडए जे स भिक्खु। (10)

(दशवैकालिक पृष्ठ 480)

जो कलहकारी कथा नहीं करता, जो कोप नहीं करता, जिसकी इन्द्रियाँ अनुद्धृत हैं, जो प्रशांत है, जो संयम में ध्रुवयोगी है, जो उपशान्त है, जो दूसरों को तिरस्कृत नहीं करता—वह भिक्षु है।

कलहकारी कथा : (गुणहियं कह)

विग्रह का अर्थ कलह, युद्ध या विवाद है। जिस कथा, चर्चा या वार्ता से विग्रह उत्पन्न हो, उसे वैग्रहिकी—कथा कहा जाता है। अगस्त्य चूर्णि के अनुसार अमुक राजा, देश या और कोई ऐसा है—इस प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए। प्रायः ऐसा होता है कि एक व्यक्ति किसी के बारे में कुछ कहता है और दूसरा तत्काल उसका विरोध करने लग जाता है बात ही बात में विवाद बढ़ जाता है, कलह हो जाता है।

जिनदास चूर्णि और टीका में इसका अर्थ कलह—प्रतिबद्ध—कथा किया है। सारांश यह है कि युद्ध संबंधी और कलह या विवाद उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करनी चाहिए। सुत्तनिपात (तुवटक—सुत्त—5—2—16) में भिक्षु को शिक्षा देते हुए प्रायः ऐसे ही शब्द कहे गये हैं—

न च कथितासिया भिक्खु, न च वाचं पयतं भासेय् ।

पागभियं न सिक्खेय्य, कथं विगाहिकं न कथयेय्य ॥

भिक्षु धर्मरत्न ने चतुर्थ चरण का अर्थ किया है—कलह की बात न करें। गुजराती अनुवाद में (प्र.201) अ. धर्मानंद कोसम्बी ने अर्थ किया—“भिक्षु को वाद—विवाद में नहीं पड़ना चाहिए।”

जो सहइ हु गामकंटए, अककोसपहारतज्जणाओ य ।
भय मेरवसद्वसंपहासे, समसुहदुक्खंसहे य जे स भिक्खु । (11)

जो काँटे के समान चुभने वाले इन्द्रिय—विषयों, आक्रोश—वचनों, प्रहारों, तर्जनाओं और बेताल आदि के अत्यंत भयानक शब्द युक्त अद्व्यासों को सहन करता है तथा सुख और दुःख को समझावपूर्वक सहन करता है—वह भिक्षु है।

काँटे के समान चुभने वाले इन्द्रिय विषयों (गामकंटए)–

विषय, शब्द, अस्त्र, इन्द्रिय, भूत और गुण के आगे समूह के अर्थ में ग्राम शब्द का प्रयोग होता है। जो इन्द्रियों को काँटों के भाँति चुभे उन्हें ग्राम—कंटक कहा जाता है। जैसे शरीर में लगे हुए काँटे उसे पीड़ित करते हैं, उसी तरह अनिष्ट शब्द आदि श्रोत आदि इन्द्रियों में प्रविष्ट होने पर उन्हें दुःखदायी होते हैं अतः कर्कश शब्द आदि ग्राम—कंटक (इन्द्रिय—कंटक) कहलाते हैं। जो व्यक्ति ग्राम में काँटे के समान चुभने वाले हों, उन्हें ग्राम—कंटक कहा जा सकता है। संभव है ग्राम—कंटक की भाँति चुभन उत्पन्न करने वाली स्थितियों को ‘ग्राम—कंटक’ कहा हो। यह शब्द उत्तराध्ययन (2.25) में भी प्रयुक्त हुआ है—

सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा ।

तुसिणीउ उवेहेज्जा ण ताओ मणसीकरे ॥

हत्थसंजए पायसंजए, वायसंजए संजइंदिए ।

उज्ज्ञप्परए सुसमाहिथप्पा, सुत्तत्थं च वियाणई जे से भिक्खु ॥

जो हाथों से संयत है, पैरों से संयत है, वाणी से संयत है, इन्द्रियों से संयत है, अध्यात्म में रत है, भलीभाँति समाधिस्थ है और जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है—वह भिक्षु है।

न परं वएज्जासि अयं कुसीले, जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न तं वएज्जा ।

जाणिय पत्तेयं पुण्णपावं, अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खु । (18)

प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य—पाप पृथक—पृथक् होते हैं—ऐसा जानकर जो दूसरे को “यह कुशील (दुराचारी) है” ऐसा नहीं कहता, जिससे दूसरा कुपित हो ऐसी बात नहीं कहता, जो अपनी विशेषता पर उत्कर्ष नहीं लाता—वह भिक्षु है।

महान् सत्यव्रत का महान् फल तथा असत्य का कुफल

मौन रहे या सत्य कर्हे

मौनमेव हितं पुंसां शश्वत्सर्वार्थसिद्धये ।
वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्त्वोपकारि यत् ॥ (6)

(ज्ञानार्णव, 9 सर्ग)

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों का सिद्ध करने वाला निरंतर मौन ही अवलंबन करना हितकारी है। और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिए जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करने वाला हो।

यो जिनैर्जगतां मार्गः प्राणीतोऽत्यन्तशाश्वतः ।
असत्यबलतः सोऽपि निर्दयैः कथ्यतेऽन्यथा ॥ (7)

जिनेन्द्र सर्वज्ञ देवाधिदेव ने निजमत के जीवों को जो अंतराहित शाश्वत (सनातन, ध्रुव) मार्ग कहा है, उस मार्ग को भी निर्दय पुरुषों ने असत्य के बल से अन्यथा वर्णन किया है। भावार्थ—विषयी तथा कषायी पुरुष अपने विषय कषाय पुष्ट करने के लिए उत्तम मार्ग का भी उत्थापन करके कुमार्ग को चलाते हैं। यह मिथ्यात्व का महात्म्य है। संसार में मिथ्यात्व बड़ा बलवान् है।

विचर्च्यासत्यसंदोहं खलैर्लोकः खलीकृतः ।
कुशास्त्रेः स्वमुखोद्दीर्णरूप्याद्य गहनं तमः ॥ (8)

दुष्ट निःसार पुरुषों ने असत्य के समूह का विशेष प्रकार से आंदोलन करके अपने कपोल कल्पित मिथ्या शास्त्रों द्वारा गहन अज्ञानान्धकार को उत्पन्न करके इस जगत् को दुष्ट वा निःसार बना दिया है। सो ठीक है जो स्वार्थी होते हैं वे ऐसी ही दुष्टता करते हैं, किन्तु पर के हिताहित में कुछ भी विचार न करके जिस किसी प्रकार

से अपना स्वार्थ साधन करते हैं।

असद्वदनवल्मीके विशाला विषसर्पिणी ।

उद्वेजयति वागेव जगदन्तर्विषोल्वणा । (10)

दुष्ट पुरुषों की मुखरुपी वाबी में अंतरंग में विष से उत्कृष्ट ऐसी विस्तीर्ण विष वाली जो असत्य वाणी रूपी सर्पिणी रहती है, वहीं जगत् भर को दुःख देती है।

न सास्ति का चिद्वयवहारवर्तिनी न यत्र वाग्विस्फरति प्रवर्तिका ।

ब्रूवन्नसत्यामिह तां हताशयः करोति विश्वव्यवहारविप्लवम् ॥ (11)

इस जगत् में व्यवहार में प्रवर्तने वाली वाणी ऐसी नहीं है जिसमें समस्त व्यवहारों को सिद्ध करने वाली स्याद्वाद रूप सत्यार्थ वाणी स्फुरायमान न हो, किन्तु ऐसी स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी को भी मिथ्यादृष्टि नष्टचित्त पुरुष असत्य कहते हुए समस्त व्यवहार का लोप करते हैं। भावार्थ—मिथ्यादृष्टि (सर्वथा एकान्त) स्याद्वाद का निषेध करते हैं अतएव वह नष्ट आशय है। क्योंकि सर्वथा एकान्त असत्य है। उस असत्य वचन से न तो लोक व्यवहार की सिद्धि होती है और न धर्म व्यवहार की ही सिद्धि होती है। ऐसे असत्य वचनों को कहते हुए मिथ्यादृष्टि समस्त व्यवहारों को लोप करते हैं।

पूछने पर भी कथन—श्रवण के अयोग्य वचन

पृष्ठैरपि न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथञ्चन ।

वचः शङ्काकुलं पापं दोषादयं चाभिसूयकम् ॥ (12)

जो वचन संदेह रूप हो तथा पापरूप हो और दोषों से संयुक्त हो एवं ईर्ष्या को उत्पन्न करने वाला हो वह अन्य के पूछने पर भी नहीं कहना चाहिए तथा किसी प्रकार सुनना भी नहीं चाहिए। भावार्थ—निषिद्ध वचन का प्रसंग भी नहीं करना चाहिए।

मर्मच्छेदि मनःशल्यं च्युतस्थैर्यं विरोधकम् ।

निर्दयं च वचस्त्याज्यं प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ (13)

मर्म का छेदने वाला, मन में शल्य उपजाने वाला, स्थिरता रहित

(चंचल रूप), विरोध उपजाने वाला तथा दया रहित वचन कण्ठगत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिए।

वाणी नहीं सर्पिणी

या मुहुर्मोहयत्येव विश्रान्ता कर्णयोर्जनम् ।

विषमं विषमुत्सृज्य साऽवश्यं पन्नगी नगीः ॥ (16)

जो वाणी लोक के कानों में बार—बार पड़ी हुई तथा विषम विष को उगलती हुई जीवों को मोहरूप करती है और समीचीन मार्ग को भुलाती है वह वाणी नहीं है किन्तु सर्पिणी है। भावार्थ—जिन वचनों को सुनते ही संसारी प्राणी उत्तम मार्ग को छोड़कर कुमार्ग में पड़ जाये वह वचन सर्प के समान है।

असत्य वचन का कुफल

प्राप्तुवन्त्यतिघोरेषु रौरवादिषु संभवम् ।

निर्यक्षवथ निगोदेषु मृषावाक्येन देहिनः ॥ (19)

इस असत्य वचन से प्राणी अति तीव्र रौरवादि नरकों के बिलों में तथा तिर्यग्योनि एवं निगोद में उत्पन्न हुए दुःखों को प्राप्त होते हैं।

कठोर वचन अतिदाहक

अपि दावानलप्लुष्टं शाङ्खवलं जायते वनम् ।

न लोकः सुचिरेणापि जिह्वानलकदर्थितः ॥ (21)

दावानल अग्नि से दग्ध हुआ वन तो किसी काल में हरित (हरा) हो भी जाता है परन्तु जिह्वारूपी अग्नि से (कठोर मर्मच्छेदी वचनों से) पीड़ित हुआ लोक बहुत काल बीत जाने पर भी हरित (प्रसन्नमुख) नहीं होता। भावार्थ—दुर्वचन का दाह मिटना कठिन है।

नृजन्मन्यपि यः सत्यप्रतिज्ञाप्रच्युतोऽधमः ।

स केन कर्मणा पश्चाज्जन्मपङ्कात्तरिष्यति ॥ (25)

जो अधम पापी नीच पुरुष मनुष्य जन्म पाकर भी सत्य प्रतिज्ञा से रहित है वह पापी फिर संसार रूप कर्दम से किस कार्य से पार

होगा? भावार्थ—तरने का अवसर तो मनुष्य जन्म ही है। इसमें ही धर्माचरण तथा प्रतिज्ञादि बन सकते हैं। इसके चले जाने पर फिर तरने का अवसर प्राप्त होना कठिन है, अतएव मनुष्य जन्म को सत्यशीलादि से सफल करना चाहिए।

सबसे तीटण—शस्त्र दुष्ट के असत्य वचन

अदयैः संप्रयुक्तानि वाक्छस्त्राणीह भूतले ।

सद्यो मर्माणि कृन्तन्ति शितास्त्राणीव देहिनाम् ॥ (26)

निर्दय पुरुषों के द्वारा चलाये हुए वचनरूप शस्त्र इस पृथ्वी तल पर जीवों के मर्म को तीक्ष्ण शस्त्रों के समान तत्काल छेदन करते हैं, क्योंकि असत्य वचन के समान दूसरा कोई भी शस्त्र नहीं है।

असत्यवादी चण्डाल से भी नीच

यस्तपस्वी जटी मुण्डो नग्नो वा चीवरावृतः ।

सोऽप्यसत्यं यदि ब्रूते निन्द्यः स्यादन्त्यजादपि ॥ (31)

जो तपस्वी हो, जटाधारी हो, मस्तक मुण्डाये हो अथवा नग्न (दिग्म्बर) हो, वा वस्त्रधारी हो और असत्य बोलता हो तो वह चण्डाल से भी बुरा और अतिशय निंदनीय है।

सभी पापों से भी महापाप असत्य

एकतः सकलं पापं असत्योत्थं ततोऽन्यतः ।

साम्यमेव वदन्त्यार्यास्तुलायां धृतयोस्तयोः ॥ (33)

आर्य पुरुषों ने तराजू में एक तरफ तो समस्त पापों को रखा और एक तरफ असत्य से उत्पन्न हुए पाप को रखकर तौला तो दोनों समान हुए। भावार्थ—असत्य अकेला ही समस्त पापों के बराबर है।

असत्य से विमिन्न रोग

मूकता मतिवैकल्यं मूर्खता बोधविच्युतिः ।

बाधिर्यं मुखरोगित्वम् सत्यादेव देहिनाम् ॥ (34)

गैंगापन, बुद्धि की विकलता, मूर्खता, अज्ञानता, बधिरता तथा मुख में शोग होना इत्यादि जो सब ही जीवों के होते हैं, वे सब असत्य वचन बोलने के पाप से ही होते हैं।

असत्यवादी नीच पशुओं से भी नीच

शवपाकोलूकमार्जारवृकगोमायुमण्डलाः ।

स्वीक्रियन्ते ककचिल्लोकैर्न सत्यच्युतचेतसः ॥ (35)

चण्डाल, उल्लू (घूघू), बिलाव, भेड़िया और कुत्ता आदि यद्यपि निन्दित हैं तथापि इन्हें अनेक लोग अंगीकार करते हैं, परन्तु असत्यवादियों को कोई अंगीकार नहीं करता, अतएव असत्यवादी इन सबसे भी अधिक निंदनीय है।

प्रसन्नोन्नतवृत्तानां गुणानां चन्द्ररोचिषां ।

सङ्घातं धातयत्येव सकृदप्युदितं मृषा ॥ (36)

एक बार बोला हुआ असत्य वचन चन्द्रमा की किरणों के समान प्रसन्न (निर्मल) तथा उन्नत गुणों के समूह को नष्ट करता है। भावार्थ—असत्य वचन ऐसा मलिन है कि चन्द्रवत् निर्मल गुणों को भी मलिन कर देता है।

असत्यवादी के संसर्ग भी पाप

न हि स्वन्देऽपि संसर्गमसत्यमलिनैः सह ।

कश्चित्करोति पुण्यात्मा दुरितोल्मुकशङ्कया ॥ (37)

जो असत्य से मलिन पुरुष हैं, उनके साथ पापरूप कालिमा के भय से कोई पुण्यात्मा पुरुष स्वज्ञ में भी साक्षात् (मुलाकात) नहीं करते। भावार्थ—झूठे की संगत से सच्चे को भी कालिमा लगती है।

जगद्वन्द्ये सतां सेव्ये भव्यव्यसन शुद्धिदे ।

शुभे कर्मणि योग्यः स्यान्नासत्यमलिनोजनः ॥ (38)

जगत् के वंदनीय, सत्पुरुषों के पूजनीय, संसार के कष्ट-आपदाओं से शुद्धि के देने वाले, शुभ कार्यों में असत्य से मैले

पुरुष योग्य नहीं गिने जाते। भावार्थ—शुभ कार्यों में झूठे का अधिकार नहीं है।

महापुरुष द्वारा निंदनीय, नीच द्वारा प्रशंसनीय

महामतिभिर्निष्ठयूतं देवदेवैर्निषेधितम् ।

असत्यं पोषितं पापैर्दुःशीलाधमनास्तिकैः ॥ (39)

बड़े—बड़े बुद्धिमानों ने तो असत्य वचन को त्याग दिया है और देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग ने इसका निषेध किया है, किन्तु खोटे स्वभाव वाले नीच नास्तिक पापियों ने इसका पोषण किया है। ठीक ही है, पापियों को पाप ही इष्ट होता है। महापुरुष जिसकी निंदा करते हैं, नीच पुरुष उसकी प्रशंसा ही किया करते हैं।

सुतस्वजनदारादिवित्तबन्धुकृतेऽथवा ।

आत्मार्थं न वचोऽसत्यं वाच्यं प्राणात्ययेऽथवा ॥ (40)

पुत्र, स्वजन, स्त्री, धन और मित्रों के लिए अथवा अपने लिए प्राण जाने पर भी असत्य वचन नहीं बोलना चाहिए, यही उपदेश है।

झूठी साक्षी भी पाप

परोपरोधादतिनिन्दितं वचो ब्रुवन्नरो गच्छति नारकीं पुरी ।

अनिन्द्यवृत्तोऽपि गुणी नरेश्वरो वसुर्यथाऽगादिति लोकविश्रुतिः ॥ (41)

मनुष्य अन्य के अनुरोध से (प्रार्थना से) अन्य के लिए अति निंदनीय असत्य कहकर नरकपुरी को चला जाता है। जैसे वसु राजा अनिन्द्य आचरण वाला और गुणी था, परन्तु अपने सहाध्यायी गुरुपुत्र (पर्वत) के लिए झूठी साक्षी देने से नरक को गया। यह जगत्प्रसिद्ध वार्ता है (इसकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है)। इस कारण पर के लिए भी झूठ बोलना नरक को ले जाता है।

संयमी द्वारा सत्य का पालन

यः संयमधुरां धत्ते धैर्यमालम्ब्य संयमी ।

स पालयति यत्नेन वाग्वने सत्यपादपम् ॥ (1)

(8) ॥ ज्ञानीर्थीस्त्रियाः ॥ ज्ञानार्थव नवमः सर्गः

जो संयमी धैर्यावलम्बन करके संयम की धुरा को धारण करता है वह वचनरूपी वन में सत्यरूपी वृक्ष को यत्न के साथ पालन करता है।

सत्य से अहिंसा की रक्षा

अहिंसाव्रतरक्षार्थं यमजातं जिनैर्मतम् ।

नारोहति परां कोटिं तदेवासत्यदूषितम् ॥ (2)

जिनेन्द्र भगवान् ने यम नियमादि व्रतों का समूह कहा है वह एकमात्र अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए ही कहा है। क्योंकि अहिंसाव्रत यदि असत्य वचन से दूषित हो तो वह उत्कृष्ट पद को प्राप्त नहीं होता अर्थात् असत्य वचन के होने से अहिंसाव्रत पूर्ण नहीं होता।

असत्यमपि तत्सत्यं यत्सत्त्वाशंसकं वचः ।

सावद्यं यच्च पुष्णाति तत्सत्यमपिनिन्दितम् ॥ (3)

जो वचन जीवों का इष्ट हित करने वाला हो, वह असत्य हो तो भी सत्य है और जो वचन पापसहित हिंसारूप कार्य को पुष्ट करता हो, वह सत्य भी हो तो असत्य और निंदनीय है।

अनेकजन्मजक्लेशं शुद्धयर्थं यस्तपस्यति ।

सर्वं सत्त्वहितं शश्वत्सं ब्रूते सूनृतं वचः ॥ (4)

जो मुनि अनेक जन्म में उत्पन्न क्लेशों (दुःखों) की शांति के लिए तपश्चरण करता है वह निरंतर सत्य ही बोलता है। क्योंकि असत्य वचन बोलने से मुनियन नहीं संभवता है।

सूनृतं करुणाक्रान्तमविरुद्धमनाकुलम् ।

अग्राम्यं गौरवाशिलष्टं वचः शास्त्रे प्रशस्यते ॥ (5)

जो वचन सत्य हो, करुणा से व्याप्त हो, विरुद्ध न हो, आकुलता रहित हो, गँवारीपन न हो और गौरव सहित हो अर्थात् जिसमें हल्कापन नहीं हो वही वचन शास्त्र में प्रशंसित किया गया है।

जयन्ति ते जगद्वन्द्या यैः सत्यकरुणामये ।

अवञ्चकेऽपि लोकोऽयं पथि शश्वत्प्रतिष्ठितः ॥ (9)

जिन पुरुषों ने इस लोक को सत्यरूप, करुणामय तथा वंचना रहित मार्ग में निरंतर चलाया वे ही जयशाली हैं और वे ही जगत् में वंदनीय व पूज्यनीय हैं।

धन्यास्ते हृदये येषामुदीर्णः करुणाम्बुधिः ।

वाग्वीचि सञ्चयोल्लासैर्निवापयति देहिनः ॥ (4)

इस जगत् में वे पुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में करुणा रूप समुद्र उदय होकर वचन रूप लहरों के समूहों के उल्लासों से जीवों को शांति प्रदान करता है। भावार्थ—करुणा रूप वचनों को सुनकर दुःखी जीव भी सुखी हो जाते हैं।

सुवाणी अतिशीतल

न तथा चन्दनं चन्द्रो मणयो मालतीसजः ।

कुर्वन्ति निवृतिं पुंसां यथा वाणी श्रुतिप्रिया ॥ (20)

जीवों को जिस प्रकार कर्णप्रिय वाणी सुखी करती है, उस प्रकार चंदन, चंद्रमा, चंद्रमणि, मोती तथा मालती के पुष्पों की माला आदि शीतल पदार्थ सुखी नहीं कर सकते हैं, यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है।

सर्वलोकप्रिये तथ्यं प्रसन्ने ललिताक्षरे ।

वाक्ये सत्यपि किं ब्रूते निकृष्टः परुषं वचः ॥ (22)

जो वचन सर्वलोक को प्रिय, सत्य तथा प्रसन्न करने वाले व ललिताक्षर वाले हैं, उनके होते हुए भी नीच पुरुष कठोर वचन किसलिए कहते हैं, सो मालूम नहीं होता है।

सत्यवादी से धरा पवित्र होती है

सतां विज्ञातत्त्वानां सत्यशीलावलम्बिनाम् ।

चरणस्पर्शं मात्रेण विशुद्धयति धरातलम् ॥ (23)

जो महापुरुष सत्यवचन बोलने वाले हैं; तत्वों के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं और सत्य शीलादि के अवलम्बी हैं, उनके चरणों के

रप्त मात्र से यह धरातल पवित्र होता है। ऐसे ही लोग उत्तम पुरुष हैं और जो असत्य बोलते हैं, वे ही नीच हैं।

यमव्रतगुणोपेतं सत्यश्रुत समन्वितम् ।
येर्जन्म सफलं नीतं ते धन्या धीमतांमताः ॥ (24)

जिन पुरुषों ने अपना जन्म यमव्रतादि गुणोंसे युक्त सत्यशास्त्रों के अध्ययनपूर्वक सफल किया है, वे ही धन्य और विद्वानों के द्वारा पूजनीय हैं।

सत्य में सर्वगुण समाहित

व्रतश्रुतयमस्थानं विद्याविनयभूषणम् ।
चरण ज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञं व्रतं मतम् ॥ (27)

यह सत्यनामा व्रत, व्रत श्रुत और यमों का तो स्थान है तथा विद्या और विनय का भूषण है। क्योंकि विद्या और विनय सत्यवचन से ही शोभा को प्राप्त होते हैं, और सम्यक्चारित्र तथा सम्यग्ज्ञान का बीज उत्पन्न करने का कारण सत्य वचन ही है।

सत्य प्रतिज्ञा अपराजित

न हि सत्यप्रतिज्ञस्य पुण्यकर्मावलम्बिनः ।
प्रत्यूहकरणे शक्ता अपि दैत्योरगादयः ॥ (28)

सत्य प्रतिज्ञा वाले पुण्यकर्मावलम्बी पुरुष का दुष्ट, दैत्य तथा सर्पादिक कुछ भी बुरा करने को समर्थ नहीं हो सकते हैं।

चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्ये ।

स्वर्गिभिर्धृयते मूर्च्छा कीर्तिः सत्योत्थिता नृणां ॥ (29)

तीन लोक में चन्द्रमा के समान आनन्द को बढ़ाने वाली, सत्य वचन से उत्पन्न हुई मनुष्य की कीर्ति को देवता भी मस्तक पर धारण करते हैं।

सत्य सर्वश्रोष्ट भूषण

खण्डतानां विरूपाणां दुर्विधानां च रोगिणाम् ।
कुलजात्यादि हीनानां सत्यमेकं विभूषणं ॥ (30)

जिनके हाथ, नाक आदि अवयव कटे हों तथा जो विरूप हों, और जो दरिद्री तथा रोगी हों, वा कुलजाति आदि से हीन हो उनका भूषण सत्यवचन बोलना ही है। अर्थात् यही उनकी शोभा करने वाली है। क्योंकि जो उक्त समस्त बातों से हीन और सत्य वचन बोलता हो, उसकी सब कोई प्रशंसा करते हैं।

स्वार्थसिद्धि के लिए भी असत्य वर्जनीय

कुटुम्बं जीवितं वित्तं यद्यसत्येन वर्द्धते ।
तथापि युज्यते वक्तुं नासत्यं शीलशालिभिः ॥ (32)

यदि असत्य वचन से अपने कुटुम्ब, जीवन और धन की वृद्धि हो तो भी शल से शोभित पुरुषों को असत्य वचन कहना उचित नहीं है।

सत्यवादी का महान् प्रभाव

चञ्चन्मस्तक मौलिरत्न विकट ज्योतिश्छटाङ्गम्बरै—
देवाः पल्लवयन्ति यच्चरणयोः पीठे लुठन्तोऽप्यमी ।
कुर्वन्ति ग्रहलोकपाल खचरा यत् प्रातिहार्यं नृणां,
शाम्यन्ति ज्वलनादयश्च नियतं तत्सत्यवाचः फलम् ॥ (42)

(ज्ञानार्णन सर्ग 9)

जगत्प्रसिद्ध देव भी अपने दैदीप्यमान (चमकते हुए) मस्तक पर के मुकुटों के रैलों की उत्कट ज्योति की छटा के आडम्बरों से जिन मनुष्यों के चरण युगलों के नीचे के सिंहासन के निकट लोटते हुए चरणों की शोभा को प्रफुल्लित करते हैं (बढ़ाते हैं) तथा सूर्यादिक ग्रह, लोकपाल और विद्याधर जिनके द्वार पर द्वारपाल होकर रहते हैं और अग्नि, जलादिक नियम से उपशमरूप हो जाते हैं, उनके सत्यवचन बोलने का ही यह फल है। भावार्थ—जिन मनुष्यों की सेवा प्रसिद्ध देवादिक भी करते हैं, ऐसे महान् पुरुष तीर्थङ्कर तथा चक्रवर्त्यादिक होते हैं। उनके अग्नि में प्रवेश करने पर और जल में गिरने पर भी वे (अग्न्यादि) उनकी सहायता करते हैं। यह सब सत्यवचन का ही फल है।

सत्य-असत्य का स्वरूप तथा उसके सुफल-कुफल

अहिंसाव्रतमाख्याय सत्यसंज्ञं व्रतं परम्।

सर्वलोकहितार्थं च वक्ष्ये तदव्रतसिद्ध्ये ॥२॥ (प्रश्नोत्तर श्रा.)

ऊपर के परिच्छेद में अहिंसाव्रत का निरूपण किया। अब आगे समस्त जीवों का हित करने के लिए और श्रेष्ठ व्रतों की सिद्धि के लिए उत्तम सत्य व्रत को कहता हूँ।

अहिंसाव्रतरक्षार्थं द्वितीयं सद्व्रतं जिनैः।

कीर्तिं गृहिणां सारं भाषासमितिसंयुतम् ॥ (३)

सज्जन पुरुषों ने अहिंसा व्रत की रक्षा करने के लिए ही सत्यव्रत का निरूपण किया है। यह व्रत गृहस्थों के लिए सारभूत व्रत है और भाषा समिति से परिपूर्ण है।

ये वदन्ति न च स्थूलमलीकं वादयन्ति न।

परैन् चानुमन्यन्ते तेषां सत्यव्रतं भवेत् ॥ (४)

जो न तो स्थूल झूठ स्वयं बोलते हैं न दूसरों से बुलवाते हैं और न किसी के द्वारा बोले हुए झूठ की अनुमोदना करते हैं उनके यह सत्यव्रत होता है।

हितं ब्रूयान्मितं ब्रूयाद् ब्रूयात्सन्मधुरं वचः।

बुधो निन्दादिसंत्यक्तं सर्वं सत्यसुखप्रदम् ॥ (५)

विद्वान् गृहस्थों को सबका हित करने वाला, थोड़ा और मधुर वचन कहना चाहिए, किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए और सब जीवों को सुख देने वाले वचन कहने चाहिए।

हिंतं स्वस्थं भवेद् सत्तद् वचनंधर्मकारैणम्।

यशः प्रदं च पापादित्यक्तं त्वं वद सर्वदा ॥ (६)

हे भव्य! तू सदा ऐसे वचन कह जिनसे अपने आत्मा का कल्याण हो, जो धर्म के कारण हों, यश देने वाले हों, और पापों से सर्वथा रहित हों।

परस्यापि हितं सारं रागद्वेषादिवर्जितम्।

वक्तप्यं च वचो नित्यं धर्मसंवेगदं बुधैः ॥ (७)

विद्वान् लोगों को अन्य जीवों का हित करने वाले, राग-द्वेष से रहित, सारभूत और धर्म वा संवेग को बढ़ाने वाले वचन ही सदा कहने चाहिए।

आगमोक्तमनिन्द्यं च विकथादि पराङ्मुखम्।

धर्मोपदेशनायुक्तं वदन्ति सद्वचो बुधाः ॥ (८)

विद्वान् लोग सदा आगम के अनुसर, अनिन्द्य, विकथादि से रहित, धर्मोपदेश से भरे हुए ही वचन कहते हैं।

हितमुद्दिश्य यत्किंचिदुक्तं भो कठिनं वचः।

असत्यं वा परस्यापि तत्सत्यं गदितं जिनैः ॥ (९)

जो दूसरों के हित के लिए कुछ कठिन वाक्य भी कहे जाते हैं अथवा दूसरों की रक्षा के लिए, हितार्थ असत्य भी कहा जाता है वह सब भगवान् जिनेन्द्र देव ने सत्य ही बतलाया है।

परपीडाकरं यत्तद्वचः सत्कर्णदुःखदम्।

वधबन्धनादिकं सत्यमसत्यं गदितं जिनैः ॥ (१०)

जो दूसरों को दुःख उत्पन्न करने वाले हों, कानों को दुःख देने वाले हों, और जीवों का वध और बन्धन करने वाले हों ऐसे सत्य वचनों को भी विद्वान् लोग असत्य ही कहते हैं।

सारसत्यामृतादङ्गी यशः पूजादिकं भजेत्।

सद्वर्मादिमसत्येन वधबन्धादिकं च भो ॥ (११)

सत्यरूपी सारभूत अमृत वचनों से जीव को यश प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और धर्म की प्राप्ति होती है और असत्य वचनों से वध बन्धन आदि अनेक प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं।

सतिसत्यामृते पूज्ये हिते सर्वसुखाकरे।

अलीकं कटुकं निन्द्यं वचनं वदेत् सुधीः ॥ (१२)

इस संसार में जब सब जीवों को सुख देने वाले, सबका हित

करने वाले, और पूज्य ऐसे सत्यरूपी अमृत वचन उपस्थित हैं फिर भला ऐसा कौन बुद्धिमान है जो निन्दा, कठोर और झूठ वचनों को कहे।

सत्यसीमादियुक्तस्य वाऽसत्परहितस्यै ।

अग्नि सर्पादयो नैव पीडां कुर्वन्ति केचन॥ (13)

जो पुरुष सदा वचनों की सीमा में ही रहता है कभी असत्य नहीं बोलता, उसे अग्नि सर्प आदि कोई भी पीड़ा नहीं दे सकते।

सत्येन वचसा प्राणी पूजनीयो भवेद् ध्रुवम् ।

नरैर्देवरिहामुत्र स्वर्ग—मुक्त्यादिंक श्रयेत् ॥ (14)

सत्य वचनों के ही कारण यह प्राणी इस संसार में देव और मनुष्यों के द्वारा पूज्य होता है तथा परलोक में स्वर्ग मोक्षादि के सुख प्राप्त करता है।

कर्कशं निष्ठुरं निन्दां पापाद्यं मर्मसूचकम् ।

दूतकर्मकरं त्यक्त धर्मं चापरकोपदम् ॥ (15)

कटुकं परनिन्ददियुक्तं गर्वादिकारणम् ।

सरागं शोकसम्पन्नं सर्वजीवभयप्रदम् ॥ (16)

हास्यादिप्रेरकं कामकारणं मुनिदूषितम् ।

असत्यं दुःखदं त्यक्तविचारं शास्त्रदूरगम् ॥ (17)

आत्मगुणप्रशंसादिकरं मूढप्रतारकम् ।

धर्मदेशविरुद्धं च कृत्स्नकलेशादिसागरम् ॥ (18)

विकथादिकरं सर्वनीचलोकोदितं वचः ।

त्यजत्वं सर्वथा मित्र प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ (19)

जो वाक्य कर्कश हो, कठोर हो, निन्दा हो, पापमय उपदेश से परिपूर्ण हो, किसी मर्म को कहने वाले हो, दूतपने के काम को करने वाले हो, धर्म से रहित हो, दूसरों को क्रोध उत्पन्न करने वाले हो, कड़वे हो, दूसरों की निन्दा करने वाले हो, अभिमान प्रगट करने वाले हो, राग उत्पन्न करने वाले हो, शोक करने वाले हो, समस्त जीवों को

भय उत्पन्न करने वाले हो, हँसी करने वाले हो, कामोद्रेक उत्पन्न करने वाले हो, मुनियों में दोष लगाने वाले हो, असत्य हो, दुःख देने वाले हो, विचार रहित हो, शास्त्रों से विरुद्ध हो, अपने गुणों की प्रशंसा करने वाले हो, मूर्ख लोगों को ठगने वाले हो, धर्म विरुद्ध हो, देश विरुद्ध हो, कृष्णलेश्या आदि में डुबाने वाले हो, विकथा आदि को सूचित करने वाले हो, और नीचे लोगों के द्वारा कहने योग्य हो, हे मित्र! ऐसे वचन कष्ठगत प्राण होने पर भी नहीं कहने चाहिए तू ऐसे वचनों का सर्वथा त्याग कर।

असत्यवचनाल्लीको वराको व्याकुलीकृतः ।

रचयित्वा कुशास्त्रं भो खलैर्धर्मपराङ्मुखैः ॥ (20)

असत्य वचन कह—कहकर ही दुष्ट पुरुषों ने अनेक कुशास्त्र रचकर लोगों को व्याकुल और धर्म से पराङ्मुख कर दिया है।

मृषावादेन लोकोऽयं धूर्तैः स्वपरवज्चकैः ।

धर्ममार्गात्सुद्रव्यार्थमुत्पथे पतितो हठात् ॥ (21)

झूठ बोल—बोलकर ही अपने आत्मा को तथा अन्य लोगों को ठगने वाले और धर्म मार्ग से ही द्रव्य कमाने वाले धूर्तों ने हठपूर्वक अनेक कुशास्त्रों को रचा है।

जैनशासनमध्ये च बाह्ये श्रीजिनशासनात् ।

असत्यबलतो नूनं जाताः सर्वे मतान्तराः ॥ (22)

असत्य वचनों के प्रभाव से ही जिनशासन के भीतर और जिनशासन के बाहर अनेक मत—मतान्तर उत्पन्न हो गये हैं।

असद्वदनवल्लोके जिहवाख्या सर्पिणीस्थिता ।

असत्यकुविषास्येन खादत्येव बहून् जनान् ॥ (23)

नीच मुखरूपी बामी में जिहवाख्या सर्पिणी रहती है वह असत्य रूपी हलाहल विष से भरे हुए मुख से अनेक लोगों को खा डालती है।

अमेध्य भक्षणं श्रेष्ठं न च वक्तुं स्वजिह्व्या ।

हिंसाकरं मृषावादं दुःखपापाकरं नृणाम् ॥ (24)

विष्ठा भक्षण कर लेना अच्छा, परन्तु अपनी जिहा से हिंसा करने वाले, पाप और दुःख उत्पन्न करने वाले झूठ वचन कहना कभी अच्छा नहीं।

असत्यसदृशं पापं न भूतं न भविष्यति ।

नास्ति लोकत्रये तस्मात्यज त्वं हि विषादिवत् ॥ (25)

इन तीनों लोकों में असत्य वचनों के समान अन्य कोई पाप न आज तक हुआ है और न हो सकता है इसलिए हे मित्र! विषैले सर्प के समान शीघ्र ही तू इसका त्याग कर।

नृणां मूकवधिराह्मुपरोगादि सञ्चयम् ।

दुःस्वरत्वं च मूर्खत्वं जायतेऽनृतभाषणात् ॥ (26)

इस असत्य वचन के फल से ही लोग गूँगे, बहिरे होते हैं, उनके मुँह में अनेक रोग हो जाते हैं, उनका स्वर बुरा होता है और वे मूर्ख होते हैं।

ज्ञान विद्यां विवेकं च सुस्वरत्वंवचः पदुम् ।

वादित्वं सुकवित्वं च सत्याज्जीवा भजन्त्यहो ॥ (27)

इसी प्रकार सत्य वचन के फल से ज्ञान बढ़ता है, विद्या बढ़ती है, विवेक बढ़ता है, अच्छा भीठा स्वर होता है, वचन की चतुरता आती है, सभा को जीतने वाला वादी होता है और अच्छा कवि होता है।

अतिचारविनिर्मुक्तं सत्याख्यं यो व्रतं चेरत् ।

नाकराज्यादिकं प्राप्य मुक्तिनाथो भवेत्स ना ॥ (28)

जो मनुष्य इस सत्यव्रत की अतिचार रहित पालन करता है वह स्वर्गादिक के तथा राज्यादिक के सुख भोगकर अंत में मुक्ति लक्ष्मी का स्वामी होता है।

आद्योभिष्योपदेशश्च रहोभ्याख्यानसंज्ञकः ।

कूटलेखक्रिया न्यासापहारश्च भवेत्ततः ॥ (31)

साकारमन्त्रभेदश्च व्यतीचाराः भवन्त्यमी ।

पञ्चैवाप्यनृतत्यागव्रतस्य दोषदायकाः ॥ (32)

मिथ्या उपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये सत्य व्रत में दोष लगने वाले पाँच अतिचार गिने जाते हैं।

कार्यमुद्दिश्य योऽसत्य उपदेशो हि दीयते ।

परस्य द्रव्यलाभार्थं सः स्यादादौ व्यतिक्रमः ॥ (33)

जो अपने किसी कार्य की सिद्धि के लिए अथवा द्रव्य कमाने के लिए झूठा उपदेश दिया जाता है वह मिथ्योपदेश नाम का पहिला अतिचार गिना जाता है।

अनुष्ठितं च प्रच्छन्नं स्त्री—मर्तृभ्यां प्रकाशयते ।

प्राप्यलोकजनैर्यत्तद् रहोभ्याख्यानमुच्यते ॥ (34)

जो किसी द्रव्य के लोभ से अथवा अन्य किसी प्रयोजन से स्त्री—पुरुषों के द्वारा अथवा अन्य किसी के द्वारा किये हुए कार्य को प्रगट करता है उसके बहुत रहोभ्याख्यान (एकान्त में किये हुए कार्य को प्रगट करना) नाम का अतिचार कहलाता है।

परस्य वत्रचनार्थं यः कूटलेखादिकं लिखेत् ।

कूटलेख क्रिया नामा भवेत्स्य व्यतिक्रमः ॥ (35)

जो किसी दूसरे को ठगने के लिए झूठे लेख लिखता है उसे कूटलेख क्रिया नाम का तीसरा अतिचार लगता है।

न्यासात्स्वामिनो योऽपि धनंस्वल्पं ददातिभो ।

अतिचारो भवेत्स्य स्तोकमाहृत्य तत्स्वयम् ॥ (36)

किसी के धरोहर रखे हुए धन में से जो थोड़ा देता है, उसमें से कुछ रख लेता है उसके न्यासापहार नाम का चौथा अतिचार होता है।

गृहीत्वा परमर्थं यः प्रपञ्चेनापि चेष्टया ।

प्रकाशयति लोकाग्रे व्यतीचारं लभते सः ॥ 37 ॥

जो किसी छल—कपट से अथवा किसी की चेष्टा देखकर दूसरे के हृदय की बात को जानकर उसे अन्य लोगों के सामने प्रकाशित

करता है वह साकारमंत्र भेद नाम का पाँचवाँ अतिचार कहलाता है।

एतद्वेषपरित्यक्तं सूनृतं यो वदेद्वच ।

स एनः संवरं प्राप्य नाकं यति क्रमात् शिवम् ॥38॥

जो पुरुष इन अतिचारों को छोड़कर सत्य भाषण करता है वह स्वर्गादिक के सुख भोगकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है।

वधिरकुगतिहेतुं मूकरोगादिबीजं, नरकगृहप्रवेशं स्वर्गमोक्षकशत्रुम् ।
इहपरमवद्वुख पापसन्तापबीजं, त्यज सकलमस्त्यं त्वं सदा मुक्ति हेतुं ॥39॥

संसार में असत्य वचन अनेक कुगतियों के कारण हैं, गूँगे—बहरे आदि अनेक कठिन दुःख देने वाले हैं और पाप—संताप के बीज हैं इसलिए है मित्र! तू मोक्ष प्राप्त करने के लिए ऐसे असत्य वचनों का सर्वथा त्याग करें।

नरकगृहकपाटं नाकमोक्षैकमित्रं, जिनगणधरसेव्यं सर्वविद्याकरं भो ।
स्वपरहितमदोषं जीवहिंसादित्यक्तं, क्वमपि वद सुसारं सत्यवाक्यं सुखाय ॥

इसी प्रकार सत्य वचन नरकरूपी घर को बंद करने के लिए किवाड़ हैं, स्वर्ग—मोक्ष के मित्र हैं, श्री जिनेन्द्र देव और गणधर देव भी इनकी सेवा करते हैं, ये समस्त विद्याओं के देने वाले हैं, अपने आत्मा का परम कल्याण करने वाले हैं सर्वथा निर्दोष हैं और जीवों की हिंसा से सर्वथा रहित हैं इसलिए है वटस। आगामी सुख प्राप्त करने के लिए तू भी ऐसे सारभूत सत्य वचनों के भाषण करने का नियम लें।

यः सुधीः स्वर्गमुक्त्यर्थं व्रतं सत्यप्रतिष्ठितम् ।

धर्ते स पूज्यतां याति चेहैव नृसुरासुरैः ॥41॥

जो बुद्धिमान स्वर्ग—मोक्ष प्राप्त करने के लिए सदा प्रतिष्ठित सत्य वचन कहते हैं वे इस लोक में ही राजा और देवविद्याधरों के द्वारा पूज्य गिने जाते हैं।

सत्य का स्वरूप एवं प्रभाव

श्री गणधर सुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य श्री जम्बूस्वामी को संबोधित करते हुए कहते हैं। जम्बू यह सत्य नाम का दूसरा

संवरद्वार है जो सत्पुरुषों या गुणीजनों मुनिजनों के लिए हितकर है निर्दोष है पवित्र है मोक्ष तथा सुख का कारण है शुभ बोलने की इच्छा से उत्पन्न होता है। सुंदर सुस्पष्ट वचनरूप है सुंदर व्रतरूप है इससे पदार्थ का भलीभाँति कथन किया जाता है। सर्वज्ञ देवों द्वारा यह भलीभाँति देखा परखा हुआ है यह सब प्रमाणों से सिद्ध है, इसका यश भी निराबाध है तथा उत्तम देवों चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ मनुष्यों, उत्कृष्ट शक्ति के धारक वासुदेव—बलदेव आदि पुरुषों तथा शास्त्र विहित आचरण करने वाले महापुरुषों के द्वारा यह बहुमान्य है यह उत्कृष्ट साधुओं का धर्माचरण है तथा तप और नियम से अंगीकार किया जाता है अर्थात् सत्यवादि के ही सच्चे माने में तप और नियम होते हैं यह सद्गति का पथ निर्देशक है तथा लोक में उत्तम ब्रह्म माना गया है। यह सत्य विद्याधरों की आकाशगामिनी विद्याओं का साधक है तथा स्वर्ग मार्ग और मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है यह मिथ्या भाव से रहित है। यह सरल भावों से युक्त कुटिलता से रहित है यह विद्यमान सद्भूत अर्थ को ही विषय करता है विशुद्ध अर्थ वाला है वस्तु तत्त्व का प्रकाशक है जीव लोक में समस्त पदार्थों का अविसंवादि—पूर्वापर संगत रूप से प्रतिपादक है पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को कहने वाला होने से मधुर है। मनुष्यों की भिन्न-भिन्न अनेक कष्टकर अवस्थाओं में वह साक्षात् देवता के समान आशर्यजनक कार्य करने वाली है। सत्य के कारण महासागर के बीच दिभ्रान्त बने हुए नाविक सैनिकों की नौकाएँ स्थिर रहती हैं ढूबती नहीं हैं। सत्य के प्रभाव से चक्रवरदार जल—प्रवाह में भी मनुष्य बहते नहीं, न मरते हैं किन्तु वे थाह पा लेते हैं। अर्थात् किनारे लग जाते हैं सत्य के प्रभाव से चारों ओर आग की लपटों से घिर जाने पर भी जलते नहीं। सरल स्वभावी मनुष्य सत्य के प्रताप से खौलते हुए गर्मागर्म तेल, रांगे, लौहे और सीसे को भी छू लेते हैं हथेली पर रख लेते हैं लेकिन जलते नहीं। सत्य को धारण किये हुए मनुष्य पर्वत शिखरों से गिरा दिये जाने पर भी मरते नहीं हैं और नंगी तलवारों के घेरे में घिरे हुए सत्यवादी मनुष्य समरांगण में से घायल हुए बिना निकल आते हैं बाल—बाल बच जाते हैं। सत्यवादी मनुष्य लाठियों की मार, रस्सी आदि के बंधन बलात्कार

और घोर वैर विरोध से छूट जाते हैं और शत्रुओं के बीच से निर्दोष निकल जाते हैं। देवता भी सत्य वचन में तत्पर मनुष्यों के सान्निध्य में आते हैं अथवा देवता भी सत्य प्रतिज्ञा पुरुषों के दुर्घट कार्यों में सहायक बनते हैं। भगवान् तीर्थकरों द्वारा भलीभाँति वर्णित वह सत्य भगवान् दस प्रकार का है। पृ. (612) श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र

सत्य का विश्वरूप

चतुर्देशपूर्वधारको ने इसे पूर्वगत अंशों—प्राभृतों से विशेष रूप से जाना है, तथा यह महर्षियों के सिद्धांतों द्वारा प्रदत्त है। या प्रज्ञप्त है—वर्णित है अथवा महर्षियों ने इसे सिद्धांत रूप में जाना है और इसका आचरण किया है देवेन्द्रों और नरेन्द्रों ने इसका प्रयोजन समझ लिया है, अथवा इसके द्वारा ही देवेन्द्रों और नरेन्द्रों की जीवादि पदार्थों का सत्य—तत्त्व बताया गया है अथवा देवेन्द्रों ने मनुष्यों को इस सत्य का साध्य अर्थ बतलाया है। वैमानिक देवों को भी तीर्थकर आदि ने उपादेय के रूप में इसे प्रतिपादन किया है अथवा वैमानिकों ने इसी सत्य की साधना की है। इसका सेवन किया है यह महाप्रयोजन वाला अथवा गंभीर अर्थ वाला है। मंत्रों औषधियों और विद्याओं के सिद्ध करने में इसका प्रयोजन—इसका सार्थकत्व रहता है। चारणगणों और श्रमणों की विद्या इसीसे सिद्ध होती है यह—यह गणों का वंदनीय स्तुत्य है व्यंतर—ज्योतिष्क आदि देवगणों का यह अर्जनीय है तथा भवनपति आदि असुरगणों का यह पूजनीय है नाना प्रकार के व्रत या वेश धारण करने वाले साधुओं ने इसे अंगीकार किया है ऐसा वह सत्य लोक में सारभूत है यानी संसार के समस्त पदार्थों में प्रधान है क्षोभरहित होने से यह महासमुद्र से भी गंभीरता में बढ़ायड़ा है। प्रण पर अटल होने से यह मेरु पर्वत से भी बढ़कर स्थिर संताप को शांत में बेजोड़ होने से यह चंद्रमंडल से भी अधिक सौम्य है वस्तु के कण—कण को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने वाला होने से यह सूर्यमंडल से भी बढ़कर प्रकाशमान है अथवा कोई भी तेजस्वी इसका तिरस्कार नहीं कर सकता इसलिए शूर समुद्र से भी यह अधिक तेजस्वी है। निर्दोष होने से यह शरत्कालीन गमनतल से भी अधिक

निर्मल है। सहृदय लोगों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाला होने से यह गंधमादन (चंदन वृक्षों के वन वाले गजदंत) पर्वत से भी अधिक सुगंधित है। संसार में जितने भी हरिणगमेषी आवाहन आदि मंत्र हैं वशीकरण आदि मंत्र हैं वशीकरण आदि प्रयोजनों के लिए योग हैं मंत्र तथा विद्या के जप हैं। प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ हैं तिर्यग्लोकवासी जृम्भक जाति के देव हैं फेंककर चलाये जाने वाले बाण आदि के अस्त्र हैं सीधे प्रहार किए जाने वाले शस्त्र हैं अथवा अर्थनीति आदि लौकिक शस्त्र हैं चित्र आदि कलाओं की शिक्षाएँ हैं सिद्धांत—आगम—धर्मशास्त्र हैं ये सब सत्य से ही उपलब्ध या सिद्ध होते हैं।

(पृ. 613 श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र)

सत्य भी असत्य (अकथनीय)

वस्तु की यथार्थ रूप से प्रकट करने वाला वह सत्य भी यदि संयम का बाधक हो तो उसे जरा—सा भी नहीं करना चाहिए, जो हिंसा और पाप से मिश्रित हो, चारित्रनाशक तथा स्त्री आदि विकथाओं को प्रकट करने वाला हो अथवा फूट डालने वाला तथा व्यर्थ की ढींगे हाँकने वाला हो। जो बिना मतलब की बकवास और कलह पैदा करने वाला हो, जो अनर्थों—पापकर्म में प्रवृत्त म्लेच्छों द्वारा बोलने योग्य वचन हो अथवा अन्याय का पोषक हो दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण करने वाला तथा विवाद पैदा करने वाला हो दूसरों की विडम्बना—झूठी आलोचना करके फजीहत वाला हो अनुचित जोश और धृष्टता से भरा हुआ हो लज्जारहित—अपशब्द हो लोक निंदनीय हो तथा जिसे अच्छी तरह न देखा हो, अच्छी तरह न सुना हो व अच्छी तरह न जाना हो अथवा जो हकीकत के विपरीत रूप में देखा हो सुना हो या जाना हो उस विषय में किंचित् मात्र भी नहीं कहना चाहिए। अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करना भी असत्य ही है। जैसे किसी से कहना कि 'तू उत्तम स्मरण शक्ति वाला—मेधावी नहीं है भुलक्कड़ है तू धनिक नहीं है दरिद्र है धर्मप्रेमी नहीं है तू अकुलीन है तू साता नहीं है कंजूस है तू शूरवीर नहीं, डरपोक है तू सुंदर नहीं, कुरुप है तू भाग्यशाली नहीं, भाग्यहीन है तू पंडित नहीं मूर्ख है तू बहुश्रुत नहीं, अल्पज्ञ है तू तपस्वी

नहीं है भोजन—भट्ट है परलोक के विषय में तेरी बुद्धि संशय रहित नहीं है अर्थात् तू संशयग्रस्त—नास्तिक है अथवा जाति (मातृपक्ष), कुल (पितृपक्ष) रूप व्याधि (कोढ़ आदि दुःसाध्य रोग) तथा रोग (बुखार आदि रोग) के निमित्त से भी परपीड़कारी निंदनीय वचन द्वेष्युक्त है अथवा द्विधा से भरे है अथवा द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से दूसरे से शिष्टाचार अथवा उपकार का उल्लंघन करने वाले हैं वे सत्य हो तो भी नहीं बोलने चाहिए। प्रश्न होता है कि तब फिर किस प्रकार का सत्य बोलना चाहिए। (उत्तर में कहते हैं) ‘जो त्रिकालवर्ती पुद्गलादि द्रव्यों से द्रव्य की नई—पुरानी क्रमवर्ती पर्यायों से उनके सहभावी वर्ण आदि गुणों से कृषि आदि कर्मों से या उठाने—रखने आदि चेष्टाओं से चित्रकला आदि अनेक शिल्पों से तथा आगमों के सैद्धांतिक अर्थों से युक्त हो तथा व्युत्पन्न या अव्युत्पन्न नाम तीनों काल के वाचक क्रिया पदों, अव्यय, प्र, परा आदि (जिनके जुड़ जाने पर धात्वर्थ बदल जाता है) उपसर्गों प्रत्यय लगाने पर नये अर्थ के बोधिक तद्विनपद समासपद सुबन्न, तिगन्त विभक्त अन्त पद हेतु, यौगिकपद, उणादि, प्रत्ययान्त पद सिद्ध क्रिया बताने वाले पद, भू आदि धातु, अकारादि स्वर या षड्ज आदि संगीत स्वर अथवा हस्त—दीर्घ—प्लुतरूप मात्रोच्चारण स्वर अथवा कहीं स्वर के बदले 'रस' शब्द मिलता है, वहाँ अर्थ होगा—श्रृंगार आदि नारस ? प्रथमा आदि विभक्ति, स्वरव्यंजनात्मक वर्ण, इस सबसे युक्त हो वह सत्य है। ऐसा त्रिकाल विषय सत्य दस प्रकार का होता है। वह सत्य जैसे मुँह से कहा जाता है वैसे ही कर्म—लेखन, हाथ—पैर, आँख आदि की चेष्टा, इंगित आकृति आदि क्रिया से भी होता है। अथवा जैसा बोला है वैसा ही करके बताने से यानी कथन के अनुसार अमल करने से ही सत्य होता है। संस्कृत प्राकृत आदि भेद से बारह प्रकार की भाषा होती है। तथा एक वचन, द्विवचन आदि से सोलह प्रकार का वचन होता है। इन नाम आदि से संगत वचन ही बोलने योग्य होता है। वही सत्य कहलाता है।

इस प्रकार तीर्थकर भगवान् द्वारा अनुज्ञात—आदिष्ट तथा भली भाँति सोचा—विचारा हुआ सत्य वचन समय—अवसर आने पर संयमो साधु को बोलना चाहिए। (पृ. 614 श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र)

सत्यव्रत की भावनाएँ

क्रोधलोभभीरूत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुविची भाषणं च पञ्च । (5)

And five (contmption or observance for the vow against falsehood.)

क्रोध प्रत्याख्यान Giving up anger;

लोभ Giving up greed;

भीरूत्व Giving up cowardice or fear;

हास्य प्रत्याख्यान Giving up of frivility;

अनुविची भाषण Speaking in accordance with scriptural injunctions.

क्रोध प्रत्याख्यान, लोभ प्रत्याख्यान, भीरूत्व प्रत्याख्यान, हास्य प्रत्याख्यान और अनुविची भाषण से सत्य व्रत की पांच भावनाएं हैं।

क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भीरूत्व का त्याग, हास्य का त्याग और अनुविचीभाषण से पांच सत्यव्रत की भावनाएँ जाननी चाहिए। अनुविची भाषण, अनुलोभ भाषण एकार्थवाची अर्थात् विचारपूर्वक बोलना अनुविची भाषण है। यहाँ पुण्याच्चर का प्रकरण होने से अप्रशस्त क्रिया करने वाले पापी के भाषण को अनुविची भाषण नहीं कह सकते। क्योंकि विचारपूर्वक भाषण को अनुविची भाषण कहते हैं।

सत्याणुव्रत के अतिवार

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः । (26)

The partial transgressions of second vow सत्याणुव्रत are :

1. मिथ्योपदेश—Preaching false doctrines.
2. रहोभ्याख्यान—Divulging the secret actions of man and woman.
3. कूटलेखक्रिया—Forgery and perjury.
4. न्यासापहार—Unconscious dealing by means of speech.

5. साकारमंत्र भेद—Divulging what one guesses by seeing the behavious or gertures of others, who are consulting in private.

मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखनक्रिया, न्यासापहार और साकारमंत्र भेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

मिथ्योपदेश—मिथ्या, अन्य प्रवर्तन या यथार्थ क्रियाओं का छिपाना मिथ्योपदेश है। अभ्युदय और निःश्रेयसार्थक क्रियाओं में अन्यथा प्रवृत्ति करा देना या उनके प्रति उलटी बात कहना मिथ्योपदेश कहलाता है।

रहोभ्याख्यान—संवृत्त (गुप्त) का प्रकाशन रहोभ्याख्यान है। स्त्री-पुरुषों के द्वारा एकान्त में किये गये रहस्य (संकेत, बातचीत आदि) का उद्घाटन करना रहोभ्याख्यान है ऐसा जानना चाहिए।

कूटलेखक्रिया—पर प्रयोग से अनुकृत पद्धति कर्म कूटलेख क्रिया है। किसी के नहीं कहने पर भी किसी दूसरे की प्रेरणा से यह कहना कि 'उसने ऐसा कहा है या ऐसा अनुष्ठान किया है' इस प्रकार वंचन के निमित्त (ठगने के लिए) लेख लिखना कूटलेखक्रिया है।

न्यासापहार—हिरण्य आदि निषेप में अल्पसंख्या का अनुज्ञा वंचन न्यासापहार है। सुवर्ण आदि गहना रखने वाले द्वारा भूल से अल्पशः (कम) माँगने पर जानते हुए भी 'जो तुम माँगते हो ले जाओ' इस प्रकार अनुज्ञा वंचन कहना, उसका कम देना न्यासापहार नामक अतिचार कहलाता है।

साकारमंत्र ऐन प्रयोजन आदि के द्वारा पर के गुप्त अभिप्राय का प्रकाशन करना साकारमंत्र भेद है। प्रयोजन, प्रकरण, अंगविकार अथवा भूक्षेप आदि के द्वारा दूसरे के अभिप्राय को जानकर इर्ष्यावश उसे प्रकट कर देना साकारमंत्र भेद है। ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

सत्य की रक्षा की ५ भावनाएँ

भगवान् महावीर ने इस प्रवचन—सत्य सिद्धांत को मिथ्या वंचन,

चुगलखोरी, कठोर शब्द, कटुवाणी एवं बिना सोचे—विचारे उतावली में कहे हुए वंचन से आत्मा की सुरक्षा के लिए अच्छी तरह कहा है, जो आत्मा के हित के लिए है, जन्मान्तर में शुभ भावना से युक्त है भविष्य के लिए कल्याणकारी है निर्दोष है, न्यायसंगत है, मोक्ष के लिए सीधा सरल मार्ग है सर्वोत्कृष्ट है अतएव समस्त दुःखों और पापों को विशेष रूप से उपशांत करने वाला है। उस द्वितीय महाव्रत—सत्य संवर की आगे कही जाने वाली ये पाँच भावनाएँ हैं—जो असत्य वंचन से विरति की पूर्ण सुरक्षा के लिए है इसका चिंतन और प्रयोग करना चाहिए।

(1) पहली अनुचिन्त्यसमिति रूप भावना—सद्गुरु से मृषावाद विरमण सत्यवंचन प्रवृत्तिरूप उस संसार के प्रयोजन को सुनकर तथा उसके परम अर्थ रहस्य को जानकर विकल्प की तरह संशययुक्त या हड्डबड़ा कर न बोले उतावले में जल्दी—जल्दी न बोले, कड़वा वंचन न बोले, एक क्षण पहले कुछ कहना क्षणभर बाद कुछ और ही कह देना, इस प्रकार सनक में आकर चंचलता से न बोले तथा दूसरों की पीड़ा पहुँचाने वाले सावद्य वंचन न कहे किन्तु सत्य तथा हितकर एवं युक्तिसंगत—पूर्वापर—अबाधित और स्पष्ट तथा पहले से भलीभाँति सोचा—विचारा हुआ वंचन अवसर आने पर संयमी पुरुष को बोलना चाहिए। इस प्रकार पूर्वापर—सोचकर बोलने की समिति सम्यक् प्रवृत्ति के योग से संस्कारित अंतरात्म साधक हाथ, पैर, नेत्र और मुँह पर संयम करने वाला होकर पराक्रमी तथा सत्य और सरलता से संपन्न—परिपूर्ण हो जाता है।

(2) दूसरी भावना क्रोध निग्रह—क्षान्ति—वह इस प्रकार है क्रोध का सेवन न करे, क्योंकि क्रोधी मनुष्य रौद्र परिणामों के वशीभूत होकर मिथ्या बोलता है चुगलखोर के वंचन बोलता है कठोर वंचन कहता है एक साथ मिथ्यावंचन चुगली और कठोरता से युक्त वंचन कह डालता है। वह बात—बात में झगड़ा कर बैठता है। वैर विरोध पैदा कर लेता है। और अटसंट बकवास करने लगता है। एक साथ कलह वैर और उटपटांग बकवास करता है वह सत्य का गला घोट देता है। शील सदाचार का नाश कर देता है विनय—नप्रता की भी

हत्या कर बैठता है, वह सत्य, शील और विनय तीनों का एक साथ घात कर बैठता क्रोधी मनुष्य अप्रिय द्वेष भाजन बन जाता है दोषों का घर बन जाता है तिरस्कार का पात्र बन जाता है। वह इस मिथ्यावचन आदि को एवं इसी प्रकार के अन्य असत्य को क्रोधग्नि से प्रज्ज्वलित होकर बोलता है। इसलिए क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए। इस तरह क्रोध—विग्रह रूप क्षमाभाव से सुसंस्कृत हुआ अंतरात्मा अपने हाथ, पैर, नेत्र और मुख को नियंत्रित करने वाला, शूरवीर और सत्यता तथा सरलता के गुणों से परिपूर्ण हो जाता है।

(3) तीसरी भावना लोभ संयम—निर्लोभता से युक्त है। वह इस प्रकार है लोभ का सेवन नहीं करना चाहिए। क्योंकि लोभी मनुष्य व्रत से चलायमान होकर या तो खेत के लिए झूठ बोलेगा या मकान के लिए लोभव्रत से डिगकर या तो कीर्ति के लिए असत्य बोलेगा या लोभवश परिवार आदि के पोषण के लिए। लुब्ध मनुष्य सत्यव्रत से विचलित होकर या तो संपत्ति के लिए बोलेगा या फिर इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति के लिए झूठ बोलेगा। लोभग्रस्त मानव सत्य से डगमगा कर या तो भोजन के लिए असत्य बात कहेगा या पेय पदार्थ के लिए असत्य भाषण करेगा। लोभी साधक सत्यव्रत में अस्थिर होकर या तो पीठ—चौकी के लिए असत्य बोलेगा अथवा पट्टे के लिए झूठी बात कहेगा। लोभ के वशीभूत साधक व्रत से चलित होकर या तो शश्या (शयन स्थान) के लिए झूठ बोलेगा या फिर संस्तर बिछौने के लिए झूठ बोलेगा। लुब्ध साधक व्रत से डावांडोल होकर या तो वस्त्र के लिए मिथ्या बोलेगा या पात्र—बर्तन के लिए। लोभग्रस्त साधक सत्य से डिगकर या तो पंबल के लिए झूठ बोलने को उद्यत होगा या पैर पौँछने के कपड़े के लिए लोभी साधक सत्यव्रत से विचलित होकर या तो शिष्य के झूठी बात कहेगा या शिष्या के लिए लोभी मानव झूठ बोलता ही है और भी इस प्रकार के अनेकों सैकड़ों कारणों से लोभग्रस्त मानव सत्यव्रत से डावांडोल होकर झूठ बोलता है। इसलिए लोभ का हर्गिज सेवन नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार लोभ संयम रूप निर्लोभता की भावना से भवित

अंतरात्मा अपने हाथ, पैर, आँख और मुँह पर संयमशील बनकर धर्मवीर सत्यता और सरलता से संपन्न हो जाता है।

(पृ. 645 श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र)

(4) चौथी भयमुक्ति—धैर्य प्रवृत्ति रूप भावना—वह इस प्रकार है—भय नहीं करना चाहिए। भयभीत मनुष्य पर अनेकों भय आकर झटपट हमला कर देते हैं। डरपोक आदमी सदा अद्वितीय—असहाय (अकेला) होता है। भयभीत मनुष्य ही भूत—प्रेतों ग्रस्त होते हैं। भयभीत साधक तप और संयम अथवा तपस्य प्रधान संयम को भी तिलांजलि दे देता है। भयभीत मनुष्य किसी महत्वपूर्ण कार्य के दायित्व को निभा नहीं पाता है अथवा संयम का भार नहीं निभा सकता। और न ही डरपोक साधक सत्पुरुषों द्वारा आचरित मार्ग पर ही चलने में समर्थ होता है। इसलिए दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य या दुष्ट तिर्यन्च के निमित्त से पैदा हुआ बाह्य भय से एवं आत्मा में उत्पन्न हुए आंतरिक भय से अथवा किसी प्राणघातक कुष्ट आदि व्याधि से या ज्वर आदि रोग से अथवा बुढ़ापे से या मौत से अथवा इसी प्रकार के इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग रूप वगैरह भय के अन्यान्य कारणों से नहीं डरना चाहिए। इस प्रकार का चिंतन करके चित्त को स्थिरता—धीरता से संस्कार दृढ़ हुआ अंतरात्मा हाथ, पैर, आँख एवं मुँख पर संयमशील साधु सत्यव्रत पालन से बहादुर तथा सत्य और आर्जव से संपन्न हो जाता है।

(पृ. 646 श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र)

(5) पाँचवीं हास्य संयम—वचन संयम रूप भावना इस प्रकार—हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए। क्योंकि हँसी करने वाले लोग वास्तविक बात को छिपाने वाले मिथ्यावचन तथा अवधिमान बातों को प्रगट करने वाले असद् वचन या अशोभनीय वचन बोल देते हैं तथा हँसी—मजाक दूसरों के तिरस्कार का कारण बन जाती है। हँसी को दूसरों की निंदा ही प्यारी लगती है। हँसी दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली है। हँसी—मशकरी चारित्र का नाश या मोक्ष मार्ग का उच्छेद और शरीर की आकृति को विकृत कर देती है। अथवा हँसी परस्पर भेद—फूट डाल देती है। और प्रियजनों में अलगाव पैदा कर

देती है हँसी—मजाक हमेशा परस्पर एक—दूसरे के संपर्क से होती है। हँसी—मजाक में बोला गया मर्मकारी वचन एक—दूसरे को परस्पर चुभने वाला होता है। हास्य पारस्परिक कुचेष्टा को या परदारादि के गुप्त रहस्य को खोलने वाला कर्म है। हास्य विदुषकों, भाँड़ों तथा तमाशों के निर्देश करने वालों के पास पहुँचाने का कारण है अथवा हास्य हँसी—मजाक करने वाले कान्दर्पिक देवों तथा भार ढोने वाले आभियोग्य देवों में—निकृष्ट देवयोनियों में ले जाने वाला है। हास्य असुर जाति के भवनवासी देवों की पर्याय में तथा किल्विष देवों की पर्याय में उत्पन्न कराता है। इसलिए हास्य कदापि न करना चाहिए इस प्रकार हास्य संयम—वचन संयमरूप मौन भावना द्वारा संस्कार प्राप्त अंतरात्मा हाथ, पैर, औंख और मुँह को अपने काबू में रखता है। वह संयम में पराक्रमी वीर अंत में सत्य और निष्कपट भाव से सम्पन्न होता है।

इस प्रकार मन, वचन और काय को चारों ओर से सुरक्षित रखने में कारणभूत इन पांचों भावनाओं के चिंतन और प्रयोग से साधु जीवन में सम्यक् प्रकार से आचरित सत्य महाव्रत रूप संवर का यह द्वारा अच्छी तरह परिनिष्ठित संस्कारों में वध हो जाता है।

धैर्यवान् तथा बुद्धिमान साधक को कर्मों के आगमन के निरोधी कलुषता से रहित कर्म जब प्रवाह के निरोह के लिए छिद्रमरहित कर्मबंधन के प्रवाह से रहित, संक्लिष्ट परिणामों से दूर समस्त देवाधिदेव तीर्थकरों द्वारा अनुज्ञात—अनुमत इस प्रशांत योग भावनाओं के प्रयोग को जीवन के अंत तक नित्य आचरण में लाना चाहिए।

(पृ. 647 श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र)

सत्य, असत्य एवं एकाग्रता

चार प्रकार का सत्य प्रतिपादन किया गया है, जैसे—काय की सरलता, भाषा की सरलता, भाव की सरलता और यथार्थ—प्रवृत्ति। चार प्रकार का असत्य प्रतिपादन किया गया है। जैसे—काय की वऋता भाषा की वऋता, भावों की वऋता और अयाथार्थ प्रवृत्ति चार

प्रकार का प्रविधान (मन—वचन और काय की प्रवृत्ति) प्रतिपादन किया गया है, जैसे—मनः प्रणिधान, वचन—प्रणिधान, काय प्रणिधान और उपकरण—प्रणिधान। इसी प्रकार नारकियों एवं पंचेन्द्रियों से लेकर वैमानिकों पर्यन्त कथन करना।

चार प्रकार का सुप्रविधान प्रतिपादन किया गया है जैसे—मन सुप्रणिधान यावत् उपकरण सुप्रणिधान। इसी तरह संयत मनुष्यों का भी जानना चाहिए। चार प्रकार का दुष्प्रणिधान प्रतिपादन किया गया है जैसे—मनोदुष्प्रणिधान यावत् उपकरण दुष्प्रणिधान। इसी प्रकार पंचेन्द्रियों से लेकर वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विवेचनिका—जो आत्मा उपशम आदि गुणयुक्त है उसी में सत्य का विकास हो सकता है और सत्यनिष्ठा के परिपक्व हो जाने पर ही साधक मृषा का परित्याग और प्रणिधान अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है अतः अब सुप्रकार सत्यादि का वर्णन करते हैं।

सत्य के चार रूप—सन्नार्ग, मोक्ष—मार्ग, सरलता, निष्कपटता इत्यादि अर्थों में ऋजुता शब्द का प्रयोग होता है। सत्य और ऋजुता का परस्पर इतना घनिष्ठ संबंध है जितना कि मिश्री और मधुरता में होता है। जो सरल है। वही सत्यवादी है और जो सत्यवादी है वही सरल है इनका साहचर्य नित्य एवं शाश्वत हैं जो ऋजु है वही सत्य है और जो सत्य है वही ऋजु है। यह सत्य चार प्रकार से व्यक्त होता है जैसे कि—

(1) **काय—ऋजुकता**—कुटिल मार्ग से काय अर्थात् शरीर को विमुख करना और उसे यथार्थ मार्ग में ले जाना, हिंसा आदि क्रियाओं से काया को हटाना, जिसमें भगवान् की आज्ञा है उसी में प्रवृत्ति करना काय—सत्य है।

(2) **भाषा—ऋजुकता**—विचार कर बोलना हितावह और प्रीति बोलना, नप्रता एवं शांति से बोलना, निर्भय एवं निर्लोभता से बोलना, निर्विकार एवं शास्त्रपूत वचन बोलना भाषा—सत्य है।

(3) **भाषा—ऋजुकता**—सम्यगृष्टि तथा शल्यरहितव्रती, अप्रमत्त संयत और धर्मध्यान एवं शुक्ल ध्यान में जो भी संकल्प—विकल्प

उत्पन्न होते हैं वह भाव—सत्य कहलाता है। तत्त्वों पर शुद्ध श्रद्धान ही भाव—सत्य है।

(4) अविसंवादनायोग—ग्रहण की हुई शुभ प्रतिज्ञा को तथा दिये हुए शुभ आश्वासन को पूरा करना, प्रवचन—प्रभावना करना सुपात्र को दान देना, साहित्य—सेवा करना, गुरु की सुश्रुषा करना योगों की यथार्थ—प्रवृत्ति करना अविसंवादना सत्य है। सत्य का सर्वतोमुखी साक्षात्कार करना ही भगवद्-दर्शन है।

असत्य के चार रूप-

सत्य और असत्य में इतना अंतर है जितना सूर्य और अंधकार में है। सत्य से सर्वथा विपरीत क्रिया को असत्य एवं मिथ्या कहते हैं। सत्य स्व—पर प्रकाशक है, किन्तु असत्य स्वयं अभावात्मक है, अज्ञानात्मक तथा अप्रमाणात्मक है असत्य विष मिश्रित भोजन की तरह परित्याज्य है। उसके भी चार रूप हैं जैसे कि—(1) काय—अनुजुकता—हिंसा आदि—पाप—क्रियाओं में काय के द्वारा प्रवृत्ति करना, दुर्व्यसनों का सेवन, संसार में प्रवृत्ति, मोक्ष के विमुख रहना और दुराचार में आसक्ति काय—असत्य है। (2) भाषा—अनुजुकता—बिना विचारे, असंबद्ध वचन बोलना, अहितकर एवं अप्रिय वचन बोलना, सकपट भाषा बोलना, गाली देना, निंदा करना, कलहारी भाषा बोलना भाव असत्य है। (3) भाव—अनुजुकता—मन में सरलता का न होना अप्रशस्त लेश्या में तथा मिथ्यात्व में वर्तना निदान करना भाव असत्य है। (4) विसंवादना योग—ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा तोड़ना, विश्वासघात करना, आश्वासन देकर बदल जाना, मन, वचन और काय की एकता का न होना विसंवादनायोग है, असत्य के द्वारा जीव अशुभकर्मों का उपार्जन करता है दुर्गतियों में भटकता है। बंध और मोक्ष प्रणिधान के द्वारा ही होता है। प्रणिधान शब्द समाधि या समाधान का द्योतक है। वह दो तरह का होता है शुभ और अशुभ। सामान्य रूप में इनमें प्रवृत्त होना प्रणिधान कहलाता है। किसी एक विषय में मन आदि का एकाग्र होना प्रणिधान है। यह प्रणिधान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सभी दंडकों में पाया जाता है। इसका प्रयोग तीनों दृष्टियों के स्वामी करते हैं,

किन्तु अप्रमत्त संयत के मन, वचन, काय और उपकरण इन सब में सुप्रणिधान ही होता है। क्योंकि संयत का मन धर्मध्यान से ओझल नहीं होता। वाणी सत्यमय होती है, काय और उपकरण में संयम तथा यतना सदैव रहती है। अतः सुप्रणिधान संयत मनुष्यों में ही पाया जाता है। शेष संज्ञी जीवों में सुप्रणिधान नहीं, अपितु प्रणिधान और दुष्प्रणिधान दोनों ही पाये जाते हैं। सुप्रणिधान एकान्त संयम और निर्जरा का कारण है और दुष्प्रणिधान एकान्त असंयम और बंध का कारण है। दोनों के मध्य में जो जीव की प्रवृत्ति होती है उसे प्रणिधान कहा जाता है। (पृ. 708 स्थाना. सूत्र)

भाषा की सत्यता—सीमा एवं शालीनता

पे सुण्णहा सकक्क सपरणिं दाप्पपसं सविकहादी।

वज्जित्ता सपरहियं भाषासमिदी हवे कहणं (12)

(मूला। पृ. 18)

चुगली, हँसी, कठोरता, परनिंदा, अपनी प्रशंसा और विकथादि को छोड़कर अपने और पर के लिए हितरूप बोलना भाषा समिति है।

पिशुन, चुगली के भाव को पैशुन्य कहते हैं अर्थात् निर्दोष के दोषों का उद्भावन करना, निर्दोष को दोष लगाना। हास्य कर्म के उदय से अधर्म के लिए हर्ष होना हास्य है। कान के लिए कठोर, काम और युद्ध के प्रवर्तक वचन कर्कश है। पर के सच्चे अथवा झूठे दोषों को प्रकट करने की इच्छा होना या अन्य के गुणों को सहन नहीं कर सकना यह परनिंदा है। अपनी प्रशंसा स्तुति करना अर्थात् अपने गुणों को प्रकट करने का अभिप्राय रखना और स्त्रीकथा, भक्तकथा, चोरकथा और राजकथा आदि को कहना विकथादि है। इस चुगली आदि वचनों को छोड़कर अपने और पर के लिए सुखकर अर्थात् कर्मबंध के कारणों से रहित वचन बोलना भाषा समिति है।

तात्पर्य यह है कि पैशुन्य, हास्य, कर्कश, परनिंदा, आत्मप्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर स्व और पर के लिए हितकर जो कथन करना वह भाषा समिति है।

तीन गुप्ति-

मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता ।

खिप्पं णिवारयंतो तीहिं दु गुत्तो हवदि एसो (331)

(मूला. । पृ.275)

पाप कार्य से युक्त मन—वचन—काय की प्रवृत्ति को शीघ्र ही निवारण करता हुआ यह मुनि तीन गुप्तियों से गुप्त होता है।

प्रवृत्ति शब्द को प्रत्येक के साथ लगा लेना चाहिए। अतः जो मुनि सावद्य कार्य संयुक्त—हिंसादि पाप विषयक मन की प्रवृत्ति को, वचन की प्रवृत्ति को और काय की प्रवृत्ति को शीघ्र ही दूर करता है वह तीन गुप्तियों से गुप्त अर्थात् रक्षित होता है। यह गुप्ति का सामान्य लक्षण है।

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ती ।

अलियादिणियत्ती वा मोण वा होदि वचिगुत्ती (332)

मन से जो रागादि निवृत्ति है उसे मनोगुप्ति जानो। असत्य आदि से निवृत्ति होना या मौन रहना वचन गुप्ति है।

राग—द्वेष आदि से जो मन का जो रोकना है अर्थात् मन से जो रागादि भावों का त्याग करना है उसे मन की संवरणरूप मनोगुप्ति जानो। और, जो अस्त अभिप्रायों से वचन को रोकता है, अथवा मौन रहता है, ध्यान—अध्ययन, चिंतनशील होना अर्थात् वचन के व्यापार को रोककर मौन धारण करना अथवा असत्य वचन नहीं बोलना, यह वचनगुप्ति का लक्षण है।

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ।

हिंसादिणियत्ती वा सरीरगुत्ती हवदि एसा (333)

काय की क्रिया का अभाव रूप कायोत्सर्ग करना काय से संबंधित गुप्त है। अथवा हिंसादि कार्यों से निवृत्ति होना कायगुप्ति होती है।

शरीर की चेष्टा की प्रवृत्ति नहीं होना अथवा कायोत्सर्ग करना कायगुप्ति है। अथवा हिंसा आदि से निवृत्ति होना शरीर गुप्ति है।

जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र गोपित किये जाते हैं, रक्षित किये जाते हैं, वे गुप्तियाँ। अथवा जिनके द्वारा मिथ्यात्व असंयम और कषायों से आत्मा गोपित होती है, रक्षित होती है, वे गुप्तियाँ हैं।

खेत्तस्स वई णयरस्स खाइया अहव होइ पायारो ।

तह पावस्स णिरोहो ताओ गुत्तीउ साहुस्स (334)

जैसे क्षेत्र की बाड़, नगर की खाई अथवा परकोटा होता है उसी प्रकार से पाप का निरोध होने रूप से साधु की वे गुप्तियाँ हैं।

जैसे खेत की रक्षा के लिए बाड़ है, और नगर की रक्षा के लिए खाई अथवा परकोटा है उसी प्रकार से जो अशुभ कर्म को रोकता है या संवृत होना है वही संयत की गुप्तियाँ कहलाती हैं।

तम्हा तिविहेण तमं णिच्चं मणवयणकायजोगेहिं ।

होहिसु समाहिदमहि णिरंतरं ज्ञान सज्जाए (335)

इसलिए तुम त्रिविधि पूर्वक नित्य मन—वचन—काय योगों द्वारा सतत ध्यान और स्वाध्याय में एकाग्रमति होओ।

अतः हे साधु! तुम मन—वचन—काय और कृत—कारित—अनुमोदना से सम्यक् प्रकार एकाग्रमना होओ। निरंतर ध्यान में और स्वाध्याय में तत्पर होओ।

एताओ अद्वपवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं ।

रक्खन्ति सदा मुणिणो मादा पुत्तं व पयदाओ (336)

ये आठ प्रवचन—माताएँ, जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है वैसे ही, सदा मुनि के दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करती हैं।

पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप ये आठ प्रवचन—माताएँ मुनि के ज्ञान दर्शन और चारित्र की सदा रक्षा करती हैं अर्थात् उनका पालन करती हैं। कैसे? जैसे माता पुत्र का पालन करती है वैसे ही ये मुनि के रत्नत्रय का पालन करती है। इसलिए इनका प्रवचनमातृका यह नाम सार्थक है। यहाँ पर गाथा में ओकार शब्द में हनस्वस्व प्राकृत

व्याकरण के बदल से समझना चाहिए।

एदाहिं सया जुत्तो समिदीहिं महिं विहरमाणो दु।

हिंसादीहिं ण लिप्पइ जीवणिकाआउले साहू (326)

इन समितियों से युक्त साधु हमेशा ही जीव समूह से भरे हुए भूतल पर विहार करते हुए भी हिंसादि पापों से लिप्त नहीं होते हैं।

इन समितियों से सदाकाल युक्त हुए मुनि जीव—समूह से भरे हुए इस लोक में पृथ्वी पर सर्वत्र विहार करते हुए भी हिंसा आदि पापों से लिप्त नहीं होते हैं।

पउभिणिपत्तं व जहा उदएण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं।
तह समिदीहिंण लिप्पदि साहू काएसु इरियंतो (327)

जैसे चिकनाई से युक्त कमल का पत्ता जल से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार साधु जीवों के मध्य समितियों से चर्या करता हुआ लिप्त नहीं होता है। जैसे कमलिनी का पत्ता जल में वृद्धिगत होते हुए भी जल से लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह स्नेह गुण युक्त है अर्थात् उस पत्ते में चिकनाई पाई जाती है। उसी प्रकार से समितियों के साथ विहार करता हुआ साधु पाप से लिप्त नहीं होता है। यद्यपि वह जीवों के समूह में रहता है अथवा जीवों के मध्य विहार करता है तो भी वह प्रयत्नपूर्वक क्रियाएँ करता है अर्थात् सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करता है। यही कारण है कि वह पापों से नहीं बँधता है।

सरवासेहिं पडंते हिं जह दिढकवचो ण भिज्जदि सरेहिं।
तह समिदीहिं ण लिप्पइ साहू काएसु इरियंतो (328)

पड़ती हुई बाण की वर्षा के द्वारा जैसे मजबूत कवच वाला मनुष्य बाणों से नहीं भिदता उसी प्रकार साधु समितियों से सहित हो जीव—निकायों में चलते हुए भी पाप से लिप्त नहीं होता है।

जैसे संग्राम में बाणों की वर्षा होने पर भी, जिसने मजबूत कवच धारण किया है वह मनुष्य तीक्ष्ण बाण या तोमर आदि शस्त्रों से नहीं भिदता है उसी प्रकार छह जीव—निकायों में पर्यटन करता हुआ भी समितियों के द्वारा प्रवृत्त हुआ साधु पाप से लिप्त नहीं होता है।

जत्थेव चरदि बालो परिहारण्हूवि चरदि तत्थेव।

वज्ञदि पुण सो बालो परिहारण्हू विमुच्वदि सो (329)

जहाँ पर अज्ञानी विचरण करता है वहीं पर जीवों का परिहार करता हुआ ज्ञानी भी विचरण करता है। किन्तु कर्म बंधन से वह अज्ञानी तो बंध जाता है लेकिन जीवों का परिहार करता हुआ वह मुनि कर्मबंध से मुक्त रहता है।

जो जीवादि के भेदरूप तत्व को जानने वाला नहीं है ऐसा बाल—अज्ञानी जीव जिस स्थान पर विचरण करता है, भ्रमण करता है या आचरण करता है, और जो जीवों का परिहार करने वाला वह मुनि भी वहीं पर उसी लोक में विचरण करता है, अनुष्ठान करता है अथवा भ्रमण करता है किन्तु अज्ञानी जीव तो कर्मों से बंध जाता है, और जीवों का परिहार करता हुआ प्रयत्नपूर्वक प्रवृत्ति वाला मुनि कर्मों के बंधन से मुक्त रहता है। यह समितियों का ही गुण अर्थात् माहात्म्य है, ऐसा समझना।

तम्हा चेष्टिदुकामो जइया तइया भवाहि तं समिदो।

समिदो हु अण णादियदि खवेदि पोराणयं कम्मं (330)

इसलिए जब तुम चेष्टा करना चाहो तब समितिपूर्वक प्रवृत्त होओ। निश्चित रूप से समिति सहित मुनि अन्य कर्म ग्रहण नहीं करता है और पुराने कर्म का क्षय कर देता है।

इसलिए जब चेष्टा करने की इच्छा हो, पर्यटन करने की इच्छा हो अर्थात् कोई भी प्रवृत्ति करने की इच्छा हो तब तुम समिति से परिणत होओ; क्योंकि समिति में तत्पर हुए मुनि अन्य नवीन कर्मों का ग्रहण नहीं करते हैं तथा पुराने—सत्ता में स्थित हुए कर्मों की निर्जरा कर देते हैं।

सत्यग्रत की भावनाएँ—

कोहभयलोहहासपइण्णा अणुवीचिभासणं चेव

बिदियस्स भावणाओ वदस्स पंचेव ता होंति (338)

क्रोध, भय, लोभ और हास्य का त्याग तथा अनुवीचि भाषण द्वितीय व्रत की ये पाँच ही भावनाएँ होती हैं।

क्रोध का त्याग, भय का त्याग, लोभ का त्याग और हास्य का त्याग तथा सूत्र के अनुसार वचन बोलना ये पाँच भावनाएँ सत्य महाव्रत की हैं। अर्थात् इन भावनाओं को भाते हुए सत्यव्रत परिपूर्ण हो जाता है।

वचन में विनियोग-

पूयावयणं हिदभासणं मिदभासणं च मधुरं च।

सुत्ताणुवीचिवयणं अणिद्धुरमकक्षसं वयणं (377)

पूजा के वचन, हित वचन, मित वचन और मधुर वचन, सूत्रों के अनुकूल वचन, अनिष्टुर और कर्कशता रहित वचन बोलना वाचिक विनय है।

‘आप भट्टारक!’ इत्यादि प्रकार बहुवचन का उच्चारण करना पूजा वचन है। हित-पथ्य वचन बोलना अर्थात् इस लोक और परलोक के लिए धर्म के कारणभूत वचन, हितवचन हैं। मित-परिमित बोलना जिसमें अल्प अक्षर हो किन्तु अर्थ बहुत हो मित वचन है। मधुर! मनोहर अर्थात् कानों को सुखदायी वचन मधुर वचन है। आगम के अनुकूल बोलना कि जिस प्रकार के पाप न हो सूत्राणुवीचि वचन है। तुम जलो मरो, प्रलय को प्राप्त हो जाओ इत्यादि शब्दों से रहित वचन अनिष्टुर वचन है और कठोरता रहित वचन अकर्कश वचन है। अर्थात् उपर्युक्त प्रकार के वचन बोलना ही वाचिक विनय है।

उवसंतवयणमगिहत्थवयणमकिरियमहीलणं वयणं।

एसो वाइयविणओ जहारिहं होदि कादब्बो। (378)

कषाय रहित वचन, गृहस्थी संबंध से रहित वचन, क्रिया रहित और अवहेलना रहित वचन बोलना—यह वाचिक विनय है जिसे यथायोग्य करना चाहिए।

क्रोध, मान आदि से रहित वचन उपशांत वचन है। गृहस्थों के जो मकार-वकार आदि रूप वचन है उनसे रहित वचन, तथा बंधन, त्रासन, लाडन आदि से रहित वचन अगृहस्थ वचन है। असि-मषि, कृषि आदि क्रियाओं से रहित वचन अक्रिय वचन है। अथवा ‘सक्रियं’

ऐसा भी पाठ है जिसका अर्थ यह है कि क्रिया युक्त वचन बोलना किन्तु अन्य की चिंता और अन्य के दोष रूप वचन बोलना नहीं चाहिए। जैसा करना वैसा ही बोलना चाहिए। किसी का तिरस्कार करने वाले वचन नहीं बोलना अहीलन वचन है और भी ऐसे ही वचन जहाँ होते हैं वह सब वाचिक विनय है जो कि यथायोग्य करना चाहिए।

हितमिदपरिमिदभासा अणुवीचीभाषणं च बोधवं।

अकुसलमणस्स रोधो कुसलमणपवत्तओ चेव (383)

हित वचन, मित वचन, परिमित वचन बोलना, मित भाषण जिसमें अक्षर अल्प हो अर्थ बहुत हो ऐसे वचन बोलना, परिमित भाषण—कारण सहित वचन बोलना अर्थात् बिना प्रयोजन के नहीं बोलना, अनुवीचि भाषण—आगम से अविरुद्ध वचन बोलना, इस प्रकार से वचन विनय चार प्रकार का है। पाप आश्रव करने वाले अशुभ मन का रोकना अर्थात् मन में अशुभ विचार नहीं लाना तथा धर्म में चित्त को लगाना ये दो प्रकार का मनोविनय हैं।

वचनशुद्धि का स्वरूप

भासं विणयविहूणं धम्मविरोही विवज्जए वयणं।

पुच्छिदमपुच्छिदं वा ण वि ते भासंति सप्तुरिया ॥ (855)

(मूलाचार ॥)

विनय से शून्य, भाषा और धर्म के विरोधी वचन को वे छोड़ देते हैं। वे साधु पूछने पर अथवा नहीं पूछने पर भी वैसा नहीं बोलते हैं।

वचन की प्रवृत्ति का नाम भाषा है। उसके आर्य, कर्णाटक, गौड़, लाट आदि देशों की अपेक्षा नाना भेद होते हैं। वे मुनि ऐसी आर्य, कानड़ी, गौड़ी, लाटी आदि भाषा विनयरहित एवं स्वर पुरुष—कठोर आदि वचनों से सहित नहीं बोलते हैं। तथा मनोहर भी वचन यदि धर्म के प्रतिकूल हैं तो वे मुनि नहीं बोलते हैं। ऐसे ही अन्य भी जो धर्म विरुद्ध वचन, भले ही किसी ने उनसे पूछा हो या नहीं पूछा हो, वे नहीं बोलते हैं। अर्थात् किसी भी देश की भाषा में वे कठोर आदि आगम विरुद्ध वचन नहीं बोलते हैं।

अच्छीहिंय पेच्छंता कण्णेहिंय बहुविहाइं सुणमाण।

अत्थंति मूयभूया ण ते करेति हु लोइयकहाओ॥ (856)

वे मुनि नेत्रों से देखते हुए और कानों से बहुत प्रकार को सुनते हुए भी मूक के समान रहते हैं, किन्तु लौकिक कथाएँ नहीं करते हैं।

वे मुनि नेत्रों से सतरूप अथवा असतरूप को, योग्य अथवा अयोग्य वस्तुओं को देखते हुए भी नेत्ररहित के समान रहते हैं। कानों से सुनने योग्य युक्त अथवा अयुक्त ऐसे नाना प्रकार के शब्दों को सुनते हुए भी, कर्ण-शष्कुली से उन्हें ग्रहण करते हुए भी, वे न सुनते हुए के समान ही रहते हैं। वे मूक पुरुष के सदृश-जिह्वा, नेत्र और कान से रहित हुए के समान ही तिष्ठते हैं। वे मुनिजन कुछ भी देखे-सुने हुए उचित-अनुचित को न व्यक्त ही करते हैं।

लौकिक कथा

इत्थिकहा अत्थकहा भत्तकहा खेडकव्वडाणं च।

रायकहा चोरकहा जणवदण्यरायर कहाओ॥ (857)

स्त्रीकथा, अर्थकथा, भोजनकथा, खेटकर्वट कथा, चोरकथा, जनपदकथा, नगरकथा और आकरकथा ये लौकिक कथाएँ हैं।

वे स्त्रियाँ सुंदर रूप वाली हैं, सौभाग्य सहित हैं, मनोरमा हैं, उपचार में कुशल हैं, कोमल वचन बोलने वाली हैं इत्यादि रूप से स्त्रियों की कथा करना स्त्रीकथा है। धन उपार्जन के उपाय से संबंधित कथा अर्थकथा है। सेवा, व्यापार, लेखनवृत्ति, खेती, समुद्र प्रवेश, धातुवाद-रसायन प्रयोग, मंत्र-तंत्र प्रयोग इत्यादि प्रकारों से धन के उपार्जन हेतु वचन बोलना अर्थकथा है। रसना इन्द्रिय से लुभ्य होकर चार प्रकार के आहार से संबंधित वचन बोलना, जैसे—वहाँ पर अच्छे-अच्छे खाने योग्य-भक्ष्य, खाद्य, लेह्य, पेय, सुरस, मीठे, अतीव रसदार पदार्थ हैं, वह महिला बहुत प्रकार के व्यंजन पकवान बनाना जानती है, उसके हाथ में पहुँची वस्तु खराब भी अच्छी बन जाती है, किन्तु अमुक के घर में सर्वही भोजन अनिष्ट, अप्रिय, दुर्गन्धित है, सभी पदार्थ स्वाद रहित विरस हैं इत्यादि प्रकार से भोजन संबंधी वचन

बोलना भक्त कथा है। नदी और पर्वत से वेष्टित प्रदेश खेट है तथा सर्वत्र पर्वत से वेष्टित देश को कर्वट कहते हैं। इन संबंधी कथा करना खेटकथा, कर्वटकथा है तथा संवाहन, द्रोणमुख आदि की कथाएँ भी ग्रहण कर लेनी चाहिए। जैसे कि ये खेट आदि देश बहुत ही सुंदर बने हैं, किले सहित हैं, वीर पुरुषों से अधिष्ठित हैं, सब तरह से नियंत्रित हैं, परचक्र से अभेद्य हैं, बहुत से धन-धान्य आदि पदार्थों से भरे हुए हैं, सब प्रकार से अजेय हैं, वहाँ पर कोई भी शत्रु प्रवेश नहीं कर सकते हैं इत्यादि रूप से वचन बोलना खेटादि कथाएँ हैं। नाना राजाओं से संबंधित वचन बोलना राजकथा है। वह राजा बहुत ही प्रतापी है, शूर है, चाणक्य के समान निपुण है, चार-संचार में कुशल है, योग और क्षेम में अपनी बुद्धि को लगाने वाला है, चतुरंग सेना से सहित है, सर्व बैरियों को जीत चुका है, उसके सामने कोई भी खड़ा नहीं रह सकता है इत्यादि प्रकार के वचन बोलना राजकथा है। चोरों की कथा करना जैसे—वह चोर निपुण है, सेंध लगाने में प्रवीण है, वह तो मार्ग में ही लूटने में कुशल है, देखते—देखते लेकर भाग जाता है, उसने सभी को त्रस्त कर रखा है इत्यादि बातों का कथन करना चोर कथा है। जनपद-देश, नगर—जो परकोटे से धिरा हुआ है, आकर—हीरा, पन्ना, सोना, कुंकुम, मोती नमक, चंदन आदि इनकी उत्पत्ति के स्थान विशेष इनसे संबंधित कथाएँ करना; रत्नों के अर्जन करने का, उनके लाने—ले जाने आदि की बातें करना, जैसे कि वहाँ परद रत्न सुलभ हैं, सुंदर और मूल्यवान् हैं, उत्तम—उत्तम मोती मिलते हैं, वहाँ कुंकुम वगैरह वस्तुएँ बेशकीमती मिलती है यहाँ पर लाने से उनकी बहुत ही कीमत होगी, वे उत्तम फल देने वाली वस्तुएँ हैं। वह नगर सुरक्षित है, उसमें बड़े-बड़े महल आदि शोभित हो रहे हैं, वे दिव्य स्त्रियों से मनोहर हैं। वह देश रम्य है, वहाँ पर अन्न-पान सुलभ है, वहाँ के लोग मनोहर वेश धारण करते हैं, वहाँ पर प्रचुर मात्रा में गंध, माला आदि वस्तुएँ प्रयोग में लाई जाती हैं, वहाँ के लोग सभी भाषाओं में पंडित हैं, इत्यादि रूप से वचन बोलना जनपद, नगर और आकर कथा कहलाती है। धीर मुनि इन कथाओं में राग नहीं करते हैं, ऐसा अगली गाथा से यहाँ पर संबंध कर लेना चाहिए।

णङ्गमल्लकहाओ मायाकरजल्लमुद्धियाणं च ।
अज्जउललंधियाणं कहासु ण वि रज्जए धीरा ॥ (858)

नटों की कथा, भटों की कथा, मल्लों की कथा, मायाकरों की कथा, धीवरों की कथा, जुआरियों की कथा, दुर्गा आदि देवियों की कथा, बाँस पर नाचने वालों की कथा इत्यादि कथाओं में धीर मुनि अनुरक्त नहीं होते हैं ।

नट—भरतपुत्र अर्थात् नृत्य से उपजीविका करने वाले, भट—युद्ध में समर्थ अर्थात् हजारों योद्धाओं को जीतने वाले, मल्ल—कुश्ती खेलने में पहलवान अर्थात् अनेक प्रकार के कच्छप बंध आदि करने में समर्थ मल्ल, मायाकार—इन्द्रजाल आदि से प्रतारणा करने वाले अर्थात् जादूगर के खेल दिखाकर आजीविका करने वाले; जल्ल—मछलीमार, पक्षीमार, खटीक, म्लेच्छ आदि लोग, मुष्टिक जुआ खेलने वाले, आर्याकुल—आर्या—दुर्गादेवी, शक्ति देवता जिनका कुल—आम्ना है ऐसे लोग आर्याकुल वाले हैं । वे हाथ, पैर, सिर के अवयवों को भेदने में कुशल होते हैं, दुर्गादेवी या उसके उपासक जीव—हिंसा में तत्पर लोग; अथवा बकरी—भेड़ के रक्षक, सर्व पशुओं के पालक, लंधिका—रस्सी और बाँस पर नृत्य करने में कुशल, इत्यादि प्रकार के नट, भट आदि की कथा करना, उनके कार्यों में उपयोग लगाना, सरागचित होकर चर्चा करना कि वह बहुत सुंदर है, वह असुंदर है, अथवा वह कुशल है या अकुशल है इत्यादि रूप से इन उपर्युक्त कथाओं में वैराग्यशील मुनि अनुराग नहीं करते हैं ।

विकहा विसोन्निताणं खणमवि हिदएण ते ण चिंतंति ।

धम्मे लद्धमदीया विकहा तिविहेण वज्जंति ॥ (859)

वे मुनि मन से क्षणमात्र भी विकथा और कुशास्त्रों का चिन्तवन नहीं करते हैं । धर्म में बुद्धि लगाने वाले वे मुनि मन—वचन—काय से विकथाओं का त्याग कर देते हैं ।

उपर्युक्त कही हुई विकथाएँ, स्त्रीकथा, भक्तकथा, चोरकथा और राजकथा तथा विश्रुतिकथा अर्थात् सम्यगदर्शन, ज्ञान, चारित्र और

तप इनके प्रतिकूल वचन तथा इनसे संबंधित परिणामों को भी वे मुनि नेत्र की पलक लगने के समरूप निमेष मात्रकाल के लिए भी मन से चिंतवन नहीं करते हैं और न ही उनकी व्यवस्था करते हैं । धर्म में अपनी बुद्धि को एकाग्र करने वाले वे महामुनि मन—वचन—कायपूर्वक इन कथाओं का त्याग कर देते हैं ।

कुकुय कंदप्पाइय हासं उल्लावणं च खेडं च ।

मददप्पहत्थवणिं ण करें ति मुणी ण कारेंति ॥ (860)

काय की कुचेष्टा, कामोत्पादक वचन, हँसी, वचनचातुर्य, परवंचना के वचन, मद व दर्प से करताड़न करना आदि चेष्टाएँ मुनि न करते हैं न कराते हैं ।

कौत्कुच्य—हृदय और कण्ठ से अव्यक्त शब्द करना, कंदप्पायित—कामोत्पादक वचन बोलना, अथवा राग के उद्रेक से हँसी मिश्रित अशिष्ट वचनों का प्रयोग करना, हास्य—उपहास के वचन बोलना, उल्लापन—अनेक चातुर्ययुक्त मनोहर वचन बोलना, खेड—उपप्लव नास्तिवाद के वचन या सरल हृदय से भी पर को प्रतारित करना, तथा मद के गर्व से अपने हाथ से दूसरों के हाथ को ताड़ित करना । ऐसे कार्य मुनि न स्वयं करते हैं, न कराते हैं और न अनुमति ही देते हैं ।

ते होंति णिक्वियारा थिमिदमदी पदिद्धिदा जहा उदधी ।

णियमेसु दद्विदिणो पारत्तविमग्गया समणा ॥ (861)

वे निर्विकार अनुद्वत मन वाले, समुद्र के समान गंभीर, नियम अनुष्ठानों में दृढ़ब्रती तथा परलोक के अन्वेषण में कुशल श्रमण होते हैं ।

क्योंकि वे साधु कायिक, वाचिक तथा मानसिक विकारों से रहित होते हैं, उनकी चेष्टाएँ तथा संकल्प उद्धतपने से रहित होती हैं । वे समुद्र के समान प्रतिष्ठित अगाध और क्षोभ रहित होते हैं । छह आवश्यक आदि क्रियाओं में दृढ़ रहते हैं अर्थात् जो नियम ग्रहण करते हैं उनको कभी भग्न नहीं करते हैं । परलोक के प्रति समस्त कार्यों को

करने में उद्यमशील होते हैं। इहलोक में निरतिचार आचार पालते हैं और परलोक के प्रति उनका सम्यक् प्रकार से अपने लिए तथा अन्य जनों के लिए निरुपण करते हैं।

जिणवयणभासिदत्थं पत्थं च हिंदं च धम्मसंजुत्तं ।

समओवयार जुत्तं पारत्तहिंदं कधं करेति ॥ (862)

जिनागम में भाषित है अर्थ जिसका, जो पथ्य है, हितकर है, धर्म से संयुक्त है, आगमकथित उपचार—विनय से युक्त, परलोक के हितरूप—ऐसी कथाएँ वे मुनि करते हैं।

वीतराग देव के आगम से जिसका विषय प्रतिपादित किया गया है अर्थात् जो रत्नत्रय का प्रतिपादन करने में समर्थ है ऐसी कथा को वे मुनि करते हैं। यद्यपि विषय—सुखों को त्याग कराने वाली होने से कायर पुरुषों को अनिष्ट है फिर भी जो विपाक के काल में गुणकारी है, पथ्य औषधि के समान वह कथा पथ्य कहलाती है। यद्यपि जीव के प्रदेशों में सन्ताप का कारण होने से यह हितरूप नहीं लगती है फिर भी समीचीन आचरण से सहित होने से हितकर ही है। धर्म से संयुक्त है तथा समयोपचार—आगमकथित विनय से सहित है तथा परलोक के लिए हितकर है। अर्थात् यद्यपि विनय में निष्ठ है तो भी श्रुतज्ञान के प्रतिकूल नहीं है अथवा तर्क, व्याकरण, सिद्धांत, चरित, पुराण आदि की प्रतिपादक ऐसी कथा मुनिजन करते हैं।

सत्ताधिय सप्तुरिसा मग्गं मण्णंति वीदरागाणं ।

अण्यारभावणाए भावेति य णिच्चमप्पाणं ॥ (863)

वे शक्तिशाली साधु वीतराग देवों के मार्ग को स्वीकार करते हैं और अनगार भावना के द्वारा नित्य ही आत्मा की भावना करते हैं।

जो सभी प्रकार के उपसर्गों के आने पर भी चलायमान नहीं होते हैं व सत्त्वाधिक पुरुष हैं, जो आगम कथित उपर्युक्त आचरण को धारण करने वाले हैं ऐसे दृढ़ चारित्रवान साधु मोहनीय और ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अंतराय इन कर्मों को नष्ट करने वाले ऐसे वीतरागदेव के सम्पर्कशील ज्ञान और चारित्र रूप मार्ग को मानने वाले होते हैं।

वे महामुनि इस कही जाने वाली अनगार भावना से निरंतर अपनी आत्मा को भाते रहते हैं।

भाषागत आचार—अनाचार विवेक—

संयमशील साधु सा साधवी इन वचन (भाषा) के आचारों को सुनकर, हृदयंगम करके, पूर्व मुनियों द्वारा अनाचारित भाषा—संबंधी अनाचारों को जाने (जैसे कि) जो क्रोध से वाणी का प्रयोग करते हैं, जो अभिमानपूर्वक वाणी का प्रयोग करते हैं, जो छल—कपट सहित भाषा बोलते हैं, अथवा जो लोभ से प्रेरित होकर वाणी का प्रयोग करते हैं, जानबूझकर कठोर बोलते हैं, या अनजाने में कठोर वचन कह देते हैं—ये सब भाषाएँ सावद्य (स—पाप) हैं, साधु के लिए वर्जनीय हैं। विवेक अपनाकर इस प्रकार साधु की सावद्य एवं अनाचरणीय भाषाओं का त्याग करें। वह साधु या साध्वी ध्रुव (भविष्यत्कालीन वृष्टि आदि के विषय में निश्चयात्मक) भाषा को जानकर उसका त्याग करे, अद्युव (अनिश्चयात्मक) भाषा को भी जानकर उसका त्याग करें। वह अशनादि चतुर्विध आहार लेकर ही आएगा, या आहार लिए बिना ही आएगा, वह आहार करके ही आएगा, या आहार किए बिना ही आ जाएगा, अथवा वह अवश्य आया था या नहीं आया था, वह आता है, अथवा नहीं आता है, वह अवश्य आएगा, अथवा नहीं आएगा; वह यहाँ भी आया था, अथवा वह यहाँ नहीं आया था; वह यहाँ अवश्य आता है, अथवा कभी नहीं आता, अथवा वह यहाँ अवश्य आएगा या कभी नहीं आएगा। इस प्रकार की एकांत निश्चयात्मक भाषा का प्रयोग साधु—साध्वी न करें। (आचारांगसूत्र ॥ पृ. 211)

घोडष वचन एवं संयत भाषा प्रयोग—

संयमी साधु या साध्वी विचारपूर्वक भाषा समिति से युक्त निश्चयभाषी एवं संयत होकर भाषा का प्रयोग करें।

जैसे कि—(ये सोलह प्रकार के वचन हैं)—(1) एकवचन, (2) द्विवचन, (3) बहुवचन, (4) स्त्रीलिंग—कथन, (5) पुलिंग—कथन, (6) नपुंसकलिंग—कथन, (7) अध्यात्म—कथन, (8) उपनीत (प्रशंसात्मक)

कथन, (9) अपनीत (निंदात्मक) कथन, (10) उपनीतउपनीत (प्रशंसापूर्वक निंदा वचन) कथन, (11) अपनीतोपनीत (निंदापूर्वक प्रशंसा) कथन, (12) अतीत वचन, (13) वर्तमान वचन, (14) अनागत वचन, (15) प्रत्यक्ष वचन और (16) परोक्ष वचन।

यदि उसे 'एकवचन' बोलना हो तो वह एकवचन ही बोले, यावत् परोक्षवचन पर्यन्त जिस किसी वचन को बोलना हो, तो उसी वचन का प्रयोग करें। जैसे—यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह वही है या अन्य कोई है, इस प्रकार जब विचारपूर्वक निश्चय हो जाए, तभी निश्चयभाषी हो तथा भाषा समिति से युक्त होकर संयत भाषा में बोले।

विवेचन—भाषा प्रयोग के समय सोलह वचनों का विवेक—प्रस्तुत सूत्र में 16 प्रकार के वचनों का उल्लेख करके उनके प्रयोग का विवेक बताया है, साधु को जिस किसी प्रकार का कथन करना हो, पहले उस विषय में तदनुरूप सम्यक् छानबीन कर ले कि मैं जिस वचन का वास्तव में प्रयोग करना चाहता हूँ, वह उस प्रकार का है या नहीं? यह निश्चित हो जाने के बाद ही भाषा—समिति का ध्यान रखता हुआ, संयम होकर स्पष्ट वचन कहे। इन 16 वचनों के प्रयोग में 4 बातों का विवेक बताया गया है—(1) भलीभाँति छानबीन करना, (2) स्पष्ट निश्चय करना, (3) भाषा समिति का ध्यान रखना, और (4) यतनापूर्वक स्पष्ट कहना।

इस सूत्र में ये 8 प्रकार के वचन निषिद्ध फलित होते हैं—(1) अस्पष्ट, (2) संदिग्ध, (3) केवल अनुमित, (4) केवल सुनी—सुनाई बात, (5) प्रत्यक्ष देखी, परन्तु छानबीन न की हुई, (6) स्पष्टत, किन्तु प्राणघातक, मर्मस्पर्शी, आघातजनक, (7) द्वयर्थक, (दोहरे अर्थ वाली), (8) निरपेक्ष व एकान्त कथन।

चार प्रकार की भाषा : विहित—अविहित

इन पूर्वोक्त भाषागत दोष—स्थानों का अतिक्रमण (त्याग) करके (भाषा का प्रयोग करना चाहिए)। साधु को भाषा के चार प्रकारों को

जान लेना चाहिए वे इस प्रकार हैं—(1) सत्या, (2) मृषा, (3) सत्यामृषा और जो न सत्या है, न असत्या है और न ही सत्यामृषा है यह (4) असत्यामृषा (व्यवहारभाषा) नाम का चौथा भषाजात है।

जो मैं यह कहता हूँ उसे—भूतकाल में जितने भी तीर्थकर भगवान् हो चुके हैं, वर्तमान में जो भी तीर्थकर भगवान् है और भविष्य में जो भी तीर्थकर भगवान् होंगे, उन सबने इन्हीं चार प्रकार की भाषाओं का प्रतिपादन किया है, प्रतिपादन करते हैं और प्रतिपादन करेंगे अथवा उन्होंने प्रेरण किया है, प्रेरण करते हैं और प्रेरण करेंगे। तथा यह भी उन्होंने प्रतिपादन किया है कि ये सब भाषाद्रव्य (भाषा के पुद्गल) अचित्त हैं, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले हैं, तथा चय—उपचय (वृद्धि—हास अथवा मिलने—बिछड़ने) वाले एवं विविध प्रकार के परिणमन धर्म वाले हैं।

संयमशील साधु—साध्वी को भाषा के संबंध में यह भी जान लेना चाहिए कि बोलने से पूर्व भाषा (भाषा वर्गण के पुद्गल) अभाषा होती है, बोलते (भाषण करते) समय भाषा, भाषा कहलाती है बोलने के पश्चात् (बोलने का समय बीत जाने पर) बोली हुई भाषा अभाषा हो जाती है।

जो भाषा सत्या है, जो भाषा मृषा है, जो भाषा सत्यामृषा हैं, अथवा जो भाषा असत्यामृषा है, इन चारों भाषाओं में से (जो मृषा—असत्या और मिश्रभाषा है, उसका व्यवहार साधु—साध्वी के लिए सर्वथा वर्जित है। केवल सत्या और असत्यामृषा—(व्यवहार भाषा का प्रयोग ही उसके लिए आचरणीय है)। उसमें भी यदि सत्य भाषा सावद्य, अनर्थदण्ड क्रिया युक्त, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, कठोर, कर्मी की आस्रवकारिणी तथा छेदनकारी, भेदनकारी, परितापकारिणी, उपद्रवकारिणी एवं प्राणियों का विघात करने वाली हो तो विचारशील साधु को मन से विचार करके ऐसी सत्यभाषा का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जो भाषा सूक्ष्म (कुशाग्र बुद्धि से पर्यालोचित होने पर) सत्य सिद्ध हो, तथा जो असत्यामृषा भाषा हो, साथ ही ऐसी दोनों भाषाएँ

असावद्य, अक्रिया यावत् जीवों के लिए अधातक हो तो संयमशील साधु मन से पहले पर्यालोचन करके इन्हीं दोनों भाषाओं का प्रयोग करें। (525)

साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमंत्रित (संबोधित) कर रहे हो, और आमंत्रित करने पर भी वह न सुने तो उसे इस प्रकार न कहे—“अरे होल (मूर्ख) रे गोले! या हे गोल! अय वृषल (शूद्र)! हेकु पक्ष (दास, या निन्द्यकुलीन) अरे घटदास (दासीपुत्र)! या ओ कुत्ते! ओ चोर! अरे गुप्तचर! अरे झूठे! ऐसे (पूर्वोक्त प्रकार के) ही तुम हो, ऐसे (पूर्वोक्त प्रकार के) ही तुम्हारे माता—पिता है।” विचारशील साधु इस प्रकार के सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले।

संयमशील साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमंत्रित कर रहे हो और आमंत्रित करने पर वह न सुने तो उसे इस प्रकार संबोधित करे—हे अमुक भाई! हे आयुष्मन्! हे आयुष्मानों! ओ श्रावकजी! हे उपासक! हे धार्मिक! या है धर्मप्रिय! इस प्रकार की निरवद्य यावत् भूतोपघातरहित भाषा विचारपूर्वक बोले।

साधु या साध्वी किसी महिला को बुला रही हो, बहुत आवाज देने पर भी वह न सुने तो उसे ऐसे नीच संबोधनों से संबोधित न करे—अरी होली (मूर्ख)! अरी गोली! अरी वृषली (शूद्र)! हे कुपक्षे (नीन्द्यजातीये)! अरी घटदासी। ऐ कुत्ती! अरे चोरटी! हे गुप्तचरी! अरे मायाविनी (धूर्ते)! अरी झूठी! ऐसी ही तू है और ऐसे ही तेरे माता—पिता हैं।” विचारशील साधु—साध्वी इस प्रकार के सावद्य, सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोलें।

साधु या साध्वी किसी महिला को आमंत्रित कर रहे हो, बहुत बुलाने पर भी वह न सुने तो उसे इस प्रकार संबोधित करे—आयुष्मती! बहन (भगिनी)! भवती (अजी, आप या मुखियाइन), भगवती! श्राविके! उपासिके! धार्मिके! धर्मप्रिये! इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा विचारपूर्वक बोले।

सत्याभाषा भी 12 दोषों से युक्त हो तो अभाषणीय-

सूत्र 524 में यह स्पष्ट कर दिया है कि ‘सत्य’ कही जाने वाली भाषा भी 12 दोषों से युक्त हो तो असत्य और अवाच्य हो जाती है। 12 दोष ये हैं—(1) सावद्य (पाप सहित), (2) सक्रिया (अनर्थदण्ड प्रवृत्तिरूप क्रिया से युक्त), (3) कर्कशा (क्लेशकारिणी, दर्पित अक्षर वाली), (4) निष्ठुरा (हक्का प्रधान, जकार—सकार युक्त, निर्दयतापूर्वक डॉट—डपट), (5) परुषा (कठोर, स्नेहरहित, मर्मोद्घाटनपरक वचन), (6) कटुका (कड़वी, चित्त में उद्वेग पैदा करने वाली), (7) आस्रवजनक, (8) छेदकारिणी (प्रीति छेद करने वाली), (9) भेदकारिणी (फूट डालने वाली, स्वजनों में भेद पैदा करने वाली), (10) परितापकरी, (11) उपद्रवकरी (तूफान, दंगे या उपद्रव करने वाली, भयभीत करने वाली), (12) भूतोपघातिनी (जिससे प्राणियों का घात हो)। वस्तुतः अहिंसात्मक वाणी ही भाव—शुद्धि का निमित्त बनती है।

(आचारांग सूत्र ॥ पृ. 219)

अध्याय-६

आध्यात्मिक परिप्रेक्षय में

ध्यानार्थ मौन एवं एकान्त साधना

(ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति)

अभवच्चितविक्षेपः एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।

अम्भस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥ (36)

(आध्यात्मिक मनोविज्ञान—इष्टोपदेश)

He in whose mind no disturbances occur and who is established in the knowledge of the self-such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

संयमी—योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकान्त स्थान में तथा अंतरंग राग, द्वेषादि रहित एकान्त—भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकान्त से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म—ध्यान नहीं हो पाता है।

समीक्षा—अनादिकाल से यह जीव स्व—स्वरूप से बहिरुख होकर इन्द्रियों एवं मन के माध्यम से स्व—शक्ति का विघटन, बिखराव, हास एवं क्षय कर रहा है। इसको ही बाह्य प्रवृत्ति, कुध्यान, अपध्यान, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, संसारवर्धिनी ध्यान कहते हैं। बाह्य से निवृत्ति होकर स्व में रमण रूप प्रक्रिया को ही सुध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, योग, लीनता, समाधि आदि से अभिहित करते हैं।

इच्छा निरोधः ध्यानः, इच्छा का सम्यक् रूप से निरोध करना ध्यान है। आचार्यश्री उमास्वामीजी ने मोक्षशास्त्र में कहा भी है—

एकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानं—चित्त को अन्य विकल्पों से हटाकर

एक ही विषय में लगाने को ध्यान कहते हैं। महर्षि पतंजलि ने भी ध्यान का लक्षण कहते हुए पतंजलि योग दर्शन के प्रथम चरण में ही कहा है—

“योगश्चित्तवृत्ति निरोधः”—चित्त की वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है—समत्व योग उच्यते (2/48) बुद्धि की समता या समत्व को ही योग (ध्यान) कहते हैं अथवा “योगः कर्मसु कौशलम्” (2/50) अर्थात् शुभाशुभ से मुक्त होकर कर्म करने की कुशलता को योग कहते हैं।

उपरोक्त सिद्धांत से यह सिद्ध होता है कि मन (बुद्धि, चित्त) की प्रवृत्ति अन्य—अन्य विषय से हटकर एक विषय में स्थिर भाव से केन्द्रीभूत हो जाना, लीन हो जाना, स्थिर हो जाना ही ध्यान है। अतएव ध्याता को ध्यान करने के लिए जो अनिवार्य तथा प्रथम एवं प्रधान नियम है उसका वर्णन आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधि तंत्र में निम्न प्रकार कहे हैं—

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते ।

यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते ॥ (95)

मनुष्यकी बुद्धि में जो बात दृढ़ता से बैठी जाती है उसको उसी विषय का श्रद्धान् या रूचि विश्वास हो जाता है और जहाँ रूचि पैदा हो जाती है, उसी विषय में सोते जागते तथा पागलपन या मूर्च्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है।

आत्मदृष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है। इस कारण सब दशा में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः अपने शरीर को ही अपने सर्वस्व (आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते—जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहा करता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्त्तते ।

यस्मान्निवर्त्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः ॥ (96)

समाधितंत्र

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रुचि नहीं होती और जिस विषय की श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन नहीं होता। तदनुसार अंतरात्मा की बुद्धि में अपनी आत्मा समायी रहती है। अतः शरीर में उसकी रुचि नहीं होती, इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, शरीर में उसकी रुचि नहीं होती। इसके विपरीत बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है। अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती। इसी कारण उसका मन आत्मा में लीन नहीं होता। यह जीव अनादिकाल से संसार शरीर भोग, उपभोग इन्द्रिय विषय के राग-रंग में रचा-पचा अनुभव किया सुना है। इसलिए वह विषय अनुभूत होने के कारण स्व-स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्वयमेव सहजरूप से विषयों की ओर हो जाती है। परन्तु इससे विपरीत स्व-स्वरूप का भान अनुभव नहीं होने के कारण स्व-स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्व में सरलता से नहीं होती है। इसलिए बाह्य द्रव्यों से चित्त को हटाकर स्व में स्थिर करने के लिए स्वयं का मनन चिंतन परिज्ञान सतत करना चाहिए। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि तंत्र में कहा है—

तदबृयात्तपरान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तपरो भवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्॥ (52)

आत्म श्रद्धालु को वह आध्यात्मिक चर्चा करनी चाहिए, वह आत्मा संबंधी ही बातें अन्य विद्वानों से पूछनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय की चाह रखनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय में सदा तत्पर, तैयार या उत्सुक रहना चाहिए, जिससे अपनी आत्मा का अज्ञान भाव छोड़कर ज्ञान भाव प्राप्त हो।

जैसे जल स्वभावतः तरल एवं निम्नगामी है, उसी प्रकार मन भी निम्नगामी है। मन की प्रवृत्ति विषय; कषाय में, राग-द्वेष में, राग-रंग में होना सहज-सरल है। जैसे जल को घन या ऊर्ध्वगामी बनना श्रम साध्य एवं समय साध्य है, उसी प्रकार मन को निर्मल एवं स्थिर करना श्रम साध्य एवं समय साध्य है। जब जल तरल रहता

है तब जल स्वाभाविक रूप से अधोगमन करता है परन्तु जब धन तुषार रूप परिणमन करता है तब जल अधोगमन नहीं करता है। उसी प्रकार मन, ज्ञान, वैराग्य, संयम, मनन—चिंतन, अनुप्रेक्षा अभ्यास के बल से दृढ़ धनीभूत हो जाता है, तब मन अधोगामी (विषय-कषयों की ओर प्रवृत्ति करना) चंचल (अस्थिर, क्षुभित, अशान्त, व्यथित) नहीं रहता है। मन को निर्मल, स्थिर, शान्त बनाना विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे किलष्ट (कठिन, दुरुह) कार्य है। मन चंचल होने का कारण राग-द्वेष है, एवं मन स्थिर होने का कारण राग-द्वेष की निवृत्ति है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।

स पश्यत्यात्मस्तत्त्वं तत्तत्वं नैतरो जनः॥ (35) समाधि तंत्र

जिस पुरुष का मनरूपी जल, राग-द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।

धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः॥ (36) समाधि तंत्र

मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रांति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग-द्वेष, मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए। राग-द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिए।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।

तदैव ज्ञान संस्कारै, स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते॥ (37) समाधि तंत्र

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगों में फँस जाता है वही मन आत्मा शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

आत्म-सौवित्रिवान् कालक्षण-१

निशामयति निशेषमिन्द्रजोलोपमं जगत् ।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते ॥ (39) इष्टोपदेश

The seeker of the self regards the whole world as a product of illusion and is moved by the desire to attain to self realization. If he ever becomes entangled in anything else he repents of it!

'योगी' शब्द अन्तः दीपक होने के कारण उसे सर्वत्र जोड़ना चाहिए। जो स्वआत्मा-संविति के रसिक/ध्याता है वह संपूर्ण चराचर बाह्य वस्तु को उपेक्षा रूप से देखता है। उसे हेय, उपादेय, ग्रहणीय एवं त्यजनीय का ज्ञान होने के कारण इन्द्रजालियाँ (जादूगर) के द्वारा प्रदर्शित सर्प व हार के समान सांसारिक वस्तु प्रतिभासित होती है। इसलिए वह संसार को इन्द्रजाल के समान अवास्तविक मानकर चिदानन्द स्वरूप स्वआत्म-संविति को चाहता है तथा स्वआत्मा के अतिरिक्त किसी वस्तु में स्वचित्त की प्रवृत्ति पूर्व संस्कारवश हो जाती है तब वह पश्चात्ताप करता है। वह दुःखी होकर सोचता है कि हाय मेरे से यह अनात्म कार्य कैसे हो गया।

आत्म-सौवित्रिवान् कालक्षण-२

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः ।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ॥ (40) इष्टोपदेश

The seeker after the self longs for solitude, preferring disaciation with men; if he has to speak to men for a purpose of his own, he puts it out of his mind as soon as it is said!

आत्म-साधक आत्म साधना के लिए स्वभाव से निर्जनगिरि, गुहा आदि में गुरु आदि के साथ रहने की अभिलाषा करता है और वहाँ भी रहकर जनमनोरंजन कार्य, चमत्कारपूर्ण मंत्रादि प्रयोग तथा अनावश्यक वार्तालाप से निवृत्त होने का प्रयत्न करता है। सामान्यजन स्वार्थ वशात् संसारी लाभ-अलाभ संबंधी प्रश्न करते हैं जिससे

साधक को साधना में बाधा पहुँचती है। इसलिए जनसंपर्क से रहित एकान्त में साधना करने के लिए कहा गया है। लौकिक चमत्कार ध्यान के लिए, आत्म साधना के लिए बाधक है। तत्त्वानुशासन में कहा भी है—

"गुरुपदेशमासाद्य, समभ्यस्यन्नानारतम् ।
धारवासौष्ठवाध्यानं प्रत्ययानपि पश्यति । ॥"

गुरु के उपदेशानुसार सतत आत्मस्वरूप का अभ्यास करने वाला ध्यानी धारणा, सौष्ठव आदि ध्यान के प्रतीकों का साक्षात् प्रतीक्षक करने लगता है अर्थात् जिस समय आत्मलीनता होती है उस समय ज्ञान की प्रकृष्टता के कारण उसे संसार को कोई भी पदार्थ अदृश्य प्रतीत नहीं होता है, वह अपने आत्मानंद में स्थिर रहता है।

समीक्षा-प्राथमिक साधक के मन की चंचलता के लिए बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी निमित्त बनते हैं। उन बाह्य निमित्तों से निवृत्त होने पर तज्जन्य चंचलता भी दूर होती है। कहा भी है—

विकीर्यते मनः सद्यः स्थानदोषेण देहिनाम् ।

तदेव स्वस्थतां धर्ते स्थानमासाद्य बन्धुकरम् ॥ (22)

स्थान के दोष से प्राणियों का मन शीघ्र ही विकार को प्राप्त होता है तथा वही मन रमणीय स्थान को पाकर स्वस्थता को धारण करता है एवं राग-द्वेष से रहित होकर आत्मस्वरूप में अवस्थित होता है।

आत्मसौवित्रिवान् कालक्षण-३

बुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति ।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपिन पश्यति ॥ (41) इष्टोपदेश

He who has firmly established himself in the knowledge of the self, such a one does not speak while speaking, does not move while moving and does not see while seeing!

स्व-स्वआवश्यक करणीय भोजनादि यत्किंचित् श्रावक से

साधु प्राप्त करता है उससे भी वह खेद को प्राप्त होता है। आवश्यकतानुसार श्रावक को कुछ कहकर मुनि उसे तत्क्षण भूल जाता है। श्रावक मुनि को कुछ पूछने पर कुछ नहीं है ऐसे कहकर उससे भी विरक्त हो जाते हैं। यथा—जिस योगी ने स्वस्वरूप में स्वयं के चित्त को स्थिर कर लिया है ऐसा योगी संस्कारवशात् दूसरों के अनुरोध से धर्मादि संबंधी कुछ उपदेश करते हैं तथापि उपदेश के बाद पुनः वे स्वस्वरूप में आ जाते हैं क्योंकि उपदेश करना उनकी मुख्यता नहीं है। समाधितंत्र में ग्रंथकर्ता ने कहा भी है—

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम् ।

कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाग्कायाभ्यामतत्परः ॥ (50)

तथा भोजनार्थव्रजन्नपि न व्रजत्यपि तथा ।

सिद्धप्रतिमादिकावलोकयन्नपि नावलोकयत्येव तुरेवार्थः ॥

आत्माकांक्षी योगियों को आत्मध्यान से भिन्न किसी भी कार्य को चिरकाल तक धारण नहीं करना चाहिए। किसी कारणवशात् वचन और काय से कार्य करना पड़े तो उसमें आसक्त न होवे।

इसी प्रकार साधु शरीर धारण करने के लिए भोजन करते हैं और उसके लिए गमन करने पर भी उसमें आसक्त न होने के कारण उनका गमन, गमन के लिए नहीं होता है। इसी प्रकार सिद्ध प्रतिमा आदि के दर्शन करते हैं तथापि उनका दर्शन अवलोकन नहीं है।

समीक्षा—यह प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक सिद्ध सिद्धांत है कि जब किसी व्यक्ति का चित्त एक विषय में स्थिर हो जाता है तब उसके आसपास जो घटनाएँ घटती हैं उसे वह न देख पाता है, न सुन पाता है भले उसकी आँखें, कान खुले रहते हैं। सामान्य व्यक्तियों को जो ज्ञान होता है उसके लिए लक्ष्य, उपयोग एवं उपकरण चाहिए। जब कोई एक व्यक्ति एक वस्तु को देखता है तब वह अपनी लक्ष्य को उपकरण के माध्यम से उस वस्तु में अपना उपयोग लगाता है। उस समय उपयोग क्षेत्र से बाह्य क्षेत्र में जो वस्तु है, उसे वह नहीं देख सकता है। कदाचित् कोई वस्तु उसकी दृष्टि क्षेत्र के मध्य में आ जावे

तो भी अच्छा पूर्ण ज्ञान उसको नहीं होगा। इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जान लेना चाहिए। अर्थात् जो स्वआत्मा में रूचि लेता है, लीन होता है उसे अन्य वस्तु का ज्ञान, भान नहीं होता है।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः ।

जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ (47) इष्टोपदेश

देहादि से निवृत्त होकर जो स्वआत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी को स्वआत्मा के ध्यान से एक अनिर्वचनीय परम आनंद उत्पन्न होता है जो आनंद अन्य में असंभव है।

समीक्षा—प्रत्येक आत्मा अनन्त अक्षय—ज्ञानघन या परमानन्द स्वरूप है परन्तु जिस प्रकार घने बादल के कारण सूर्य रश्मि प्रकट नहीं होती है उसी प्रकार घने कर्म के कारण राग—द्वेष—संकल्प—विकल्प के कारण वह स्वभाव लुप्त प्रायः है। तथापि जिस प्रकार बादल हटने पर, घटने पर सूर्य रश्मि प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार साधना के बल पर कर्मादि क्षीण होने पर, विलीन होने पर स्व में निहित आनंद प्रकट हो जाता है। यह आनंद जीव का स्वाभाविक गुण या आनंद है। इस आनंद को प्राप्त योगी के लिए संसार के समस्त सुख, वैभव तुच्छ प्रायः प्रतिभासित होते हैं, दुःखरूप दिखाई देते हैं। इसे ही सच्चिदानन्द, आत्मानंद, परमानंद, अनंत सुख, अलौकिक आनंद, इन्द्रियातीत आनंद, ब्रह्मानंद आदि नाम से अभिहित किया जाता है। इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त धार्मिक विधियाँ की जाती हैं। बड़े—बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव का त्यागकर सर्वसन्यास लेकर ध्यान करते हैं। हर संप्रदाय के महापुरुष साधु—संत इस आनंद को प्राप्त करने के लिए साधना तथा ध्यानरत रहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार महर्षि कपिल, पतंजलि यहाँ तक कि हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त, कार्यकलाप गतिविधियों को छोड़कर ध्यानलीन रहते हैं। जैनधर्म के अनुसार शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ जो स्वयं गृहस्थ अवस्था में चक्रवर्ती,

कामदेव थे तथा जिनके दो कल्याणक हो गए थे और तीन ज्ञान के भी धारी थे वे भी इस परम् आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्यागकर, साधु बनकर आत्मध्यान में लीन हो गए।

गीता में महामानव नारायण श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिए ध्यान का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार विवेचन किया है—

यत्रो परमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्चन्मात्मानि तुष्ट्यति ॥
सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यामतीन्द्रियम् ।
वेति यत्र न चेवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचारल्यते ॥
तं विद्याददुःखसंयोगं वियोगं योग संज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

योग के सेवन से अंकुश में आया हुआ मन जहाँ शांति पाता है, आत्मा से ही आत्मा को पहचानकर आत्मा में जहाँ मन संतोष पाता है और इन्द्रियों से परे और बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अनंत सुख का जहाँ अनुभव होता है, जहाँ रहकर मनुष्य मूल वस्तु से चलायमान नहीं होता और जिसे पाने पर दूसरे किसी लाभ को वह उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थिर हुआ महादुःख से भी डगमगाता नहीं, उस दुःख के प्रसंग से रहित स्थिति का नाम योग की स्थिति समझना चाहिए। यह योग ज्ञान बिना दृढ़तापूर्वक साधने योग्य है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तं रजसं ब्रह्मयूतमकल्पषम् ॥

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युजज्ज्वेव सदात्मानं योगी विगत कल्पषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमनन्तं सुखमश्नुते ॥

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पापरहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्तिरूप अनंत सुख का अनुभव करता है। आनन्दो निर्दत्युद्धं कर्मन्धनमनारतम् ।

न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्यचेतनः ॥ (48) इष्टोपदेश

Self produced happiness is constant by burning up the Karmic fuel in large quantities, while the Yogi, indifferent to the external pain, is no affected by it in the least!

वह आत्मानंद प्रवाह रूप से आने वाली प्रचुर कर्म सन्तति को निर्दहन कर देता है जिस प्रकार की अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। ऐसा आनंद से संपन्न योगी परीषह, उपसर्ग क्लेशादि बाह्य दुःख को अनुभव नहीं करता है। इसलिए वह उससे संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है, खेद को प्राप्त नहीं होता है।

समीक्षा—जब आत्मा स्व-आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, रम जाता है, लीन हो जाता है तब स्वयं में अनंत अक्षय आनंद का अनुभव करता है। अरिहंत, सिद्ध भगवान् पूर्णतः स्व-आत्मा में स्थिर होने के कारण वे संपूर्ण दुःखों से रहित अक्षय अनंत आत्मोत्थ सुख का अनुभव करते हैं। सिद्ध भगवान् समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म अथवा घातिया—अघातिया कर्म नष्ट करके स्वयं में पूर्ण निष्पन्द रूप से लीन होने के कारण, अनंत सुख का अनुभव करते हैं तथा अरिहंत भगवान् घातिया—कर्म को नष्ट करने के कारण अनंत सुख को अनुभव करते हैं। घातिया कर्म के अभाव से मोह, राग, द्वेष, तृष्णादि क्षय हो जाते हैं तथा अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान, दर्शन प्राप्त कर लेते हैं जिसके कारण वे शरीर संबंधी या पुण्य—पाप संबंधी या समवशरण संबंधी किसी भी प्रकार के सुख—दुःख का वेदन नहीं करते हैं। जयधवला में वीरसेन स्वामी ने केवली के शारीरिक सुख—दुःख, प्यास आदि नहीं होने का अत्यंत सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन निम्न प्रकार से किया है—

50. चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं, इसलिए वर्तमान जिनके देवत्व का अभाव नहीं हो सकता है, क्योंकि चार अघातिया कर्म देवत्व

के घात करने में असमर्थ हैं, इसलिए उनके रहने पर भी देवत्व का विनाश नहीं हो सकता है।

शंका—चार अधातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—चार अधातिया कर्म यदि देवत्व के विरोधी होते तो उनकी अधाति संज्ञा नहीं बन सकती थी, इससे प्रतीत होता है कि चार अधातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है।

51. नामकर्म और गोत्रकर्म तो अवगुण के कारण हैं नहीं, क्योंकि जिन क्षीण मोह हैं, इसलिए उनमें नाम और गोत्र के निमित्त से राग और द्वेष संभव नहीं हो सकते हैं। आयुकर्म भी अवगुण का कारण नहीं है। क्योंकि क्षीण मोह जिन भगवान् में वर्तमान क्षेत्र के निमित्त से राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होता है और आगे होने वाले लोक शिखर पर गमन के प्रति सिद्ध के समान उनके उत्कण्ठा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि केवली जिन के विद्यमान आयुकर्म अवगुणों का कारण नहीं है तथा वेदनीय कर्म भी अवगुणों का कारण नहीं है, क्योंकि यद्यपि केवली जिन के वेदनीय कर्म का उदय पाया जाता है, फिर भी वह असहाय होने से अवगुण उत्पन्न नहीं कर सकता है। चार धातिया कर्मों की सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख को उत्पन्न कर सकता है, परन्तु केवली जिन के चार धातिया कर्म नहीं हैं, इसीलिए जल और मिट्टी के बिना जिस प्रकार बीज अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार वेदनीय भी धाति चतुष्क के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है।

शंका—दुःख को उत्पन्न करने वाले वेदनीय कर्म के दुःख के उत्पन्न कराने में धातिचतुष्क सहायक है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—यदि चार धातियाँ कर्मों की सहायता के बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देने में समर्थ हो तो केवली जिन के रत्नत्रय की निर्बाध प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। इससे प्रतीत होता है कि धाति चतुष्क की सहायता से ही वेदनीय अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

धातिकर्म के नष्ट हो जाने पर भी वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है यदि ऐसा माना जाए तो केवली जिन को भूख और प्यास की बाधा होनी चाहिए परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि भूख और प्यास में भोजन विषयक और जल विषयक तृष्णा के होने पर केवली भगवान् को मोहपने की आपत्ति प्राप्त होती है।

इससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि आत्मा का स्वशुद्ध स्वरूप अनंत आनंद स्वरूप है। अतएव जो जीव जितने—जितने अंश में उस स्वरूप को प्राप्त करता जाता है वह उतने—उतने अंश में बाह्य दुःखों से निवृत्त होता जाता है और आत्मानंद को अनुभव करता जाता है। इसलिए ध्यान में स्थित 8वें गुणस्थान से लेकर आगे के मुनियों को बाह्य दुःख का वेदन नहीं होता है। सामान्य व्यक्तियों को भी अनुभव में आता है कि यदि उनका मन किसी काम में लीन है तो अन्य विषय उन्हें अनुभव में नहीं आता है। अचेतन—अवस्था में भी शरीर के दुःख अनुभव में नहीं आता है। एन्थेसिया (अचेतन करने की औषधि) का प्रयोग करके शल्य—चिकित्सा की जाती है, उस समय हाथ, पैर यहाँ तक कि हृदय को काटने पर भी उसकी पीड़ा अनुभव नहीं होती है।

मुमुक्षुकाकर्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत् ।

तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षिभिः ॥ (49) इष्टोपदेश

That excellent and supreme light of the self is the destroyer of ignorance, the seekers after salution should always engage themselves in questioning others about it, in affectionately deeking it and in realizing if by actual experience!

मुमुक्षु को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्मप्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम चित्तज्योति, विद्धों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए। आचार्य गुरुदेव शिष्य के प्रति परम् करुणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्म—तत्त्व

के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिए व उसमें स्थिर करने के लिए आत्मतत्त्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया है।

सभीक्षा—संसारी जीव अनादि अनंत काल से स्व—आत्म स्वरूप को भूलकर, उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिरविस्मरणीय, उपेक्षित स्व—आत्म द्रव्य और आत्म—स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान्, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरुह है, किलष्टसाध्य है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।

एयत्तसुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स॥ (4) समयसार पृ. 1

सुदा अनंत बार सुनी गई है, परिचिदा अनंत बार परिचय में आई है, अणुभूदा अनंत बार अनुभव में भी आई है। सव्वस्स वि सब ही संसारी जीवों के काम, भोग बंध कहा काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घाण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिए गए है उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नरनारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत—परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। एयत्तस्स परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि, उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है, उस एकत्व का अवलंभो उपलभ्मसंप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना णवरि वह केवल ण सुलभो सुलभ नहीं है विहत्तस्स कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया, न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्यश्री ने कहा कि—हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत् मोक्ष स्वरूप स्व—आत्मतत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो। ग्रथाकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है—

तदब्रूयात्तपरान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तपरोभवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्॥

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्मज्योति का स्वरूप कहे, उसी के संबंध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे। जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकारान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है—

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवहिना।

प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव॥ (9)

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञान रूपी अमृतपान किस प्रकार करुँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति—विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्वप्रकाश रूप हूँ, निश्चयरूपी अग्नि से अज्ञानरूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग—द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानंद को प्राप्त हो।

यत्रविश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।

आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर॥ (10)

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा? तब गुरु समाधान करते हैं कि शिष्य! जिस प्रकार रज्जू (रस्सी) के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वज्ञ में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश कर सुखी हो। फिर

शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूप जगत् अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! दुःखरूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनंद स्वरूप हो जाता है, मनुष्यलोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम् उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है।

मौन का आध्यात्मिक रहस्य एवं लाभ

मत्तश्च्युत्वेन्द्रिद्वारैः पतितो विषयेष्वहम् ।

तान्प्रपद्याहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः । (16)

समाधितंत्र पृ.28

अंतरात्मा विचार करता है कि मैं। पहले अनादि काल से शरीर को ही आत्मा समझता रहा। स्पर्शन इन्द्रिय ने मुझे काम—क्रीड़ा (मैथुन सेवन में) लगा दिया। रसना इन्द्रियने मुझे स्वादिष्ट भोजन तथा विकथा करने का लोलुपी बना दिया, घाण, इन्द्रिय मुझे सुर्गंधित वस्तुओं—गुलाब, चंपा, चमेली के फूल, इत्र, चंदन, कपूर आदि के सूँघने में फँसाये रही। नेत्र इन्द्रिय ने मुझे मनोहर सुंदर रंगीले पदार्थों के देखने भालने में लगाया और कर्ण इन्द्रिय ने रसीले, सुरीले गाने के शब्द सुनने में उलझा दिया मैं इन पाँचों इन्द्रियों के विषय भोगों में ऐसा लगा रहा कि अपने आत्मा के स्वरूप को कभी समझ नहीं पाया।

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाच त्यजेदन्तरशेषतः ।

एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः । (17)

संसारी जीव या तो विविध प्रकार की सांसारिक बातचीत करने में लगा रहता है अथवा बाहर का बोलना—चालना बंद करके अपने भीतर मन के द्वारा अनेक तरह की बातों को किया करता है, विविध प्रकार के विचारों की उधेड़बुन में लगा रहता है। दिनभर में तो वह ऐसा करता ही है, परन्तु रात को सोते समय स्वप्न में भी अंतरंग—बहिरंग वचनालाप में लगा रहता है, क्षणभर भी अपने आत्मा के विषय में कुछ

चर्चा नहीं करता। इसलिए अपने आत्मा में विराजमान परमात्मा का स्वरूप उसे कभी नहीं दिखाई देता। उस परमात्मा के अनुपम सुंदर रूप देखने का सरल उपाय यही है कि बाहरी चर्चा को छोड़कर मौन भाव से अपने मन के वचनालाप—सांसारिक विचारधारा को रोक दिया जावे, इस तरह का वचन निरोध होने पर परमात्मा शुद्ध आत्मस्वरूप का दर्शन होता है।

जैसे अंधकार में दीपक के प्रकाश से पदार्थों को देखा जाता है, इसी तरह आत्मा का अवलोकन करने के लिए योग (अंतरंग—बहिरंग वचन का रोकना) आवश्यक है।

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा ।

जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम् । (18) समाधि तंत्र 31

अंतरात्मा विचार करता है कि संसार में अपना तथा अन्य जीवों का या तो जड़ शरीर दिखाई देता है या अन्य जड़ पदार्थ दिखाई देते हैं परन्तु वे सब ज्ञानहीन अचेतन हैं, वे मेरी आत्म—वाणी कुछ समझते नहीं हैं तो उनके साथ वार्तालाप करने से क्या लाभ? यानि कुछ लाभ नहीं और जो आत्मा जानती है उसका रूप दिखाई नहीं देता, वह ज्ञानमय चेतना है, परन्तु अमूर्तिक है, ऐसी दशा में मैं किससे बातचीत करूँ।

यानि—बातचीत तो उसी के साथ की जावे जो दिखाई दे और मेरी बातचीत को समझ सके, संसार के दिखाई देने वाले जड़ पदार्थ कुछ समझते नहीं और जानने वाला आत्मा दिखाई नहीं देता इस कारण मुझे अपना बहिरंग (बाहर) का वार्तालाप बंद रखना चाहिए।

वार्तालाप : उन्मत्तों की चेष्टा-

यत्परे: प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्तप्रतिपादये ।

उन्मत्तवेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः । (19)

अंतरात्मा विचार करता है कि मैं तथा अन्य संसारी आत्मा अनंत ज्ञान शक्तिधारी हैं, तब मैं अपने आप को किसी का शिष्य समझूँ अथवा अपने आपको दूसरों को पढ़ाने वाला गुरु मानूँ यह सब

पागलपन की बात है। मैं एक शुद्ध निर्विकल्प आत्म द्रव्य हूँ जिसमें
न गुरु (प्रतिपादक) का विकल्प (भेदभाव) है, न मुझमें शिष्य का
विकल्प है। ये गुरु—शिष्य, प्रतिपाद्य—प्रतिपादक के विकल्प शरीर के
आश्रित हैं, अशुद्ध द्रव्य में हो सकते हैं।

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुञ्चति ।

जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्यहम् । (20)

अंतरात्मा अपने शुद्ध चैतन्यरूप पूर्णज्ञायक आत्मा का अनुभव
करता है कि मैं शरीर, पुत्र, स्त्री, माता—पिता आदि परिवार, मित्र,
धन—धान्य आदि अन्य चेतन, अचेतन पदार्थों को तथा राग—द्वेष,
क्रोध—मान, अज्ञान, मिथ्यात्व आदि विकार भावों को कभी ग्रहण नहीं
करता, ये सब मेरे लिए अग्राह्य हैं। न मैं कभी अपने शुद्ध चैतन्य,
ज्ञायक, निर्विकल्प स्वभाव को त्यागता हूँ। मैं समस्त पदार्थों का पूर्ण
ज्ञाता हूँ।

उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः स्थाणौ यद्व द्विचेष्टितम् ।

तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्मविभ्रमात् । (21)

जैसे अंधेरे में या दूर से देखने पर अपनी दृष्टि (निगाह) की
दुर्बलता के कारण मनुष्य के आकार—प्रकार का पेड़ का सूखा ढूँढ
देखकर कोई मनुष्य उसे खड़ा हुआ मनुष्य समझ लेता है और उस
भ्रम से उसे वह चोर—डाकू समझकर डरता है या अपना खड़ा हुआ
मित्र उपकारी समझकर प्रसन्न होता है। उसी प्रकार मैं पहले अपने
आत्मा की मिथ्या श्रद्धा से शरीर को ही आत्मा समझता था, राग—द्वेष
आदि विकार भावों को अपना समझता था, शरीर के संबंध से पुत्र,
स्त्री, माता—पिता आदि को अपना मानता था, धन, मकान आदि के
संबंध से अपने आपको धनवान या निर्धन सुखी—दुःखी आदि समझता
था। वह मेरा सब झूठा भ्रम था। ऐसा आत्मदर्शी विचार करता है।

यथासौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे ।

तथाचेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः । (22)

स्थाणु—सुखे पेड़ के ढूँढ में अंधेरे के कारण या अपने नेत्रों की

दृष्टि की कमजोरी से जो मनुष्य के खड़े होने का भ्रम हुआ था वह
भ्रम जब मनुष्य का दूर हो जाता है तब न तो वह उस ढूँढ को अपना
हितकारी समझ करके उससे प्रेम—राग करता है, न अपना अहितकारी
समझ करके फिर उससे घृणा द्वेष करता है या डरता है। इसी तरह
सम्यग्दर्शन हो जाने पर सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा का शरीर, परिवार, धन,
मकान आदि अन्य पदार्थों के विषय में भ्रम दूर हो जाता है, तब वह
न तो शरीर को आत्मा समझता है, न परिवार आदि को, धन, मकान
आदि को अपना मानता है, न किसी को अपना मित्र या शत्रु समझता
है। इसलिए वह किसी भी अन्य पदार्थ से न प्रेम करता है न द्वेष
करता है।

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना ।

यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः । (30)

इन्द्रियाँ प्रतिक्षण अपने किसी न किसी बाहरी विषयों में आत्मा
की प्रवृत्ति को लगाये रहती हैं, यदि कभी बाहरी दिखने वाली पाँचों
इन्द्रियों की प्रवृत्ति नहीं होती, तो मन में अनेक तरह के सांसारिक
विचार उठते रहते हैं, इस तरह आत्मा क्षणभर भी अपने चिदानन्द
चैतन्य स्वरूप को नहीं देख पाता इसीलिए उसे अपना आनंद अनुभव
में नहीं आता। यदि आत्मा क्षणभर के लिए भी अपनी इन्द्रियों और
मन की प्रवृत्ति को रोककर अपने आत्मा के स्वरूप चिंतन में लगा दे
उसको अपने परम शुद्ध आत्मा का अनुपम आनंदमय अनुभव हो
जावें।

आत्म दर्शन के उपाय-

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम् ।

स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत्तत्त्वं नेतरो जनः । (35)

जल भी दर्पण की तरह परछाई झलकाने वाला पदार्थ है इसी
कारण आकाश में उड़ते हुए पक्षी, सूर्य, चन्द्र तथा आसपास के
मकान, वृक्ष आदि जल में साफ दिखाई देते हैं, पानी के तालाब के
किनारे खड़ा हुआ मनुष्य भी अपना सारा शरीर तालाब के पानी में

देख सकता है परन्तु वायु के वेग से जिस समय तालाब में लहरें उठ रही हो तब कोई भी किनारे का पदार्थ पानी में ठीक दिखाई नहीं देता इसी बात को ग्रंथकार मन को जल का रूपक देकर बतलाते हैं कि जब मनरूपी जल में राग—द्वेष, काम—क्रोध, मान—माया, लोभ आदि दुर्भावों की लहरें न उठ रही हो, मन स्वच्छ अकम्प हो तब ही उसमें अपने आत्मा का निर्मल स्वरूप दिखाई देता है। जब मन में दुर्भावों की लहरें उठ रही हो तब उसमें आत्मा का स्वरूप दिखाई नहीं देता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।

धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः। (36)

मन में भ्रम तथा क्षोभ यानि व्याकुलता तब तक अवश्य होती रहती है जब तक मन में मिथ्यात्व (मिथ्याश्रद्धान) के कारण अपने—आत्मा का, अन्य तत्वों का, देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान न हो, शरीर में आत्मा का श्रद्धान हो तथा तीव्र राग—द्वेष आदि विकार भावों के कारण व्याकुलता मौजूद हो। उसी भ्रम और क्षोभ से मन में आत्मा के स्वरूप का अनुभव नहीं होता। इस कारण आत्मा का अनुभव करने के लिए मन में राग—द्वेष मोह का विक्षेप नहीं लाना चाहिए।

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।

तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते। (37)

शरीर को ही आत्मा समझ लेने का नाम ‘अज्ञान’ है। उस ज्ञान का अभ्यास (आदत) होते रहने से मन में ऐसे संस्कार जम जाते हैं जिससे जीव की बुद्धि अपने आत्मा को नहीं समझ पाती। इस कारण मन अपने आत्मा के अधीन नहीं रह पाता। वह शरीर के पोषण में, इन्द्रियों के प्रिय विषयभोगों में लगा रहता है। उसी मन पर शरीर और आत्मा को भिन्न—भिन्न समझने वाले भेद—विज्ञान के संस्कार जब जम जाते हैं तब मन अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने में लग जाता है।

यदामोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।

तत्रैव ज्ञानोत्पत्त्वज्ञानमात्मानं ज्ञान्यतः क्षणात्। (39)

से दूर रहकर तपस्या करनी चाहिए। यदि कभी किसी मुनि को अपने शरीर के मोह के कारण अथवा अपने शिष्य या गुरु के वियोग के कारण या किसी दूसरे व्यक्ति के दुर्वचन आदि के कारण मन में राग—भाव या द्वेष—भाव उत्पन्न हो जावे तो उस तपस्वी मुनि को उसी समय अपने दुर्भावों से रहित अपने शुद्ध आत्मा के चिंतन में लग जाना चाहिए। आत्मस्वरूप की भावना करते ही राग—द्वेष तत्काल ही शांत हो जाते हैं।

आत्महित में मन—वचन—काय का नियोजन

युञ्जीत मनसात्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।

मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम्। (48)

आत्मा को मन के साथ मिला देने पर आत्म—स्वरूप का चिन्तावन होता है, इस कारण आत्म तत्व का ध्यान करने के लिए मन को आत्मा के साथ मिलाना यानि—मन का उपयोग आत्मा की ओर लगाना आवश्यक और उचित है तथा वचन और शरीर की क्रिया से आत्महित का कार्य नहीं होता है। यदि वचन और शरीर से कोई व्यवहार किया भी जावे तो उसे मन लगाकर न करे, बेमना होकर—उदासीन भाव से करें। ऐसा करने से कर्म का बंधन ढीला पड़ता है।

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।

कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः। (50) समाधि तंत्र

मन लगाकर यदि आत्म—चिंतन, आत्म—मनन, आत्मा की भावना, सामायिक, स्वाध्याय आदि कार्य किया जाता है तो आत्मा का बल बढ़ता है, संसार से तथा परिवार से मोह कम होता है। इससे कर्मों का आना कम (संवर) होता है, तथा कर्मों की निर्जरा होती है, आत्मा को आनंद मिलता है। यदि मन को अपने शरीर—पोषण, इन्द्रियों के विषय भागों तथा अपने परिवार या संसार के अन्य पदार्थों

के विषय में लगा दिया जाये तो राग-द्वेष, क्रोध, मान, लोभ, कामवासना आदि दुर्भाव पैदा होते हैं, आकुलता बढ़ती है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को अपने आत्मा की ओर मन लगाना चाहिए। संसार, शरीर, परिवार का यदि कोई काम करना भी पड़े तो उसे वचन से या शरीर से करे, उसमें मन को न लगावे यानि उसको उदासीनता से करें।

बोलने-पूछने-करने योग्य-

तद्बूयात्तपरान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तपरो भवेत् ।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं ब्रजेत् । (53)

जगत् में आत्मा को सुख, संतोष देने वाला अपने आत्मा-स्वरूप का बतलाने वाला आध्यात्मिक ज्ञान है। अन्य सांसारिक ज्ञान से आत्मा को सुख संतोष नहीं मिला करता। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को आत्म-अज्ञान दूर करके आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए आध्यात्मिक शास्त्रों का पढ़ना, आध्यात्मिक चर्चा करना, अपने से अधिक विद्वानों से आत्मा की विशेष जानकारी प्राप्त करना तथा आत्म-मनन करते रहना चाहिए।

मूढँ से बोलना अयोग्य-

अज्ञापि तं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा ।

मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः । (58)

अंतरात्मा विचार करता है कि आत्मा की मिथ्या श्रद्धा-मिथ्यात्म तथा अज्ञान का ऐसा बुरा प्रभाव है कि बहिरात्मा जीवों को शरीरादि अन्य पदार्थों से भिन्न आत्मा का शुद्ध स्वरूप बिना समझाये तो मालूम होता ही नहीं परन्तु यदि उनको समझा जाय तो भी उनकी समझ में नहीं आता चिरकाल के मिथ्या संस्कार से वे शरीर को ही आत्मा समझे हुए हैं।

यद्बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः ।

ग्राह्यं तपदि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधय । (59)

अंतरात्मा कहता है कि जैसे कोई मनुष्य मिश्री को खाकर

उसके मिठास का स्वयं अनुभव तो कर सकता है परन्तु मिश्री के उस मिठास के अनुभव को शब्दों द्वारा दूसरों को बतला नहीं सकता। इसी प्रकार मैं जो अपने चिदानंद आत्मा का अनुपम रस दूसरों को समझाना चाहूँ तो शब्दों द्वारा समझा नहीं सकता। जो कुछ शब्दों द्वारा आत्मस्वरूप कहता हूँ वह वास्तव में वैसा है नहीं। यानि—आत्मा का स्वरूप अनुभव करने की चीज है, कहने की नहीं है। स्वयं अनुभव करने पर ही आत्मा का स्वरूप मालूम हो सकता है, किसी अन्य व्यक्ति के कहने पर मालूम नहीं हो सकता।

बहिस्तुष्टिं मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे ।

तुष्ट्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः । (60)

जैसे मकान के बाहर प्रकाश हो और भीतर अंधकार हो तो मनुष्य को बाहर की वस्तुएँ दिखाई देती हैं, मकान के भीतर कुछ नहीं दिखाई देता। इसी तरह जिसका आत्मा अज्ञान और मिथ्यात्म के अंधकार में ढका हुआ है उस मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को अपने भीतर विराजमान चिदानंद आत्मा दिखाई नहीं देता उसे तो बाहरी वस्तुएँ—शरीर, कुटुम्ब, शत्रु—मित्र, विषय—भोग आदि ही दिखाई देते हैं, अतः वह उनमें राग-द्वेष आदि करता हुआ संतुष्ट रहता है। तथा जिसके हृदय में भीतर विवेक ज्ञान की ज्योति प्रकाशमान है उस सम्यग्दृष्टि को अपना आत्मा दिखाई देता है, उसका संतोष अपने आत्मा के अनुभव में होता है बाहरी वस्तुओं में उसे रुचि नहीं होती।

कथन एवं मौन से हानि-लाभ-

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः ।

भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् । (72)

मुनि को मनुष्यों के संसर्ग से दूर रहकर सदा आत्म-ध्यान, आत्म-चिंतन या आत्म-मनन करना चाहिए। क्योंकि मनुष्य आकर के अनेक प्रकार की सांसारिक बातें किया करते हैं, उन बातों को सुनकर मुनि के हृदय में राग-द्वेष भावों का क्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है। जब हृदय में किसी तरह का क्षोभ पैदा हो जावे

तब मुनि अपने शुद्ध आत्मा का चिन्तवन कैसे कर सकता है। इस कारण मुनि को जहाँ तक हो सके अन्य मनुष्यों के संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागत्यात्मगोचरे ।

जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे । (78)

मनुष्यज व अपने शरीर के पोषण में, परिवार के संरक्षण में, तथा धन—उपार्जन विकथा आदि व्यवहार कार्यों में मन लगाकर जुटा रहता है, उस समय वह अपने आत्म अनुभव के कार्य से सोया हुआ रहता है, यानि आत्म—चिंतन, आत्म—मनन, आत्म—ध्यान आदि कोई भी आत्मा का कार्य नहीं करता और जब आत्म—ध्यान में लगता है तो संसार के कार्यों से उसे अलग होना पड़ता है। इस तरह आत्म—ध्यानी मुनि आत्मा के विषय में जागते रहते हैं, संसार के व्यवहार में सोये रहते हैं तथा संसारी जीव अपने सांसारिक व्यवहार में जागते रहते हैं, वे आत्मा के विषय में सोते रहते हैं।

अंतरंग मौन का महत्व—

यदन्तर्जल्पसंपृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ।

मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्ट मिष्ट परं पदम् । (85) समाधि तंत्र

बाहर से बातचीत बंद करके यानि—मौन रहकर भी जब तक मन के भीतर अनेक प्रकार की वार्तालाप—बातचीत चलती रहती है, तब तक आत्मा में अनेक तरह के विकल्प बनते तथा बिगड़ते रहते हैं। उन विकल्पों से संसार—भ्रमण कराने वाला, दुःखदायक कर्मबंध होता रहता है। जब आत्मा का वह अंतर्जल्प यानि—भीतरी वचन—व्यापार बंद हो जाता है, तब ही शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मों का क्षय होकर वीतरागता, सर्वज्ञता, अनंत सुख और अनंत बल प्रगट होता है।

चित्तलीनता के कारण—

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रेव जायते

यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते । (95)

मनुष्य की बुद्धि में जो बात दृढ़ता से बैठ जाती है, उसको उसी

विषय का श्रद्धान् या रुचि—विश्वास हो जाता है और जहाँ रुचि पैदा हो जाती है उसी विषय में सोते, जागते तथा पागलपन या मूर्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है। आत्मद्रष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है, इस कारण उसको अपने आत्मा की श्रद्धा या रुचि होती है, इसी कारण सब दशाओं में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः वह शरीर को ही अपने सर्वस्व (आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते—जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहता है।

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते ।

यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः । (96)

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रुचि नहीं होती और जिस विषय की उसे श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन नहीं होता। तदनुसार अंतरात्मा की बुद्धि में अपना आत्मा समाया रहता है, अतः शरीर में उसकी रुचि नहीं होती, इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, शरीर में उसकी लीनता नहीं होती इसके विपरीत बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है, अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती, इसी कारण उसका मन भी आत्मा में लीन नहीं होता।

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला

मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।

प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावै—

मुकुरवदविकाराः सन्ततं स्युस्त एव ॥12॥ (अमृत कलश)

जो पुरुष स्वयमेव अथवा अन्य के उपदेश से किसी प्रकार भेदविज्ञान मूलक निश्चल आत्मानुभूति को प्राप्त कर लेते हैं, वे पुरुष अपने आत्मा में अनंत पदार्थों के प्रतिबिंबित होने पर भी दर्पण के समान निर्विकार ही रहते हैं।

राजनीति एवं कानून की दृष्टि से सत्य-असत्य का स्वरूप एवं उसके फल

कटु भी हितकर-श्रेय-

अप्रियमप्यौषधं पीयते ॥ (25) नीतिवाक्यामृते – पृ. 67

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए औषधि कड़वी होने पर भी पी जाती है।

मृदुता से कठिन कार्य भी साध्य-

जलवन्मार्दवोपेतः पृथूनपिभूभृतोभिनत्ति ॥ (28) म.सु.

जिस प्रकार कोमल जल-प्रवाह विशाल पर्वतों को उखाड़ देता है, उसी प्रकार मृदुता—युक्त राजा भी महाशक्तिशाली राजाओं का विनाश कर देता है।

प्रिय वाणी का सुफल-

प्रियंवदः शिखीवसदर्पानपि द्विषत्सर्पानुच्छादयति ॥ (29) म.स.

प्रियवादी राजा अभिमानी शत्रुरूपी सर्पों को उस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार प्रिय वाणी बोलने वाला मयूर दर्प—युक्त सर्पों को नष्ट कर देता है।

प्रामाणिक व्यक्ति का लक्षण-

यथानुभूतानुभितश्रुतार्थविसंवादिवचनः पुमानाप्तः ॥ (15) वि.स.

जो अनुभव, अनुमान और आगम प्रमाण द्वारा निश्चित किये हुए पदार्थों को तदनुकूल (विरोध रहित) वचनों द्वारा निरूपण करता है, उस यथार्थ वक्ता तीर्थकर महापुरुष को अथवा उक्त गुण—सहित प्रामाणिक शिष्ट पुरुष को 'आप्त' कहते हैं।

युक्ति शून्य वाक्य की भिर्धकता-

सा वागुक्ताऽप्यनुक्तसमा, यत्र नास्ति सद्युक्तिः ॥ (16) वि.स.

त्यजतु जगदिदार्नि मोहमाजन्मलीढ़ं,
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

हे जगत्! हे संसार के प्राणियों! आजन्म से व्याप्त जो मोह है उसे अब तो त्यागो और मोक्ष मार्ग के रसिकजनों को रोचक तथा उदय को प्राप्त जो ज्ञान है उसका रसास्वाद करने में उद्यत होओ। इस लोक में किसी प्रकार काल में आत्मा अनात्मा के साथ एक होकर तादात्म्य भाव को प्राप्त नहीं होता है।

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्,
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्वर्वती मुहर्त्तम् ।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि ज्ञगिति मूर्त्या साकमेकत्त्वमोहम् ॥२३॥

हे भाई! तू किसी प्रकार महान् कष्ट से मरण पर्यन्त का भी कष्ट उठाना पड़े तो उठाकर तत्वों का कौतूहली होता हुआ शरीर का एक मुहूर्त पर्यन्त पड़ौसी होकर आत्मा का अनुभव कर, जिससे पर पदार्थों से भिन्न हुए अपने आपको अवलोकन कर तू शीघ्र ही शरीर के साथ एकपन के मोह को छोड़ सकें।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन पश्य षण्मासमेकम् ।
हृदय सरसि तुः पुद्गलाद् भिन्नधान्मो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः ॥३४॥

रुको, व्यर्थ के विभिन्न कोलाहल से क्या साध्य है? तू स्वयं ही निश्चल होकर छह माह तक आत्म तत्त्व का अवलोकन कर उसी का अभ्यास कर। फिर देख कि पुद्गल से भिन्न तेज वाले आत्म तत्त्व की हृदयरूपी सरोवर में उपलब्धि होती है या नहीं।

जिसमें कोई प्रशस्त युक्ति न दो गई हो, वह वाणी कहा हुई भा
बिना कही हुई सरीखी है।

गुणों से वाणी की महत्ता-

वक्तुर्गुणौरवाद्वचनौरवम् ॥ (17) विचार समुददेशः

वक्ता के गुणों की गुरुता (महत्ता) के कारण उसकी वाणी का
गौरव होता है।

कठोर वचन-व्यसन-

येन हृदयसंतापो जायते तद्वचनं हि वाक्पारुष्यम् ॥ (28)

व्यसन समुददेशः

जिस अप्रिय कठोर वचन से हृदय सन्तापित (पीड़ित) हो, उसे
'वाक् पारुष्य' कहते हैं।

वाक्पारुष्यं शस्त्रपातादपि विशिष्यते ॥ (29)

मर्म—भेदी कर्कश वचन शस्त्र के घाव से भी विशेष कष्टप्रद
होते हैं, इसलिए मानव को किसी के लिए शस्त्र से चोट पहुँचाना
अच्छा है, परन्तु किसी के प्रति कर्कश कठोर वचन बोलना अच्छा
नहीं।

ज्ञातिवयोवृत्तविद्याऽदोषाणामनुचितं हि वचो वाक्पारुष्यम् ॥ (30)

किसी मानव की जाति, आयुष्य, सदाचार, विद्या और निर्दोषता
के प्रतिकूल वचन कहना वाक्पारुष्य है। अर्थात् कुलीन को नीच कुल
का कहना, वयोवृद्ध को बालक कहना, सदाचारी को दुराचारी कहना,
विद्वान् को मूर्ख कहना और निर्दोषी को सदोषी कहना वाक्पारुष्य है।

स्त्रियमपत्यंभृत्यं च तथोक्त्या विनयं ग्राहयेद्यथा
हृदयप्रविष्टाच्छल्यादिव वचनतो न ते दुर्भनायन्ते ॥ (31)

व्य. समुददेशः

नैतिक मनुष्य को अपनी स्त्री, संतान और सेवक को कर्कश
वचन का त्यागपूर्वक ऐसे हित, मित और प्रिय वचन बोलते हुए इस
प्रकार विनयशील बनाना चाहिए, जिसके फलस्वरूप वे हृदय में चुभे

हुए कीले—सरीखे दुःखद दुर्वचनों से दुःखी न होने पावें, किन्तु प्रमुदित
हों।

महापुरुषों की शपथ-

सत्येनापि शप्तव्यं महतामभयप्रदानवचनमेव शपथः ॥ (85)

युद्ध समुददेशः

शत्रु के हृदय में विश्वास उत्पन्न कराने के लिए सत्य
अर्थात्—सच्ची शपथ करनी चाहिए न कि झूठी, अभयदान देने वाले
प्रामाणिक वचन बोलना ही महापुरुषों की शपथ है।

समस्त व्यवहार वचनाधीन एवं सत्यवादी की लोक—पूज्यता—
सतामसतां च वचनायत्ताः खलु सर्वे व्यवहाराः, स एव
सर्वलोकमहनीयो यस्य वचनमन्यमनस्कतयायायातं भवति शासनं ॥ (86)

निस्संदेह संसार के सभी व्यवहार सज्जनों और दुर्जनों के
वचनों के अधीन होते हैं। वही सत्पुरुष निश्चय से समस्त मनुष्यों द्वारा
पूजनीय है, जिसके वचन मानसिक उपयोग के बिना—उपेक्षा भाव से
भी कहे हुए लिखित दस्तावेज सरीखे प्रामाणिक होते हैं।

नीति-पूर्ण वाणी का माहात्म्य-

नयोदिता वाग्वदति सत्या द्वेषा सरस्वती ॥ (87)

इसमें कोई संदेह नहीं, कि सज्जन पुरुषों द्वारा कही हुई नीति
से ओत—प्रोत वाणी प्रत्यक्ष में सत्य सरस्वती का रूप है।

मिथ्या-वचनों का दुष्परिणाम-

व्यभिचारीवचनेषु नैहिकीपारलौकिकी वा क्रियाऽस्ति ॥ (88)

जो व्यक्ति अपने वचनों का पालन नहीं करते अथवा जो
प्रामाणिक यथार्थ वचन नहीं बोलते उनकी ऐहिक और पारलौकिक
क्रियाएँ (कर्तव्य) निष्फल होती हैं।

विश्वासघात महापाप-

न विश्वासघातात् परं पातकमस्ति ॥ (89)

लोकों में विश्वासघात से बढ़कर दूसरा कोई महान् पाप नहीं है।

विश्वासघाती अविश्वासनीय-

विश्वासघातकः सर्वेषामविश्वासं करोति ॥ (90)

विश्वासघातक व्यक्ति सभी पर अविश्वास उत्पन्न करता है अर्थात् उस पर कोई भी विश्वास नहीं करता।

असत्यसन्धिषु कोशपानंजातान् हन्ति ॥ (91)

झूठी प्रतिज्ञा करने वाले पुरुषों का शपथ करना उनकी संतति का विनाश कर देता है।

मिथ्यावादी की अपकीर्ति-

असत्यवादिनो मृतस्यापि हि न दुर्यशो विनश्यति ॥ (92)

मिथ्यावादी की अपकीर्ति मरने पर भी नष्ट नहीं होती फिर जीवित अवस्था में कैसे नष्ट हो सकती है।

सकृदुस्थिता प्रसिद्धिर्दैरपि निवारयितुं न शक्यते ॥ (93)

एक बार असत्य भाषण आदि दुर्गुणों से फैली हुई अपकीर्ति देवताओं द्वारा भी निवारण नहीं की जा सकती।

दूसरे की कीर्ति का लोप-

यशोबधः प्राणबधाग्दरीयान् ॥ (95)

दूसरे की कीर्ति का लोप करना उसके प्राणों के घात से भी बढ़कर है।

सत्यासत्य का निर्णय-

तदसत्यमपि नासत्यं यत्र न सम्भाव्यार्थहानिः ॥ (18) प्रकी. समु.

झूठ बोलकर भविष्य की किसी विशेष अर्थ-हानि को बचाया जा सके अथवा महान् कार्य सिद्ध हो सके तो वह झूठ, झूठ नहीं है।

प्राणरक्षार्थ असत्य कथन-

प्राणवधे नास्ति कश्चिदसत्यवादः ॥ (19)

प्राण-घात के अवसर पर यदि झूठ बोलकर किसी निरपराध व्यक्ति के प्राणों की रक्षा की जा सके तो वह झूठ, झूठ नहीं है।

नीच अपने को बड़ा मानता है—दूसरों की निंदा करके—
नीचो महत्त्वमात्मनो मन्यते परस्य कृतेनापवादेन ॥ (58)

प्रकीर्णक स.

नीच पुरुष दूसरों की निंदा करके अपने को बड़ा मानता है।

मिथ्याकथन का कुफल (कानूनीदण्ड)

मानाद्वा यदि वा लोभाक्षोधाद्वा यदि वा भयात् ।

यो न्यायमन्यथा ब्रूते स याति नरकं नरः ॥ (108) पंचतंत्र

जो पुरुष अपना सम्मान स्थिर रखने के लिए अथवा लोभ से, किंवा क्रोध के वशीभूत हो अथवा (किसी के) भय से अपना निर्णय ठीक नहीं देता तो वह नरकगामी होता है।

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।

शतं कन्याऽनृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ (109)

पशु के लिए झूठ बोलने में पाँच (पुरुषों) को मारता है। (पाँच पुरुषों की हत्या का फल पाता है), गौ के लिए झूठ बोलने में दस को मारता है, कन्या के विषय में मिथ्या भाषण करने पर सौ पुरुषों को मारता है और पुरुष के विषय में झूठ बोलने पर एक हजार पुरुषों को मारता है।

उपविष्टः सभामध्ये यो न वक्ति स्फुटं वचः ।

तस्याद् दूरेण स त्याज्यो न्यायो वा कीर्तयेदृतम् ॥ (110)

जो मनुष्य न्याय सभा में बैठकर साफ—साफ नहीं बोलता (निर्भय हो अपना फैसला नहीं देता), ऐसे पुरुष को दूर से ही छोड़ देना चाहिए (न्यायासन से हटा देना चाहिए), क्योंकि सत्य बोलना ही न्याय है। (यह राजा का कर्तव्य है कि सत्य बात का निरीक्षण करें)।

रोहते सायकैर्विद्वं छिन्नं रोहति चासिना ।

वचो दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्षतम् ॥ (111)

बाणों से विद्ध अंग आदि भर जाता है तलवार का घाव भी पूरा हो जाता है किन्तु वाणी से विद्ध (हृदय) कभी नहीं भरता इसलिए दुर्वाच्य और धृणास्पद वचन कभी न बोलना चाहिए।

परपरिवादः परिषदि न कथभिच्चत्पण्डितेन वक्तव्यः।

सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तमसुखावहं भवति ॥ (114)

पण्डित को चाहिए कि सभा में (दूसरों के सामने) किसी की निंदा न करे और वह सत्य भी न कहना चाहिए जो कहने पर दुःखदायी हो (अप्रीतिकर हो)।

मित्ररूपाहि रिपवः सम्मावन्ते विचक्षणैः।

ये हितं वाक्यमुत्सृज्य विपरोतोपसेविनः ॥ (197)

जो मनुष्य हितवचन न कहकर अहित का उपदेश करते हैं (अथवा जो मनुष्य भलाई की बात पर ध्यान न देकर उसके विपरीत ही आचरण करते हैं)। विज्ञ पुरुष निश्चय ही उनको मित्ररूपधारी शत्रु समझते हैं।

वाक्पारुष्यम् के दण्ड

(1) गाली—गलौच, निंदा और धमकाना आदि वाक्पारुष्य नामक अपराध के अंतर्गत हैं। वाक्पारुष्य के पाँच भेद हैं—(1) शरीर (2) प्रकृति, (3) श्रुत, (4) वृत्ति और (5) देश।

{प्रक 75, अ. 18 (कौटिल्य अर्थशास्त्रम्)}

(2) शरीर—इनमें शरीर को लक्ष्य करके यदि कोई व्यक्ति काणे, गंजे, लंगड़े, लूले को काणा, लंगड़ा, लूला कहकर पुकारे तो उस पर तीन पण दण्ड किया जाय। यदि झूठी निंदा करे तो छह पण दण्ड किया जाय।

(3) यदि कोई व्यक्ति किसी काणे, लंगड़े आदि की व्याजस्तुति के भाव से यह कहे कि 'वाह तुम्हारी आँखें कितनी सुंदर हैं' तो उस पर बारह पण दण्ड किया जाय।

(4) किसी व्यक्ति की कोढ़ी, पागल या नपुंसक आदि कहकर

निंदा करने वाले पर भी बारह पण दण्ड किया जाय। यदि कोई व्यक्ति अपने बराबर वालों की सच्ची, झूठी तथा व्याजस्तुति से निंदा करे तो उस पर क्रमशः बारह, चौबीस और छत्तीस पण दण्ड किया जाय। अपने से बड़ों के साथ कोई ऐसा व्यवहार करे तो उस पर दुगुना दण्ड किया जाय। अपने से छोटों के साथ ऐसा करने पर आधा दण्ड किया जाय। दूसरों की स्त्रियों के साथ ऐसा करने वाले पर भी दुगुना दण्ड किया जाय। यदि ऐसा निंदा पागलपन, मद या किसी मोह के कारण की गई हो तो उस पर भी आधा दण्ड किया जाय।

(1) किसी को कोढ़ी पागल सिद्ध करने के लिए उनके चिकित्सक या साथ रहने वाले ही प्रमाण माने जाय। पेशाब में झाग उठना और पानी में विष्ठा का डूब जाना नपुंसक स्त्री का प्रमाण समझना चाहिए।

(2) प्रकृति—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज जातियों (प्रकृतियों में यदि पूर्व—पूर्व वे एक—दूसरे की निंदा करे तो अन्त्यज को तीन पण, छह पण, नौ पण और बारह पण दण्ड दिया जाय। इसी प्रकार ब्राह्मण निंदा करे तो दो पण, चार पण, छह पण और आठ पण उसको दण्ड दिया जाय। इसी प्रकार कुब्राह्मण, महाब्राह्मण आदि निन्दित वाक्य कहने वाले को भी यही दण्ड दिया जाय)।

(3) श्रुति—पढ़ाई, विद्वता, योग्यता आदि विषयों को लेकर वार्गीकी व्यक्ति यदि एक दूसरे की निंदा करे तो उन्हें भी यही दण्ड दिया जाय।

वृत्ति—शिल्पी, कुशीलव (नट, नर्तक, गायक) आदि यदि एक—दूसरे की आजीविका की निंदा करे तो उन्हें भी यही दण्ड दिया जाय।

देश—भिन्न—भिन्न देशों के रहने वाले यदि एक—दूसरे के देश की निंदा करे तो उन्हें भी उक्त दण्ड दिया जाय।

(4) यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को यह कहकर कि 'मैं तुम्हें पीटूँगा या तुम्हारे साथ ऐसा कार्य करूँगा' धमकाये, पर

मारे—पीटे नहीं तो उसे पूर्वोक्त दण्ड से आधा दण्ड दिया जाय; किन्तु जो धमकाने के साथ—साथ मारे—पीटे भी उसको आगे 'दण्डपारुष्य' प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार दण्ड दिया जाय।

(5) यदि कोई निर्बल व्यक्ति, किसी को डराये—धमकाये, क्रोध, उन्माद या पागलपन प्रकट करे तो उस पर बारह पण दण्ड किया जाय।

(6) यदि यह बात साबित हो जाय कि किसी ने शत्रुतावश किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ—पैर तोड़ने की धमकी दी है और वह ऐसा करने में समर्थ भी है, तो उसे उसकी आमदनी तथा हैसियत के अनुसार यथोचित दण्ड दिया जाय।

(1) यदि कोई व्यक्ति अपने देश या गाँव की निंदा करे तो उसे प्रथम साहस दण्ड, अपनी जाति तथा समाज की निंदा करे तो उसे मध्यम साहस दण्ड और देवालयों की निंदा करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय।

कठोर वाणी वाले के मुख में होती है विपत्तियाँ

अरुन्तुदं परुषं तीव्रवाचं वाककण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विन्द्यादलक्ष्मीकर्तमं जनानांमुखे निवदधन्निऋतिं वहन्तम्॥

(मत्स्य पुराण 36/9)

व्यंग्यभाषी तथा कठोर व तीक्ष्ण वाणी वाले मनुष्यों को जो अपने वचनरूपी बाणों से सर्वदा किसी न किसी के मर्म पर आघात करते हैं, संसार में सभी से बढ़कर उपलक्ष्मी का पात्र समझना चाहिए क्योंकि ऐसे मनुष्यों के मुख में सर्वदा विपत्तियाँ रहती है तथा एक न एक बंधन उनके लिए बना रहता है।

अध्याय-8

वैज्ञानिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से

ध्वनि-प्रदूषण (Sound Pollution)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition)—

"ध्वनि कानों द्वारा ग्रहण की गई तथा मस्तिष्क तक पहुँचायी गई एक संवेदना है।" ध्वनि किसी के कंपन्न द्वारा होती है। ध्वनि के दो गुण महत्वपूर्ण हैं—(1) 'तारत्व' अथवा 'पिच' और (2) 'तीव्रता' अथवा 'प्रबलता।' तारत्व का संबंध ध्वनि की कंपन्न दर से है। इसे हर्ट्ज में नापा जाता है। तीव्रता डेसीबल में मापी जाती है। तीव्रता के अनुसार ध्वनि तीन प्रकार की हो सकती है—हल्की (मात्र सुनने योग्य), मध्यम (शांत, मधुर और कर्णप्रिय) और तीव्र (शोर—गुल)। तीव्र प्रबलता वाली ध्वनि शोर अथवा कोलाहल को जन्म देती है। वस्तुतः कोई ध्वनि मानव के लिए शोर तभी बनती है जब उसकी तीव्रता बढ़ जाती है। ध्वनि मानसिक अथवा शारीरिक क्रियाओं में विघ्न उत्पन्न करने पर शोर कहलाती है। यही कारण है कि जो ध्वनि एक व्यक्ति के लिए मधुर संगीत है वही ध्वनि दूसरे व्यक्ति के लिए अवांछित होकर शोर बन सकती है। इसी कारण से शोर को 'अदृश्य प्रदूषण' कहा गया है। इसका सीधा संबंध जीवों की मानसिक अथवा शारीरिक दशाओं से होता है। लगभग एक शताब्दी पूर्व नोबल पुरस्कार विजेता तथा जीवाणु वैज्ञानिक राबर्ट कॉक ने यह भविष्यवाणी की थी "एक दिन ऐसा आएगा, जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बुरे शत्रु के रूप में 'क्रूर—शोर' के साथ संघर्ष करना पड़ेगा।" शहरी और औद्योगिक वातावरण में बढ़ते हुए आज के शोरगुल को देखकर लगता है कि वह दिन अब आ पहुँचा है।

शोर की तीव्रता मापने वाला यंत्र 'लार्म बेरोमीटर' कहलाता है। जबकि ध्वनि की तीव्रता मापने की इकाई 'डेसीबल' है। एक बेल का दसवाँ भाग डेसीबल कहलाता है। डेसीबल पैमाने पर 'शून्य' ध्वनि की

तीव्रता का वह स्तर है जहाँ से ध्वनि कानों को सुनाई देना प्रारंभ होती है। हमारे दैनिक जीवन में जो ध्वनियाँ हम सुनते हैं उनकी तीव्रता इस प्रकार है—

स्रोत	ध्वनि तीव्रता (डेसीबल) में
सुनने की शुरुआत	0
फुसफुसाहट	15
दीवाल घड़ी की टिक-टिक	30
धीमा रेडियो	35
वार्तालाप	50
गलियों का शोरगुल	40-70
हल्का यातायात	60
व्यस्त कार्यालय	80
भारी यातायात	90
रेलगाड़ी	90
भारी इंजीनियरिंग वर्कशॉप	95-105
आरा मशीन	100-110
मोटर-कार का हॉर्न	110
इस्पात पुल पर रेल	110
संगीत डिस्को	120
मोटरसाईकिल, स्कूटर	60-110
जेट विमान	140
रॉकेट छूटते समय	160-170
तड़ित की कड़क	120

साधारणतया 50 डेसीबल की ध्वनि कानों को बुरी नहीं लगती लेकिन 95 डेसीबल की ध्वनि को तेज माना जाता है। विशेषज्ञों का मानना है कि 85 डेसीबल के ऊपर की ध्वनि में अधिक समय तक

रहने से मनुष्य में बहरापन आरंभ हो जाता है जबकि 130 डेसीबल से अधिक की ध्वनि संपूर्ण सुरक्षा के उपरान्त घातक हो सकती है।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत (Sources of Sound Pollution)—

शोर के स्रोतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है (1) प्राकृतिक स्रोत, (2) कृत्रिम स्रोत।

(1) प्राकृतिक स्रोत—शोर के प्राकृतिक स्रोतों के अंतर्गत बादलों की गड़गड़ाहट, तड़ित की कड़क, तूफानी हवाएँ समुद्री लहरें, ऊँचे पहाड़ों से गिरते पानी की आवाज, भूकंप और ज्वालामुखी के फटने से उत्पन्न भीषण कोलाहल तथा वन्य जंतुओं की आवाजें सम्मिलित की जा सकती हैं। प्राकृतिक स्रोतों से उत्पन्न शोर प्रायः अस्थायी तथा यदा-कदा होता है अतः इसका प्रभाव अस्थायी ही होता है।

(2) कृत्रिम स्रोत—वर्तमान के वैज्ञानिक तकनीकी और औद्योगिकरण के युग में नगरीकरण के साथ-साथ सुविधा के अनेक उपकरण और साधन हमारे पर्यावरण में शोर-वृद्धि के प्रमुख कारण बन गये हैं। इनमें उद्योग-धंधे तथा मशीनें, स्थल और वायु परिवहन के साधन, मनोरंजन के साधन तथा सामाजिक क्रियाकलापों में खुशी को प्रकट करने हेतु उपयोग में लिए जाने वाले संगीत-उपकरण और आतिशबाजी प्रमुख हैं।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Noise Pollution)—

अवांछित आवाज की ध्वनि प्रदूषण का कारण बनती है। मनुष्य व जीव-जंतु चाहते हुए भी अवांछित ध्वनि से छुटकारा नहीं पा सकते क्योंकि कानरूपी ज्ञानेन्द्रिय प्रत्येक पल चारों ओर से ध्वनि को मस्तिष्क तक पहुँचाती रहती है। सोने पर भी कान तो जागते रहते हैं। ऐसे में चारों ओर से कान तक पहुँचने वाली विभिन्न ध्वनियों का सम्मिलित रूप शोर को जन्म देता है। शोर के कारण मस्तिष्क के तंत्रिका-सं. स्थान, शरीर की जैविक क्रियाओं व मानव के सामाजिक व्यवहार पर असह्य प्रभाव पड़ता है। विज्ञान और तकनीकी के इस युग में अनेक विशेषज्ञ शोर पर अनुसंधान कर रहे हैं। उन्होंने अपने

विभिन्न पश्चात्याणों के द्वारा स्थिति का अध्ययन के साथ ही इस समस्या के हल ढूळने की कोशिश की है।

प्रत्येक व्यक्ति की शोर सहन करने की शक्ति (क्षमता) में भिन्नता होती है। कई व्यक्ति अत्यधिक शोर में रहने के अभ्यस्त हो जाते हैं तो कई व्यक्ति हल्की काना-फूँसी में भी अपने आप को असामान्य पाते हैं। अतः शोर से हानि सभी को होती है। वास्तव में शोर अंदर ही अंदर हमारे शरीर और मस्तिष्क के रोगग्रस्त करता रहता है, इसलिए शोर को “धीमा जहर”, “मृत्युदाता” और समय से पूर्व ही मनुष्य को बूढ़ा कर देने वाला कहा गया है।

विशेषज्ञों के अनुसार एक मनुष्य अपनी स्वाभाविक निद्रा में 30 डेसीबल से अधिक शोर सहन नहीं कर सकता। जागृत अवस्था में 60 से 70 डेसीबल का शोर उसकी सहन शक्ति के अनुकूल है। व्यस्त शरीर क्षेत्रों में रहने वाले आज के नागरिकों को सामान्यतः 70 से 80 डेसीबल तक के बीच में रहना पड़ता है। विशेष वातावरण एवं परिस्थितियों में इस शोर की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को 130 से अधिक डेसीबल के वातावरण में लंबे समय तक रहना पड़े तो वह उसके लिए अत्यंत खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इससे बहरापन, पागलपन तथा अनेक मनोवैज्ञानिक बीमारियों के होने की आशंका रहती है। विभिन्न तीव्रता वाले शोर-प्रदूषण का प्रभाव निम्न रूप में पड़ता—

शोर प्रबलता (dB) स्वास्थ्य पर प्रभाव

80	चिड़चिड़ापन उत्पन्न होता है।
90	श्रवण शक्ति कम होना।
95	बहुत अधिक चिड़चिड़ापन और उत्तेजना पैदा होना।
110	त्वचा में उद्दीपन अथवा उत्तेजना का अनुभव।
120	दर्द की सीमा तक पहुँच जाना।
130–135	जी मचलना, चक्कर आना, उल्टी होना व स्पर्श अनुभव में कमी।

- 140 अधिक समय तक रहने पर पागलपन जैसी स्थिति।
 150 त्वचा में जलन उत्पन्न होना।
 160 कर्णपट्टी झिल्ली का फटना।
 170–190 अल्प समय में ही कानों का खराब हो जाना और संवेदनशील झिल्ली का फटना।

(i) **श्रवण-शक्ति** पर प्रभाव—लगातार शोर से स्थायी दोष उत्पन्न हो जाता है। 90 डेसीबल के शोर से कानों में थकावट उत्पन्न होती है जिससे कानों में निरंतर एक गूँज बनी रहती है। अधिकांश श्रमिक को कल-कारखानों में मशीनों की गड़गड़ाहट के बीच कार्य करते हैं उनमें स्पष्टतः विपरीत श्रवण प्रभाव दिखाई देते हैं। महानगरों में ‘शोर एवं दुष्प्रभाव’ पर कोई शोध कार्य हुए हैं। जिनका निष्कर्ष यह बताता है कि महानगरों में स्वचालित वाहनों के अतिरिक्त शोर का दूसरा प्रमुख स्रोत मशीनें हैं जो कारखानों में दिन-रात चलती है। वस्त्र उद्योग, भारी इंजीनियरिंग उद्योग, गोला-बारूद निर्माण, पत्थर कटिंग उद्योग के समीप रहने वाले लोग इससे बहुत परेशान हैं। इन स्थानों पर कार्यरत श्रमिक या तो अपनी सुनने की शक्ति खो चुके हैं अथवा मानसिक तनाव से ग्रसित हैं। ऐसे शोर भरे वातावरण में नींद न आना एक सामान्य बात है। हवाई अड्डों के समीप हवाईजहाजों के शोर से नींद आने में कठिनाई आम बात है। नींद में नियमित व्यवधान होने से मानव में कई शारीरिक और मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। शोरजन्य बहरापन समग्र शोर के स्तर, शोर की आवृत्ति तथा शोर में रहने की अवधि आदि कारकों पर निर्भर करता है।

(ii) **बातचीत में रुकावट**—शोर के कारण सामान्य बातचीत में तो बाधा पड़ती ही है, उसके साथ ही हम किसी विषय पर गंभीरता से विचार भी नहीं कर पाते हैं। स्कूल तथा कॉलेज के पास सड़क हो तो यातायात के कारण शिक्षकों को अपना व्याख्यान देने में असुविधा होती है और विद्यार्थी भी स्पष्ट सुन नहीं पाते हैं। कारखानों

के समीप भी बातचीत तथा टेलीफोन के प्रयोग में व्यवधान पड़ता है। (उत्पन्न होता है)।

(iii) कार्य क्षमता में कमी—शोर के कारण वायुमंडल का घनत्व बढ़ जाता है जिससे मनुष्य के “साइकोमोटर सिस्टम” (Psychomotor System) पर अप्रत्यक्ष रूप से बुरा प्रभाव पड़ता है जो प्रत्यक्षतः मनुष्य की कार्य क्षमता में कमी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि 90 डेसीबल से अधिक ध्वनि कार्य क्षमता को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करती है और इस ध्वनि स्तर पर बैंक, कार्यालय, शैक्षणिक संस्थाओं में कार्य करने में त्रुटियाँ अधिक होती हैं।

(iv) शरीर की क्रियात्मक गतिविधियों पर प्रभाव—वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक विकास की उपलब्धि के साथ—साथ शोर का संकट भी हमारे चारों तरफ बढ़ता जा रहा है। शोर के कारण मनुष्य में चिड़चिड़ापन अत्यधिक बढ़ जाता है। तनिक—सा कार्य करने पर ही वह अपने को थका हुआ महसूस करने लगता है। जीवन में एक अजीब नीरसता और उखड़ापन घर कर लेता है। मनुष्य बौद्धिक एवं भावात्मक दृष्टि से उदासीन हो जाता है। सोचने—समझने की शक्ति कम होने लगती है। सड़क पर तथा कारखानों में होने वाली दुर्घटनाओं में भी अनेक का मूल कारण शोर ही है। आजकल गली—मोहल्लों में जगह—जगह स्कूल खुल गये हैं, उनके बच्चों का शोर भी आसपास के निवासियों को परेशान करता है जिससे मानसिक तनाव उत्पन्न होता है और झगड़े भी होते हैं।

चिकित्सकों के मतानुसार आजकल स्नायु रोग के हर तीन में से एक का कारण शोर होता है। स्नायु मंडल पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव से मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है। विशेषज्ञों के अनुसार इस स्थिति में 1600 कैलोरी की अतिरिक्त आवश्यकता होती है जिससे शरीर को पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिल पाते। सिरदर्द हेतु शोर ही जिम्मेदार होता है। शोर हृदय रोग और रक्तचाप को भी बढ़ाता है। विशेषज्ञों के अनुसार मानसिक अवसाद से बचने के लिए वर्तमान पीढ़ी में

नशीली वस्तुओं तथा नींद की गोलियों के प्रति जो रुचि बढ़ गई है उसका उत्तरदायित्व भी मुख्यतः शोर पर ही है। मानसिक अवसाद के मूल में छिपे शोर को मनुष्य कम करने के लिए प्रयत्न नहीं कर रहा है बल्कि वह “प्रोडेप” (Prodep) दवाई खाकर “मानसिक—अवसाद” की स्थिति से उभरने का प्रयत्न कर रहा है। जर्मनी के म्यूनिख विश्वविद्यालय के प्राध्यापक जॉर्ज सिमटे का कहना है कि आज के युग में होने वाली मृत्युओं में लगभग 50% के लिए शोर भी एक महत्वपूर्ण कारण होता है। अमेरिका के डॉ. सैम्युअल रोजन का कहना है कि जैसे ही एक कर्कश आवाज कानों से टकराती है; हृदय की स्पन्दन गति बढ़ जाती है, रक्त कोशिकाएँ संकुचित हो जाती हैं और आँतों की क्रियाशीलता कम हो जाती है। एक अध्ययन के अनुसार शोर के कारण कोलेस्ट्रॉल बढ़ जाता है जिससे रक्त शिराओं में हमेशा के लिए तनाव उत्पन्न हो जाता है और दिल का दौरा पड़ने की आशंका पैदा हो जाती है।

श्वास गति, नाड़ी गति, रक्त संचालन तथा चयापचय की क्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है और आमाशय से गैस उत्पन्न होने लगती है। डॉ. रोजन के अनुसार सामान्यतः मनुष्य इन दुष्प्रभावों की उपेक्षा कर देता है किन्तु उसका शरीर इससे अछूता नहीं रह पाता है। अमेरिका में कुछ समय पूर्व पागलपन के अध्ययन में शोर का उत्तरदायित्व बारह प्रतिशत पाया गया। कनाड़ा में प्रतिवर्ष 67,000 व्यक्ति शोर के कारण ही हृदय रोग तथा विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों के शिकार बन जाते हैं।

भारत में शोर के संबंध में अनेक सर्वेक्षण किए गए हैं, जिनसे पता चलता है कि दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, चैन्नई और अहमदाबाद आदि बड़े महानगरों में शोर खतरे की सीमा तक पहुँच गया है। दिल्ली में शोर साधारणतः 105 डेसीबल के आसपास रहता है। वहाँ पर कुछ कलब तथा मनोरंजन गृहों में शोर 114 डेसीबल तक पहुँच जाता है। दिल्ली के दरियांगंज जैसे क्षेत्रों में रात्रि में शोर का स्तर लगभग 80 डेसीबल तक रहता है, यह निश्चित ही हानिकारक है।

(v) भूग पर प्रभाव—अमेरिका में ओहियो विश्वविद्यालय के डॉ. लेस्टर ने गर्भवती माताओं पर शोर प्रभाव का परीक्षण करके पाया कि तीखे शोर से गर्भस्थ शिशु के हृदय की धड़कने यकायक बढ़ जाती है और उससे उसे हानि का खतरा रहता है। गर्भवती स्त्री का अधिक शोर में रहना शिशु के जन्मजात बहरेपन का कारण भी बन सकता है, क्योंकि कान गर्भ में पूर्णरूप से विकसित होने वाला पहला अंग होता है।

(vi) जीव—जंतुओं पर प्रभाव—अत्यधिक और अवांछनीय शोर से मानव ही प्रभावित नहीं होता है अपितु जीव—जंतुओं का व्यवहार और उनकी शारीरिक क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अनेक शोध परियोजनाओं के परिणाम यह बताते हैं कि भारी मशीनों और अत्यधिक यातायात से उत्पन्न शोर के कारण मुर्गियों ने अंडे देना बंद कर दिया, चूहों के गर्भ गिर गये, गाय—बैंस के दूध में कमी आ गई। दिल्ली के चिड़ियाघर के आसपास की सड़कों तथा पास से गुजरने वाली रेल्वे लाईन से यातायात का शोर उसमें पालतू जीव—जंतुओं के जीवन व स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। ट्रांजिस्टर की तीव्र ध्वनि भी चिड़ियाघर के जीव—जंतुओं को चिड़चिड़ा बनाती है।

(vii) आचरण पर प्रभाव—ध्वनि प्रदूषण के मनुष्य के आचरण पर पड़ने वाले प्रभाव इतने जटिल और अदृश्य होते हैं कि इनका सही आकलन करना भी कठिन होता है। दैनिक जीवन में व्याप्त कोलाहल को सामाजिक तनावों, लड़ाई, झगड़ों, मानसिक अस्थिरता, कुंठ तथा पागलपन आदि विकारों का कारण माना जाता है। एक फ्रांसीसी अध्ययन के अनुसार पेरिस में मानसिक तनाव के 70% मामलों का कारण शोर था इसमें भी हवाईअड्डों का शोर अधिक उत्तरदायी था।

(viii) प्राचीन धरोहर का प्रभाव—शोर प्रदूषण के लिए सबसे अधिक दोषी माने जाने वाले जेट विमान 150 डेसीबल तक ध्वनि उत्पन्न करते हैं जिसके कई घातक परिणाम सामने आये हैं, जैसे—अमेरिका के “सुपरमैग्नम” सैनिक जेट विमान से उत्पन्न ध्वनि—तरंगों से ग्रांड केनियन की प्राचीन गुफाओं में दरारें पड़ गई हैं।

फ्रांस के सहयोग से बने ‘केकार्ड जेट विमान’ से लंदन के सैंटपॉल गिरजाघर और संसद भवन को खतरा उत्पन्न हो गया था। इसी संदर्भ में “शोर विरोधी अंतर्राष्ट्रीय संस्था” के प्रो. लेहमान ने कहा कि “शोर प्रौद्योगिकी की प्रगति का नहीं अपितु उसकी प्रतिगति का प्रतीक है।”

अतः विभिन्न अनुसंधान परिणाम यही बताते हैं कि भले ही शोर धीमा हो, पर अगर यह लगातार हो तो उससे कई विकृतियाँ आ सकती हैं। यह अदृश्य प्रदूषण मानव के लिए घातक है, इसीलिए इसे “धीमा जहर” कहा गया है।

ध्वनि प्रदूषण के निदान के उपाय—

डॉ. नडसन शोर के बारे में विशेष रूप से अनुसंधान कर रहे हैं। उनका कहना है कि शोर धुंध की तरह हमें धीरे—धीरे मृत्यु की ओर ढकेल रहा है। अगले तीस वर्षों में भी यह निरंतर बढ़ता जा रहा है तो मानव जाति के लिए घातक हो सकता है। जहाँ तक शोर में वृद्धि का प्रश्न है, अमेरिका में प्रकाशित रिपोर्ट स्पष्ट रूप से यह घोषित करती है कि सामाजिक एवं औद्योगिक प्रगति के साथ हर दस वर्ष में शोर की तीव्रता दुगुनी हो जाती है। यह तथ्य स्थिति की गंभीरता को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है अतः शोर की समस्या का समाधान हमें अपनी प्रगति की रफ्तार को बनाये हुए ढंडना है। तकनीकी और वैकल्पिक आधार पर ध्वनि प्रदूषण के तीन घटक होते हैं—(i) ध्वनि का स्रोत, (ii) ध्वनि का मार्ग अथवा माध्यम, (iii) ध्वनि को ग्राही करने वाले अंग अर्थात् ‘कान।’ अतः ध्वनि प्रदूषण (निवारण) के निदान के सभी उपायों में उपरोक्त तीनों घटकों को ध्यान में रखना चाहिए। इस आधार पर ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए किए जाने वाले उपायों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(1) स्रोत क्षेत्र पर ही ध्वनि की तीव्रता को कम करके, (2) ध्वनि मार्ग में बाधा उत्पन्न करके, और (3) ध्वनि सुनने वाले को सुरक्षा प्रदान करके।

अनेक छोटी-छोटी बातें ऐसी हैं जिनसे पर्याप्त शोर बढ़ता है तथा ये पूर्णतः हमारे अपने नियंत्रण में भी हैं। उदाहरणार्थ जोर-जोर से चीखकर बातें करना, बर्तनों की अनावश्यक उठापटक, फर्नीचर को इधर-उधर घसीटना, जानबूझकर टेप, टीवी, रेडियो आदि तीव्र आवाज से बजाना आदि बातें ऐसी हैं जो नित्य परिवार में होती रहती हैं। इन पर हम सरलता से नियंत्रण कर सकते हैं। इससे निश्चित ही घरों में शोरगुल कम होगा। (मानव और पर्यावरण पृ. 312)

शब्दों का बाजार

समाज का अस्तित्व शब्द पर टिका हुआ है, भाषा और वाक् पर टिका हुआ है। आज तक समाज का जितना विकास हुआ है वह वाक् के आधार पर हुआ है। पशुओं का शब्दकोष बहुत छोटा है और मनुष्य का शब्दकोष बहुत बड़ा है, क्योंकि मन के विकास, चिन्तन, विचार और सम्प्रेषण में शब्द ही माध्यम बनते हैं। कठिनाई यह है कि शब्दों का संसार बहुत बड़ा है और अर्थ का संसार कुछ छोटा हो गया है। मैंने एक बार लिखा है कि मैं क्यों बोलूँ? बोलने का मतलब क्या है? बोलें तब, जब कोई सुनने वाला हो, कोई अर्थ को ग्रहण करने वाला हो। हम शब्द और अर्थ का सामंजस्य कैसे स्थापित करें? कहा गया—

वागर्थाविवसंपृक्तौ, वागर्थं प्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ ॥

हमें यह देखना है कि वाक् और अर्थ में सम्बन्ध कितना प्रगाढ़ है। कोरा वाक् है, अर्थ उससे बिछुड़ा हुआ है तो फिर वह वाक् मात्र शब्दों का व्यापार हो सकता है, इससे ज्यादा और कुछ नहीं। शब्दों का बाजार भी बहुत चलता है। समाज के बाजार में और शब्दों के बाजार में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। बाजार में बैठने वाले व्यापारियों और शब्दों का व्यापार करने वाले विद्वान् और पण्डितों में बहुत अन्तर नहीं होता है।

— आचार्य महाप्रज्ञ

अध्याय-९

विभिन्न महापुरुषों की दृष्टि से मौन तथा सत्य वचन

- ◆ जो ऐसी वाणी बोलता है कि सबके हृदय को आनंदित कर दे, उसके पास दुःखों को बढ़ाने वाली दरिद्रता कभी न आएगी।
—तिरुवल्लुवर
- ◆ जो इंसान तोलकर नहीं बोलता, उसे सख्त बातें सुननी पड़ती हैं।
—सादी
- ◆ घट-घट में वह साँई रमता, कटु वचन मत बोल रे। —कबीर
- ◆ कठोर वचन बुरा है क्योंकि तन-मन को जला देता है और मृदुल वचन अमृत वर्षा के समान है।
—कबीर
- ◆ कितना भी दुखद विषय हो, उसकी चर्चा कठोर भाषा में नहीं करनी चाहिए।
—महात्मा गांधी
- ◆ कटु वचन रूपी बाण मुख से निकल कर दूसरों के मर्म स्थान पर ही चोट करते हैं, उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुटता है, अतः विद्वान् पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करें।
—वेदव्यास
- ◆ कटु वचन कहने से अच्छा है कि खामोश रहा जाये। —अज्ञात
- ◆ कड़वी बात भी हँसकर कही जाये तो मीठी हो जाती है।—प्रेमचंद
- ◆ मनुष्यों के पास धन-दौलत के अंबार हो सकते हैं लेकिन बुद्धिमान मनुष्य की वाणी तो अनमोल होती है।
—बाइबिल
- ◆ मनुष्य की वाणी से उसके गुण और अवगुण जाने जा सकते हैं।
—शेख सादी
- ◆ कोमल उत्तर से क्रोध शांत हो जाता है, कटु वचन से उठता है।
—बाइबिल
- ◆ कटु वचन दूसरे के मर्म स्थान पर चोट करते हैं और बदले में वह श्राप देता है जो निष्फल नहीं जाता।
—वेदव्यास

- ◆ बोलना हो तो उपयोगी ही बोलना उचित है, प्रसंगानुसार जो उचित हो वही बोलना चाहिए। — संत तुकाराम
- ◆ कम बोलने से मन की शक्ति बढ़ती है। — महात्मा विदु
- ◆ आप अगर स्पष्ट वक्ता ही बनना चाहते हैं तो यह कार्य सावधानी से ही करें। — खलील जिब्रान
- ◆ कभी—कभी मौन रह जाना सबसे तीखी आलोचना होती है। — अज्ञात
- ◆ मौन से अच्छा भाषण दूसरा नहीं। फिर भी बोलना पड़े तो जहाँ एक शब्द से काम चलता हो वहाँ दूसरा शब्द न बोलें। — महात्मा गांधी
- ◆ मौन शब्दों से भी अधिक शक्तिशाली है। — कार्लाइल
- ◆ बोलना तो सज्जनों की कुल विद्या का आभास है। — बाणभट्ट
- ◆ पुरुष की शोभा न तो बाहुभूषण से, न चंद्र के समान उज्जवल हार से और न बालों को संवारने से, न पुरुषों के श्रृंगार से होती है, जितनी सुसंस्कृत वाणी से होती है। — भर्तृहरि
- ◆ ब्राह्मण को मलिन, अर्थात् दोषयुक्त नहीं बोलना चाहिए, जो अपशब्द है, वह निश्चय ही मैले है। — पतंजलि
- ◆ मधुर वचन सुनने में भी और कहने में भी प्रसन्नता देते हैं, लेकिन मधुर वचन अहंकार त्याग से ही संभव है। — कबीर
- ◆ प्रिय होने पर भी जो वचन हितकर कहना ही अच्छा है। चाहे वह सुनने में अत्यंत अप्रिय ही क्यों न हो। — विष्णुपुराण
- ◆ बोलना व वाग्मिता होना एक नहीं है, बोलना और अच्छी तरह बोलना दो चीजें हैं। — बेन जॉनसन
- ◆ पराक्रम तो भुजाओं में रहता है, न कि वाणी में। — बाणभट्ट
- ◆ पशु न बोलने के कारण और मनुष्य बोलने के कारण कष्ट उठाते हैं। — लुकमान
- ◆ बोलना शिष्टाचार है और शिष्टाचार में सच और ईमानदारी होना आवश्यक है। — इमर्सन

- ◆ न्यून वाणी मूर्खों की समझ में नहीं आती और अधिक बोलना विद्वानों को उद्विग्न करता है। — धनंजय
- ◆ थोड़ा बोलो थोड़े शब्दों में अधिक कहो। — एपोक्रिफा
- ◆ हम जो कुछ भी बोले, उसमें बल होना चाहिए। — सरदार पटेल
- ◆ वाणी ही मानव का ऐसा आभूषण है जो आभूषणों के सदृश कभी धिसता नहीं। — भर्तृहरि
- ◆ वाणी से भी बाणों की वर्षा होती है जिस पर इसकी बौछारें पड़ती हैं वह दिन—रात दुःखी रहता है। — वाल्मीकि
- ◆ वाणी समय परक होती है, मौन अनंतता परक। — कार्लाइल
- ◆ जब मन और वाणी एक होकर कोई चीज माँगते हैं, तब उस प्रार्थना का फल अवश्य मिलता है। — स्वामी रामकृष्ण
- ◆ झूठा वादा करने से विनम्र झंकार करना अच्छा है। — टॉलस्टॉय
- ◆ झूठा बोलना तलवार के घाव के समान है, घाव भर जायेगा किन्तु उसका निशान सदा बना रहता है। — शेख सादी
- ◆ प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं। कभी—कभी मौन वाणी से ज्यादा प्रभावी सिद्ध होता है। — जयशंकर प्रसाद
- ◆ मौन के वृक्ष पर शांति के फल सदैव लदे रहते हैं। — अरबी लोकोक्ति
- ◆ मौन उस अज्ञानी के लिए आभूषण है जो ज्ञानियों की सभा में जा बैठा है। — भर्तृहरि
- ◆ मौन द्वारा कलह का कत्तल किया जाता है। — महात्मा गांधी
- ◆ मौन और एकान्त पवित्र आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं। — दिनोबा भावे
- ◆ खामोश रहो या फिर ऐसी बात कहो, जो खामोशी से बेहतर हो। — पाइथागोरस

- ◆ छिपी हुई वह बात, जो हर सभा में नहीं की जा सके, कहना उचित नहीं है। — शेखसादी
- ◆ प्रश्न का समय पर उपयुक्त उत्तर देना आनंद प्रदान करता है। उचित समय पर कही गई बात ज्यादा वजन रखती है। — नीतिवचन
- ◆ जीभ को जीत लेना सब वस्तुओं को जीत लेने के बराबर है। — महात्मा गाँधी
- ◆ हितकर किन्तु अप्रिय वचन को कहने और सुनने वाले दोनों दुर्लभ है। — वाल्मीकि
- ◆ हृदय केवल हृदय से ही बात कर सकता है क्योंकि उसके पास वाणी नहीं होती। — महात्मा गाँधी
- ◆ शब्द विचारों को बहुत साफ ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं। व्यक्त करने के शीघ्र बाद वे सदैव कुछ भिन्न हो जाते हैं, तो कुछ विकृत हो जाते हैं तो कुछ मूर्खतापूर्ण लगते हैं। — हरमन हैस
- ◆ शब्दों का सामर्थ्य भी हो जाता है व्यर्थ, आगे—पीछे कीजिए बदल जायेगा अर्थ। — काका हाथरसी
- ◆ शब्द तो प्रेत मात्र है, यदि वे व्यर्थ की बातें न करें। — अरविन्द
- ◆ मधुर वचनों के होते हुए उन्हें छोड़कर कटु वचन का प्रयोग करना, पके फल के होते हुए कच्चे फल खाने के समान है। — तिरुवल्लुवर
- ◆ शब्द बड़ी साधना से उठ पाते हैं। उन्हें गिराने की चेष्टा नहीं होनी चाहिए। — जैनेन्द्र
- ◆ दूसरों के अप्रिय वचनों के बदले में मृदुल वचन कहने वाला व्यक्ति उत्तम है। — अज्ञात
- ◆ जहाँ मनुष्य की जिह्वा बोलने में असमर्थ हो जाती है, वहाँ पत्थर

- ◆ बोलना प्रारंभ कर देते हैं। — स्वामी रामतीर्थ
- ◆ अगर किसी की कड़वी बात न सुनना चाहो तो उसका मुख मीठा करो। — सादी
- ◆ गाली से प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती दोनों ओर अपमान है। इससे दुनिया में सबसे ज्यादा कमज़ोर चीज, कठोर बात है। — शरतचन्द्र
- ◆ कठोर किन्तु हित की बात कहने वाले लोग थोड़े ही होते हैं। — वाल्मीकि
- ◆ सत्य बोले, प्रिय बोले, किन्तु अप्रिय सत्य न बोले। किसी के साथ व्यर्थ बैर और शुष्क विवाद न करें। — आचार्य मनु
- ◆ अल्पभाषी सर्वोत्तम मनुष्य है। — महात्मा गाँधी
- ◆ अधिक देखे, अधिक सुने, किन्तु बोले कम। — गुरु नानक
- ◆ जो आदमी तौलकर बात नहीं करता, उसे सख्त बात सुननी पड़ती है। — शेखसादी
- ◆ शब्द से ही सृष्टि का उदगम और उसी में सृष्टि का विनाश और पुनः शब्द से ही सृष्टि की नई रचना होती है। — गुरु नानक देव
- ◆ सबकी बात ध्यान से सुनो परन्तु अपनी सलाह केवल थोड़े ही मनुष्यों को दो। — शेक्सपीयर
- ◆ गूँगे ही बातूनों से ईर्ष्या करते हैं। — खलील जिब्रान
- ◆ नम्रता और मीठे वचन ही मनुष्य का आभूषण है। — स्वामी विवेकानंद
- ◆ जो अपने मुख और जिह्वा पर संयम रखते हैं, वे अपनी आत्मा को संतापों से बचाते हैं। — बाइबिल
- ◆ ऐसा वचन न कहो, जो खुद को पसंद न हो। — कठोपनिषद्
- ◆ वार्तालाप बुद्धि को मूल्यवान् बना देता है, परन्तु एकान्त प्रतिभा की पाठशाला है। — गिबन

महात्मा गांधी की दृष्टि में सत्य

हमारी संस्था का मूल ही 'सत्य' का आग्रह है, इसलिए पहले सत्य को ही लेता हूँ।

'सत्य' शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है अस्तिसत्य अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं है। परमेश्वर का सच्चा नाम ही 'सत्' अर्थात् 'सत्य' है। इसलिए परमेश्वर 'सत्य' है, यह कहने की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है कहना अधिक योग्य है। हमारा काम राजकर्ता के बिना सरदार के बिना नहीं चलता। इस कारण परमेश्वर नाम अधिक प्रचलित है और रहेगा। लेकिन विचारने पर तो लगेगा कि 'सत्' या 'सत्य' ही सच्चा नाम है और यही पूरा अर्थ प्रकट करने वाला है।

सत्य के साथ ज्ञान—शुद्ध ज्ञान—अवश्यंभावी है। जहाँ सत्य नहीं है और शुद्ध ज्ञान की संभावना नहीं है। इससे ईश्वर नाम के साथ चित् अर्थात् ज्ञान शब्द की योजना हुई है और जहाँ सत्य ज्ञान है वहाँ आनंद ही होगा, शोक होगा ही नहीं। सत्य के शाश्वत् होने के कारण आनंद भी शाश्वत् होता है। इसी कारण ईश्वर को हम सच्चिदानंद के नाम से भी पहचानते हैं।

इस सत्य की आराधना के लिए ही हमारा अस्तित्व, इसी के लिए हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति और इसी के लिए हमारा प्रत्येक श्वासोच्छ्वास होना चाहिए। ऐसा करना सीख जाने पर दूसरे सब नियम सहज में हमारे हाथ लग सकते हैं। उनका पालन भी सरल हो जा सकता है। सत्य के बिना किसी भी नियम का शुद्ध पालन अशक्य है।

साधारणतः सत्य का अर्थ सच बोलना मात्र ही समझा जाता है; लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य शब्द का प्रयोग किया है विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है इस सत्य को संपूर्णतः समझने वाले के लिए जगत् में और कुछ जानना बाकी नहीं रहता; क्योंकि हम ऊपर विचार कर आये हैं कि सारा ज्ञान उसमें समाया हुआ है। उसमें जो न समय, वह सत्य नहीं है, ज्ञान नहीं है। तब फिर उससे सच्चा आनंद तो हो ही कहाँ से सकता है? यदि हम

इस कसौटी का उपयोग करना सीख जाये तो हमें यह जानने में देर न लगे कि कौन प्रवृत्ति उचित है, कौन त्याज्य? क्या देखने योग्य है, क्या नहीं? क्या पढ़ने योग्य है, क्या नहीं।

पर यह पारसमणि रूप, कामधेनु रूप सत्य पाया कैसे जाय? इसका जवाब भगवान ने दिया है.....अभ्यास और वैराग्य से। सत्य की ही घालमेल अभ्यास है। उसके सिवा अन्य सब वस्तुओं में अत्यांकित उदासीनता वैराग्य है। फिर भी हम पायेंगे कि एक के लिए जो सत्य है, दूसरे के लिए वह असत्य हो सकता है। इसमें घबराने की बात नहीं है। जहाँ शुद्ध प्रयत्न है वहाँ भिन्न जान पड़ने वाले सब सत्य एक ही पेड़ के असंख्य भिन्न दिखाई देने वाले पत्तों के समान हैं। परमेश्वर ही क्या हर आदमी को भिन्न दिखाई नहीं देता? फिर भी हम जानते हैं कि वह एक ही है। पर सत्य नाम ही परमेश्वर का है, अतः जिसे जो सत्य लगे तदनुसार वह बरते तो उसमें दोष नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि वही कर्तव्य है। फिर उसमें भूल होगी भी तो वह अवश्य सुधर जाएगी; क्योंकि सत्य की खोज के साथ तपश्चर्या होती है अर्थात् आत्मकष्ट—सहन की बात होती है। उसके पीछे मर—मिटना होता है, अतः उसमें स्वार्थ की तो गंध तक भी नहीं होती। ऐसी निःस्वार्थ खोज में लगा हुआ आज तक कोई अंत पर्यन्त गलत रास्ते पर नहीं गया। भटकते ही वह ठोकर खाता है और फिर सीधे रास्ते चलने लगता है।

सत्य की आराधना भक्ति है और भक्ति 'सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा' है, अथवा वह 'हरि का मार्ग' है जिसमें कायरता की गुंजाइश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज है ही नहीं। वह तो 'मरकर जीने का मंत्र' है। पर अब हम लगभग अहिंसा के किनारे आ पहुँचे हैं।

यह सत्यरूपी परमेश्वर मेरे लिए रत्नचिंतामणि सिद्ध हुआ है। हम सभी के लिए वैसा ही सिद्ध हुआ है हम सभी के लिए वैसा ही सिद्ध हो। (धर्मनीति पृ. 93)

मधुर भाषणम्

सुस्निग्धा मधुरा नूनं सता भवति भारती।

अकृत्रिमा दयायुक्ता पूर्णसदभावसंभूता (1) कुरलकाव्य पृ. 10

सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है, क्योंकि वह दयार्द, कोमल और बनावट से खाली होती है। (1)

प्रियवाण्यां सुवात्सल्ये स्निग्धदृष्टौ च यद्विघम्।

माधुर्यं दृश्यते तद्वद् वृहद्वानेऽपि नेक्ष्यते (2)

औदार्यमय दान से भी बढ़कर सुंदर गुण, वाणी और मधुरता, दृष्टि की स्निग्धता और स्नेहार्द्रता में है। (2)

स्नेहपूर्णा दयादृष्टिर्हार्दिकी या च वाक्सुधा।

एतयोरेव मध्ये तु धर्मो वसति सर्वदा (3)

हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामई स्निग्ध-दृष्टि में ही धर्म का निवास स्थान है। (3)

वचनानि रसाव्यानि यस्याहलादकराणि सः।

कदाचिल्लभते नैव दारिद्रथं दुःखवर्द्धनम् (4)

जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है कि सबके हृदय को आल्हादित कर दे, उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी न आयेगी।

भूषणे द्वे मनुष्यस्य नम्रताप्रियभाषणे।

अन्यद्वि भूषणं शिष्टैर्नाहतं सम्यसंसदि (5)

नम्रता और प्रिय-संभाषण, बस ये ही मनुष्य के आभूषण हैं, अन्य नहीं। (5)

यदि ते मानसं शुद्धं वाणी चान्यहितङ्करी।

धर्मवृद्ध्या समं तर्हि विज्ञेयः पापसंक्षयः (6)

यदि तुम्हारे विचार शुद्ध तथा पवित्र है और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है तो तुम्हारी पाप-प्रवृत्ति का क्षय हो जायेगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी। (6)

सेवाभावसमायुक्तं विनम्रवचनं सदा

विश्व करोति मित्रं हि सन्त्यन्येऽपि महागुणाः (7)

सेवाभाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है तथा बहुत से लाभ पहुँचाता है।

शब्दाः सहृदयैः श्लाघ्याः क्षुद्रतारहिताश्च ये

कुर्वन्ति ते हि कयाणमिहामुत्र च भाषिणः (8)

वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित है इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख पहुँचाते हैं।

श्रुतिप्रियोक्तिमाधुर्यमवगम्यापि ना कथम्।

न मुञ्चति दुरालापं किमाश्चर्यमतः परम् (9)

श्रुति-प्रिय शब्दों का माधुर्य चखकर भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना क्यों नहीं छोड़ता? (9)

विहाय मधुरालापं कटूकितं योऽथ भाषते।

अपकं हि फलं भुज्कते परिपस्कं विमुच्य सः (10)

मीठे वचनों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे शब्दों का प्रयोग करता है वह मानो पके फलों को छोड़कर कच्चे फल खाता है। (10)

व्यर्थ भाषणम्

अर्थशून्यं वचो यस्य श्रुत्वोद्वेगः प्रजायते।

तत्सम्पर्काज्जुगुप्सन्ते लोके सर्वेऽपि मानवाः (1)

(कुरल काव्य पृ. 20)

निरर्थक शब्दों से जो अपने श्रोताओं में उद्वेग लाता है वह सबके तिरस्कार का पात्र है।

क्लेशदानं स्वभित्रेभ्यो वरमस्तु कथञ्चन।

गोच्छयां किन्तु वृथालापो न श्लाघ्योनिम्नताकरः (2)

अपने मित्रों को दुःख देने की अपेक्षा भी अनेक लोगों के आगे व्यर्थ ही बकवाद करना बहुत बुरा है।

निस्तारं दम्भपूर्णज्ञच व्याख्यानं यः प्रभाषते ।

नन्वाख्याति स्वयं लोके स मन्दः स्वामयोग्यताम् (3)

जो निरर्थक शब्दों का आड़बर फैलाता है वह अपनी अयोग्यता को ऊँचे स्वर से घोषित करता है ।

बुधवृन्दे प्रलापेन कोऽपि लाभो न जायते ।

विद्यामानो वरांशोऽपि तत्सम्बन्धाद् विलीयते (4)

सभा में जो व्यर्थ की बकवाद करता है, उस मनुष्य को देखो, उसे और कुछ तो लाभ होने का नहीं है, पर जो कुछ उसके पास अच्छी बातें होंगी वे भी छोड़कर चली जावेंगी ।

योग्योऽप्ययोग्यवद् भाति व्यर्थालापपरायणः ।

सम्मानं गौरवज्ञास्य द्वयमेव विनश्यति (5)

यदि व्यर्थ ही बकवाद अच्छे लोग भी करने लगे तो वे भी अपने मान और आदर को खो बैठेंगे ।

रुचिरेवास्ति यस्याहो भोधार्थवचसां व्यये ।

तं मानवं न जानीहि ह्यपेक्ष्यं चापि कच्चरम् (6)

जिसे निरर्थक बातें करने की अभिरुचि है उसे मनुष्य ही नहीं मानना चाहिए, कदाचित् उससे भी कोई काम आ पड़े तो समझदार आदमी उससे करवे के समान ही काम ले लें ।

उचितं बुधं चेद् भाति कुर्याः कर्कशभाषणम् ।

परं नैव पृथालापं यतोऽस्मादौ तदुत्तमम् (7)

यदि समझदार को योग्य मालूम पड़े तो मुख से कठोर शब्द कह ले, क्योंकि यह निरर्थक भाषण से कहीं अच्छा है ।

येषा हि निरतं धित्तं तत्त्वज्ञानगवेषणे ।

विकथां ते न कुर्वन्ति क्षणमात्रं महर्षयः (8)

जिसके विचार बड़े-बड़े प्रश्नों को हल करने में लगे रहते हैं ऐसे लोग विकथा के शब्द अपने मुख से निकालते ही नहीं ।

येषा तु महती दृष्टिर्ये चैवं दीर्घदर्शिनः ।

विस्मृत्यापि न कुर्वन्ति वृथोक्तीस्ते महाधियः (9)

जिसकी दृष्टि विस्तृत है वे भूलकर भी निरर्थक शब्दों का उच्चारण नहीं करते ।

वाचस्ता एव वक्तव्या या श्लाघ्याः सम्यमानवैः ।

वर्जनीयास्ततो भिन्ना अवाच्या या वृथोक्तयः (10)

मुख से निकालने योग्य शब्दों का ही तू उच्चारण कर, परन्तु निरर्थक अर्थात् निष्फल शब्द मुख से मत निकाल ।

सत्य भाषणम्

यस्मान्न जायते पीडा कस्यापि प्राण धारिणः ।

तदेव वचनं सत्यं भाषितं मुनिपुद्गवैः (1) (कुरलकाव्य पृ. 30)

सच्चाई क्या है? जिससे दूसरों को कुछ भी हानि न पहुँचे उस बात को बोलना ही सच्चाई है ।

संकटाकीर्णजीवानामुद्धारकरणेच्छ्या ।

कथिता साधुभिर्जातु मृषोक्तिरमृतैव सा (2)

उस झूठ से भी सत्यता की विशेषता है जिसके परिणाम में नियम से भलाई ही होती है ।

मृषात्वं यस्य विज्ञातं मनसा यदि धीमता ।

तद्वचो न प्रयोक्तव्यमनुतापोऽन्यथाभवेत् (3)

जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे कभी मत बोलो, क्योंकि झूठ बोलने से स्वयं तुम्हारी अंतरात्मा ही तुर्दृ जलायेगी ।

सत्यव्रतेन यस्यास्ति पवित्रं मानसं सदा ।

प्रभुत्वं वर्तते तस्य सर्वेषामेव मानसे (4)

देखो, जिसका (मनुष्य का) नन असत्य से अपवित्र नहीं है, वह सबके हृदय पर शासन करेगा ।

सत्ये शाश्वतकल्याणे निमग्न यस्य मानसम् ।

ऋषिभ्यः स महान् नूनं दानिभ्यश्च वरो मतः (5)

जिसका मन सत्यशीलता में निमग्न है वह पुरुष तपस्वी से भी महान् और दानी से भी श्रेष्ठ है ।

अतः परो च का कीर्तिर्यन्मृषासौ न भाषते ।

एवं विधो नरो नूनं बिना वलेशेन सिद्धिभाक् (6)

मनुष्य के लिए सबसे बढ़कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह झूठ बोलना जानता ही नहीं । ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये बिना ही सब तरह की सिद्धियों को पा जाता है ।

न वक्तव्यं न वक्तव्यं मृषावाक्यं कदाचन ।

सत्यमेव परो धर्मः किं परै धर्मसाधने (7)

“असत्य भाषण मत करो” यदि मनुष्य इस आदेश का पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है ।

विमलैः सलिलैर्घद्वद् गात्रं शुद्ध्यति देहिनाम् ।

एकमेव मनुष्याणां मानसं सत्यभाषणैः (8)

शरीर की स्वच्छता का संबंध तो जल से है, परन्तु मन की पवित्रता सत्य भाषण से सिद्ध होती है ।

अन्यान् सर्वविधान्वै प्रकाशान् मन्यते सुधीः ।

सत्यमेव परं ज्योतिर्विजानाति विशुद्ध धीः (9)

योग्य पुरुष और सब प्रकार के प्रकाशों को प्रकाश ही नहीं मानते, केवल सत्य की ज्योति को ही सच्चा प्रकाश मानते हैं ।

बहुवस्तूनि दृष्टानि तत्रैकं सारवत्तरम् ।

इदमेव मया ज्ञातं यत्सत्यं परमोत्तमम् (10)

मैंने इस संसार में बहुत—सी वस्तुएँ देखी हैं, परन्तु उनमें सत्य से बढ़कर उच्च और कोई वस्तु नहीं है ।

पैशुन्यपरिहारः

शुभं न रोचते यस्मै कुकृत्येषु रतश्च यः ।

सोऽपीदं मोदते श्रुत्वा यदसौ नास्ति सूचकः (1) कु.का.पृ.

जो मनुष्य सदा अन्याय करता है और न्याय का कभी नाम भी नहीं लेता, उसको भी प्रसन्नता होती है, जब कोई कहता है—देखो, आदमी किसी की चुगली नहीं खाता ।

शुभादशुभसंसक्तो नूनं निन्द्यस्ततोऽधिकः ।

पुरः प्रियम्बदः किन्तु पृष्ठे निन्दापरायणः (2)

सत्कर्म से विमुख हो जाना और कुकर्म करना निस्संदेह बुरा है, पर मुख पर हँसकर बोलना और पीठ पीछे निंदा करना उससे भी बुरा है ।

अलीकनिन्दितालापिजीवितान् मरणं वरम् ।

एवं कृते न नश्यन्ति पुण्यकार्याणि देहिन (3)

झूठ और चुगली के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो तत्काल ही मर जाना अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार मर जाने से शुभकर्म का फल मिलेगा ।

अवाच्यं यदि केनापि प्रत्यक्षे गदितं त्वयि ।

तस्य पृष्ठे तथापि त्वं मा भूर्निन्दापरायणः (4)

पीठ पीछे किसी का निंदा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुख पर ही तुम्हें गाली दी हो ।

मुखेन भाषतां बहीं शुभोक्तिं पिशुनो वरम् ।

सूचयत्येव तज्जिह्वा निन्मत्वं किन्तु चेतसः (5)

मुख से चाहे कोई कितनी ही धर्म—कर्म की बातें करे पर उसकी चुगलखोर जिह्वा उसके हृदय की नीचता को प्रगट कर ही देती है ।

त्वया यदि परे निन्द्याः स्युस्त्वां तेऽपि रुषान्विताः ।

दर्शयित्वा महादोषान् निन्दिष्यन्ति तवाहिताः (6)

यदि तुम दूसरे की चुगली करोगे तो वह तुम्हारे दोषों को खोजकर उनमें से बुरे से बुरे दोष को प्रगट कर देगा।

मैत्रीरसं न जानाति न चापि मधुरं वचः।

स एव मेदमाधते मित्रयोरेककण्ठयोः (7)

जो मधुर वचन बोलना और मित्रता करना नहीं जानते वे चुगली करके फूट का बीज बोते हैं और मित्रों को एक—दूसरे से जुदा कर देते हैं।

पुरस्तादेव सर्वेषां मित्रं निन्दन्ति ये नराः।

ते शत्रवः कथं निन्द्या न स्युरिति विचार्यताम् (8)

जो लोग अपने मित्र के दोषों को स्पष्ट रूप से सबके सामने कहते हैं, वे अपने वैरियों के दोषों को भला कैसे छोड़ेंगे?

निन्दाकर्तुः पदाघातं सहते स्वोरसि क्षमा।

तद्भारायैव सा धर्मं वीक्षते किं मुहुर्मुहः (9)

पृथ्वी अपनी छाती पर निंदा करने वाले के पदाघात को धैर्य के साथ किसी तरह सहन करती है। क्या चुगलखोर के भार से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए ही धर्म की ओर बार—बार ताकती है?

अन्यदीयमिवात्मीयमपि दोषं प्रपश्यता।

कः समः खलु मुक्तोऽयं दोषवर्गेण सर्वदा (10)

यदि मनुष्य अपने दोषों की विवेचना उसी प्रकार करे जिस प्रकार की वह अपने वैरियों के दोषों की करता है, तो क्या उसे कभी कोई दोष स्पर्श कर के ले के गा?

वाक्पटुता

वाग्गिमत्वं हि वरीवर्ती वरदानं विलक्षणम्।

तन्नांशोऽन्यस्य कस्यापि स्वतः सिद्धं तदीप्सितम् (1) कु.का.

वाक्शक्ति एक निःसंदेह एक बड़ा वरदान है, क्योंकि वह अन्य वरदानों का अंश नहीं किन्तु वह स्वतंत्र वरदान है।

मृत्युर्वस्ति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे ननु जीवनम्।

अतः सुधीर्वदेद् वार्णी विचार्यैव शुभां सदा (2)

जीवन और मृत्यु जिह्वा के वश में है, इसलिए ध्यान में रखो कि तुम्हारे मुँह से कोई अनुचित बात न निकले।

वाचस्ता एक सुश्लाघ्या याः सक्ताः सख्यवर्धने।

रिपूणामपि कल्पन्ते हृदयाकर्षणाय च (3)

जो वस्तुता मित्रों को और भी घनिष्ठता के सूत्र में आबद्ध करती है और विरोधियों को भी अपनी ओर आकर्षित करती है वही यथार्थ वस्तुता है।

पर्यालोच्य नरः पूर्वं पश्चाद् भाषेत भारतीम्।

धर्मवृद्धिरतो नान्या लाभश्चापि शुभावहः (4)

हर एक बात को ठीक तरह से तौलकर देखो और फिर जो उचित हो वही बोलो, धर्मवृद्धि तथा लाभ की दृष्टि से इससे बढ़कर उपयोगी बात तुम्हारे पक्ष में और कोई नहीं है।

वाणी सैव प्रयोक्तव्या यस्यां किञ्चिचन्न हेयता।

अनुल्लंघ्य च या सर्वैर्लब्ध्यसार्वगुणोदया (5)

तुम ऐसी वस्तुता दो कि जिसे दूसरी कोई वस्तुता चुप न कर सकें।

आशुविद् यः परार्थानां सुवक्ता चित्तकर्षकः।

अधिकारी स एवास्ति राजनीतिर्विदांवरः (6)

ऐसी वस्तुता देना कि जो श्रोताओं के हृदय को खींच ले और दूसरों की वस्तुता के अर्थ को शीघ्र ही समझ जाना यह पक्के राजनीतिज्ञ का कर्तव्य है।

नैव स्खलति यस्यान्तः सुवक्तुर्वादसंसदि।

कथं पराजयः शक्यस्तस्य निर्भीकचेतसः (7)

जो आदमी सुवक्ता है और जो गड़बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिए संभव नहीं।

ओजस्वि वाङ्मयं यस्य विश्वास्यं परिमार्जितम् ।

तदिदिगते नरीनर्ति समस्तं वसुधातलम् (8)

जिसकी वस्तुता परिमार्जित और विश्वासोत्पादक भाषा से सुसज्जित होती है सारी पृथ्वी उसके संकेत पर नाचती है।

शब्दैः परिमितैरेव स्वाभिप्रायप्रकाशनम् ।

ये जना नैव जानन्ति तेषु वै वावदूकता (9)

जो लोग अपने मन की बात थोड़े से चुने हुए शब्दों में कहना नहीं जानते वास्तव में उन्हीं को अधिक बोलने की आदत होती है।

निजार्तिं यदि ज्ञानं स्वयं व्याख्यातुमक्षमः ।

नरो न शोभते तद्वन् निर्गन्धं कुसुमं यथा (10)

जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझाकर दूसरों को नहीं बता सकते वे उस फूल के समान हैं जो खिलता है परन्तु सुगन्धि नहीं देता।

अध्याय-10

सत्य एवं असत्य संबंधी दृष्टान्त

सत्य का प्रभाव

अनेक मनुष्यों से भरे हुए इस जान्मद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में जैन-धर्म से अत्यंत शोभायमान एक पुष्कलावती देश है। उसकी पुण्डरीकिणी नगरी में एक धनदेव नाम का वैश्य रहता था। वह धनदेव सदा सत्य भाषण ही करता था। उसी नगरी में एक दुष्ट जिनदेव रहता था। किसी एक समय धनदेव और जिनदेव दोनों ही व्यापार के लिए देशांतर गये उन्होंने बिना किसी अन्य की साक्षी के परस्पर में यह तय कर लिया था कि हमारे व्यापार में जो कुछ लाभ होगा उसे हम दोनों आधा बाँट लेंगे। वहाँ जाकर उन्होंने पुण्यकर्म के उदय से बहुत-सा द्रव्य कमाया और फिर वे दोनों शीघ्र ही लौटकर कुशलपूर्वक घर आ गये। जिनदेव दुष्ट था इसलिए घर आने पर उसने धनदेव को आधा द्रव्य नहीं दिया किन्तु उसे थोड़ा-सा द्रव्य देना चाहा। इसलिए उन दोनों में परस्पर झगड़ा हो गया। सो ठीक ही है क्योंकि मूर्ख लोग धन के लिए क्या-क्या पाप नहीं करते हैं? अर्थात् सब कुछ करते हैं? कोई साक्षी तो था ही नहीं, इसलिए झूठ बोलने वाले पापी जिनदेव ने सब लोगों के सामने, कुटुम्बियों के सामने और राजादि के सामने यही कहा कि मैंने इस व्यापार के लाभ में से इसे कुछ भी द्रव्य देना नहीं कहा था इसलिए मैं इसे उचित द्रव्य के सिवाय और कुछ अधिक नहीं दे सकता। धनदेव अपने सत्यव्रत में निश्चल था इसलिए उसने राजा, कुटुम्बी और वैश्यों के सामने परस्पर में तय हुए आधे-आधे द्रव्य की ही बात कही तब राजा ने वह सब धन दोनों से लेकर जलती हुई अग्नि में रख दिया और कह दिया कि जो सत्यवादी हो वह अग्नि में जाकर ले आवे। धनदेव सत्यवादी और शुद्ध था इसलिए वह झट अग्नि में जाकर द्रव्य को ले आया तथा झूठ बोलने के कारण जिनदेव उस द्रव्य को न ला सका इसलिए वह सब

धन राजा ने धनदेव को ही सौंप दिया तथा राजा ने व अन्य लोगों ने उनका यथेष्ट आदर—सत्कार किया और संसार में वह बहुत ही श्रेष्ठ और धन्य गिना गया यह बात देखकर अन्य लोगों ने भी उसकी स्तुति की, पूजा की और उसे नमस्कार किया। इस प्रकार धनदेव सत्य के प्रभाव से संसार भर में प्रसिद्ध हुआ। देखो—वैश्यपुत्र धनदेव निर्मल सत्य वचनों के ही प्रभाव से अनेक निर्मल गुणों का निधि हो गया था धनाद्य हो गया था, राजा के द्वारा और अन्य संसारी लोगों के द्वारा पूज्य हो गया था और संसार में उसकी निर्मल कीर्ति फैल गई, ऐसा सत्यवादी धनदेव सदा जयशील हो इस प्रकार सत्य वचनों के गुणों को सुनकर शिष्य फिर पूछने लगा कि हे भगवन्! सत्य वचनों के त्याग करने से किसी को दुःख पहुँचा है उसकी कथा और सुना दीजिये इसके उत्तर में आचार्य कहने लगे कि हे शिष्य! तू चित्त लगाकर सुन, अब मैं झूठ बोलने वाले सत्यघोष की भय उत्पन्न करने वाली कथा कहता हूँ। इसी जम्बूद्वीप के प्रसिद्ध भरत क्षेत्र में एक सिंहापुर नगर है। उसमें राजा सिंहसेन राज्य करता था। उसको सुख देने वाली उसकी रानी का नाम रामदत्ता था। उसी राजा के एक श्रीभूति नाम का अत्यंत कपटी पुरोहित था वह अपने जनेऊ में एक कैंची बाँधे फिरता था और लोगों से कहता फिरता था कि यदि कभी लोभ से मेरे मुँह से कुछ झूठ निकल जाता है तो मैं इस कैंची से उसी समय अपनी जीभ काट डालता हूँ। इस प्रकार वह प्रतिदिन अपना सब व्यवहार कपटपूर्वक ही करता। परन्तु उसका यह कपट किसी को मालूम नहीं हुआ था इसलिए उसका दूसरा नाम सत्यघोष पड़ गया था। तब बहुत से लोग उसका विश्वास करने लग गये थे और उसके पास आ आकर अपना धन धरोहर रखने लग गये थे परन्तु जो द्रव्य रख जाते थे उनको वह कुमारगामी पुरोहित सब नहीं देता था, थोड़ी ही देता था। तथापि संसार में उसके सत्य की प्रसिद्धि हो रही थी इसलिए उससे कोई कुछ कह नहीं सकता था जो पुरुष उसके इस कृत्य को जान लेता था वह उसके सत्य की प्रसिद्धि को सुनकर यहीं सोच लेता था कि क्या कहूँ? यदि मैं कुछ कहूँगा भी तो मेरे महाराज मेरे लिए ही नाम रखेंगे। इसके सत्य की प्रसिद्धि के सामने

मेरी कुछ चल नहीं सकेगी। यहीं सोच कर सब चुप हो जाता थे। किसी एक समय उस नगर में धन कमाने के लिए बुद्धिमान सागरदत्त नाम का सेठ पद्मखंडपुर नाम के नगर से आया। वह अपने अमूल्य पाँच रत्न सत्यघोष के समीप रख गया और स्वयं आगे धन कमाने के लिए गया बाहर जाकर उसने बहुत धन कमाया और लौटकर सिंहपुर आ रहा था कि पापकर्म के उदय से उसका जहाज नष्ट हो गया परन्तु सागरदत्त का कुछ पुण्यकर्म बाकी था इसलिए वह किसी एक लकड़ी के तख्ते पर बैठकर समुद्र के किनारे पर आ गया और फिर वहाँ से चलकर सत्यघोष के पास आ पहुँचा उस समय वह सागरदत्त एक रंक के समान आ रहा था उसे दूर से ही आते हुए देखकर सत्यघोष ने अपना विश्वास जमाने के लिए सीमावर्ती लोगों से कहा कि है लोगों! देखों यह मनुष्य जो आ रहा है सो ऐसा मालूम होता है कि इसका द्रव्य सब नष्ट हो गया हो इसलिए यह व्याकुल हो रहा है। अब यह यहाँ आकर मुझसे रत्न माँगेगा। इतने में ही सागरदत्त वहाँ आ गया और उसने प्रणाम कर सत्यघोष से कहा कि मैं जिन रत्नों को धरोहर रूप में रख गया था कृपाकर अब उनको दे दीजिये। सागरदत्त की यह बात सुनकर सत्यघोष ने उसका समस्त द्रव्य हरण करने के लिए समीपवर्ती लोगों से कहा कि देखों जो बात मैंने पहिले कही थी वह ठीक निकली। तब सागरदत्त ने कहा कि आप सब जानते हैं। तब सत्यघोष ने कहा किन्हीं यह ठग मनुष्य है इसे यहाँ से निकाल देना चाहिए। यह सुनते ही उन मनुष्यों ने उसे जबरदस्ती वहाँ से निकलवा दिया। बिचारा सागरदत्त सब तरह से लाचार होकर रोता हुआ उसी नगर में घूमने लगा और चिल्ला—चिल्लाकर कहने लगा कि सत्यघोष ने मेरे पाँच माणिक्य मार लिए हैं। राजभवन के पास एक इमली का वृक्ष था। उसी पर चढ़कर सवेरे के समय यहीं कह—कहकर वह प्रतिदिन पुकार मचाने लगा। इस प्रकार पुकार करते—करते उसे छह महीने हो गये। तब एक दिन रानी ने राजा से कहा कि हे देव! यह पुरुष सदा एक—सी पुकार करता है? राजा के सलाह पर रानी ने कहा कि हे देव! संभव है ऐसा हो। रानी के इतना कहने पर महाराज ने आज्ञा दी कि तू ही इसकी परीक्षा कर। इस

प्रकार रानी को परीक्षा करने की आज्ञा मिल चुकी थी और प्रातःकाल ही वह पुरोहित महाराज के पास प्रणाम करने के लिए आया था। रानी ने उस दुष्ट पुरोहित को देखते ही बुलाया और पूछा कि हे मित्र! आज सवेरे ही कैसे आये? पुरोहित ने कहा कि आज मेरा साला आया है। वह भोजन करने के लिए घर बैठा है। इसीलिए मैं यहाँ चला आया। रानी ने फिर कहा कि अच्छा आज कुछ देर तक यहाँ ही ठहरना। हे तात! आज मुझे कुछ पासा खेलने की इच्छा हुई है, मैं आज तुम्हारे ही साथ पासे से खेलूँगी। रानी के इतना कहते ही वहाँ पर महाराज आ पहुँचे और उन्होंने भी आज्ञा दे दी कि महारानी की इच्छा पूरी करो। इस प्रकार रानी ने पुरोहित को तो रोक लिया और निपुणमती नाम की किसी चतुर वेश्या को बुलाकर और उसे एकांत में ले जाकर उसके कान में सब बात समझाकर कह दी और कहा कि देख, तू पुरोहित के घर जा, पुरोहितानी से कहना कि 'पुरोहित जी महारानी के पास बैठे हैं।' उन्होंने उस परदेशी पागल के माणिक मँगाये हैं उन। माणिकों से उन्हें आवश्यक कार्य है। मुझे इसीलिए आपके पास भेजा है। इस प्रकार उसकी स्त्री से कहकर और उन माणिकों को लेकर शीघ्र ही मेरे पास आ जा। यह सब समझ—बूझकर वह पुरोहितानी के पास गई, उससे जाकर सब बात कही परन्तु उस पुरोहितानी को भी सदा झूठ बोलने का अभ्यास था और पुरोहित न देने के लिए कह रखा था इसलिए उसने वे माणिक दिये ही नहीं तब लाचार होकर वह वेश्या रानी के पास लौट आई और आकर कहा कि वह पुरोहितानी उन माणिकों को किसी तरह नहीं देती है। इस बीच में रानी ने उस पांसे के खेल में पुरोहित की एक अँगूठी जीत ली थी अतएव रानी ने पुरोहित के चिह्न रूप में वह अँगूठी भेजी तथापि पुरोहितानी ने ब्राह्मण के डर से वे रत्न नहीं दिये। इधर रानी ने पुरोहितजी का यज्ञोपवीत और उसमें बँधी हुई वह कैंची भी जीत ली थी इसलिए रानी ने उस वेश्या के साथ चिह्न रूप में वे दोनों चीज भेजकर वे रत्न मँगाये अबकी बार जनेऊ और कैंची दोनों चीजें देखकर पुरोहितानी को विश्वास हो गया और उसने शीघ्र ही वे रत्न निकालकर दे दिये वेश्या ने वे रत्न लाकर रानी को दे दिये और रानी ने वे बहुमूल्य माणिक

राजा को दिखाये अब राजा ने उस सेठ की भी परीक्षा लेनी चाही। इसलिए उसने अपने घर के बहुत से माणिकों में मिलाकर वे माणिक रख दिये और सेठ को बुलाकर कहा कि इनमें जो माणिक तुम्हारे हो वे परीक्षा करके निकाल लो। तब सेठ ने अपने माणिक छाँट लिए सागरदत्त के इस कार्य से राजा को बहुत संतोष हुआ। शुभ कर्म के उदय से सागरदत्त सेठ को अपने नगर का राजश्रेष्ठी बना लिया सो ठीक ही है क्योंकि सत्य और संतोष के माहात्म्य से इस संसार में क्या—क्या प्राप्त नहीं होता है। सत्य के माहात्म्य से देव भी सेवक समान हो जाते हैं फिर मनुष्यों को राज्य के सुख की तो बात ही क्या है तदनन्तर राजा ने महा झूठ बोलने वाले सत्यघोष से पूछा कि बता तू यह काम किया है या नहीं इसके उत्तर में पुरोहित ने कहा कि हे देव! मैं ऐसा निंद्य कर्म नहीं कर सकता। क्या मैं ऐसा महापाप करने वाला काम कर सकता हूँ तदनन्तर महाराज उसके काम से बहुत ही क्रोधित हुए और उन्होंने उसके लिए तीन प्रकार का दण्ड निश्चित किया। या तो वह तीन थाली गोबर की खावे या दुर्मति किसी मल्ल के तीन धूंसे खावे अथवा उस दोष को शांत करने के लिए अपना सब धन दे देवे। पुरोहित ने सोच—विचार कर पहिले गोबर खाना प्रारंभ किया जब उसे न खा सका तब मल्ल के धूंसे खाये, उनकी भी पूरी चोट न सह सका तब अपना सब धन देना प्रारंभ किया। तब उस लोभी और पापी ने फिर गोबर खाना आदि तीनों प्रकार के दण्डों को सहा। इस प्रकार उस नीच को तीनों प्रकार के दण्ड सहन करने पड़े इस प्रकार तीनों प्रकार के दण्डों को भोगकर वह मरा और अतिशय लोभ के कारण राजा के भंडार में गंधन् नाम का सर्प हुआ। वहाँ पर वह दिव्य अर्गिन से मरकर यहाँ पापकर्म के उदय से किसी वन में कुकुर्ट नाम का सर्प हुआ। वहाँ पर उसने किसी व्रती राजा को काटा था इसलिए मरकर नरक में जा उत्पन्न हुआ। इस प्रकार केवल मिथ्या भाषण करने से अनेक दुःखों से परिपूर्ण संसार सागर में गोते खाये इस महा निन्द्य असत्य वचन के फल से जीवों का घात करने वाला मूर्ख राजा वसु आदि और भी अनेक जीव नरक में गये हैं वे सब असत्य रूप महापाप से कलंकित थे इसलिए इस संसार में उन

सबकी कथा भी कोई नहीं कह सकता इस कथा को सुनकर विद्वान् लोगों को इस लोक और परलोक दोनों लोकों में दुःख देने वाले असत्य वचन प्राणों का नाश होने पर भी कभी नहीं कहने चाहिए। हे वत्स! यदि तुझे मोक्ष प्राप्त करना है तो तू सदा सत्य वचन ही बोल, क्योंकि संसार में सत्य वचन ही समस्त श्रुतज्ञान को प्रगट करने वाले हैं, कीर्तिरूपी बेल को बढ़ाने के लिए अच्छे पानी के समान हैं, पुण्यरूपी वन के लिए बरसाती मेघ है निर्मल सुख के समुद्र हैं बुद्धि-सिद्धि के देने वाले हैं, शुभ गति के कारण हैं और धर्म के स्वामी तीर्थकर भी इसकी सेवा करते हैं। इसलिए तू सदा सत्य वचन ही बोल।

सत्य न छिपे कभी छिपाये

चित्र और सम्भूत के पूर्वजन्म में दो गोपाल पुत्र मिले थे। उन्हें साधु की सत्संगति से सम्यकत्व की प्राप्ति हुई। वे दोनों वहाँ से मरकर देवलोक में देव हुए। वहाँ से च्युत कर क्षितिप्रतिष्ठित नगर में वे दोनों इन्ध्यकुल में जन्मे। यहाँ चार इन्ध्य श्रेष्ठपुत्र उनके मित्र बने। उन्होंने एक बार स्थविरों से धर्म श्रवण किया और विरक्त होकर प्रव्रजित हो गये। चिरकाल तक संयम का पालन किया। अंत में समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग करके ये छहों सौधर्म देवलोक के पदमगुल्म नामक विमान में चार पल्योपम की स्थिति वाले देव हुए। दोनों भूतपूर्व गोपाल पुत्रों को छोड़कर शेष चारों वहाँ से च्युत हुए। कुरुजनपद के इषुकार नगर में जन्मे। उनमें से एक जीव तो इषुकार नामक राजा बना, दूसरा उसी राजा की रानी कमलावती, तीसरा भृगु नामक पुरोहित और चौथा हुआ-भृगु पुरोहित की पत्नी यशा। बहुत काल बीता। भृगु पुरोहित के कोई पुत्र नहीं हुआ। पति-पत्नी दोनों, 'वंश कैसे चलेगा?' इस चिंता में ग्रस्त रहते थे।

दोनों गोपाल पुत्रों ने, जो अभी तक देवभव में थे, एक बार अवधिज्ञान से जाना कि वे दोनों इषुकार नगर में भृगु पुरोहित के पुत्र होंगे। वे श्रमणवेश में भृगु पुरोहित के यहाँ आये। पुरोहित दंपत्ति ने वंदना की। दोनों श्रमणवेशी देवों ने धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर पुरोहित

दंपत्ति ने श्रावकब्रत ग्रहण किये। श्रद्धावश पुरोहित दंपत्ति ने पूछा—'मुनिवर! हमें कोई पुत्र प्राप्त होगा या नहीं?' श्रमण युगल ने कहा—'तुम्हें दो पुत्र होंगे, किन्तु वे बचपन में ही दीक्षा ग्रहण कर लेंगे। उनकी प्रव्रज्या में तुम कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकोगे। वे मुनि बनकर धर्मशासन की प्रभावना करेंगे।' इतना कहकर श्रमणवेशी देव वहाँ से चले गये। पुरोहित दंपत्ति को प्रसन्नता हुई। भविष्यवाणी के अनुसार वे दोनों पुरोहित पत्नी यशा के गर्भ में आए। दीक्षा ग्रहण कर लेने के भय से पुरोहित दंपत्ति नगर को छोड़कर व्रजगाँव में आ बसे। यहाँ पुरोहित पत्नी यशा ने दो सुंदर पुत्रों को जन्म दिया। कुछ बड़े हुए। माता-पिता यह सोचकर की कहीं ये दीक्षा न ले लें, अल्प वयस्क पुत्रों के मन में समय-समय पर साधुओं के प्रति धृणा और भय की भावना पैदा करते रहते थे। वे समझाते रहते—देखो, बच्चों! साधुओं के पास कभी मत जाना। ये छोटे-छोटे बच्चों को उठाकर ले जाते हैं और उन्हें मारकर उनका मांस खा जाते हैं। उनसे बात भी मत करना।

माता-पिता की इस शिक्षा के फलस्वरूप दोनों बालक साधुओं से डरते रहते, उनके पास तक नहीं फटकते थे।

एक बार दोनों बालक खेलते—खेलते गाँव से दूर निकल गये, अचानक उसी रास्ते से उन्होंने कुछ साधुओं को अपनी ओर आते देखा, तो वे घबरा गये। अब क्या करें। बचने का कोई उपाय नहीं था। अतः झटपट पास ही एक सघन वटवृक्ष पर चढ़ गये और छिपकर चुपचाप देखने लगे कि, ये साधु क्या करते हैं? संयोगवश साधु भी उसी वृक्ष के नीचे आ गये। इधर-उधर देखा—भाला, रजोहरण से चींटी आदि जीवों को धीरे से एक और किया और बड़ी यातना के साथ बड़ की सघन छाया में बैठकर झोली में से पात्र निकाले और एक मंडली में भोजन करने लगे। बच्चों ने देखा कि उनके पात्रों में मांस जैसी कोई वस्तु नहीं है। सादा सात्विक भोजन है, साथ ही उनके दयाशील व्यवहार तथा करुणाद्रवित वार्तालाप देखा—सुना तो उनका भय कम हुआ। बालकों के कोमल निर्दोष मानस पर धूँधली—सी स्मृति जागी—ऐसे साधु तो हमने पहले कभी

नहीं देखे हैं, ये अपरिचित नहीं हैं।' ऊहापोह करते—करते कुछ ही क्षणों में उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वजन्म को स्मृति उन्हें स्पष्ट हो गई। उनका भय सर्वथा मिट गया। वे दोनों पेड़ से नीचे उतरे और साधुओं ने उन्हें प्रतिबोध दिया। दोनों बच्चों ने संसार से विरक्त होकर, मुनि बनने का निर्णय किया। वहाँ से वे सीधे माता—पिता के पास आये और अपना निर्णय बतलाया। भृगु पुरोहित ने उन्हें ब्राह्मण परंपरा के अनुसार बहुत कुछ समझाने और साधु बनने से रोकने का प्रयत्न किया, मगर सब व्यर्थ! उनके मन दूसरा कोई रंग नहीं चढ़ सका, बल्कि दोनों पुत्रों की युक्तिसंगत बातों से भृगु पुरोहित भी दीक्षा लेने को तत्पर हो गया।

“सत्य की विजय”

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर ताप।

जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदे आप॥

इस पद्य का सारांश यह है कि सच से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। ठीक ही है। इस पर एक दृष्टांत है, जो पाठकों के लाभार्थ यहाँ लिखा जाता है।

एक नगर में एक लड़का रहता था। उसकी माँ उसे बहुत चाहती थी। जब वह मरने लगी, तो उसने बेटे को बुलाकर कहा—‘बेटा! मेरे पास धन—दौलत नहीं है, जो तुम्हारे लिए छोड़ जाऊँ, लेकिन एक नसीहत यह करती हूँ कि लाख मुसीबत पड़े तब भी झूठ न बोलना और सर्वदा सच ही कहना।’ लड़के की उम्र उस समय दस या बारह वर्ष से अधिक न थी। परन्तु उसने माँ की बात गिरह में बाँध ली। कुछ दिन के उपरान्त वह लड़का जंगल में पहुँचा, तो मार्ग में उसे चोरों ने धेर लिया। एक चोर ने उससे पूछा—‘तुम्हारे पास कितना माल है?’ उत्तर में उस लड़के ने कहा—‘चालीस रुपये।’ चोर ने हँसी समझकर उसे छोड़ दिया। दूसरे चोर ने भी आकर वही प्रश्न किया। लड़के ने भी वही जवाब दिया कि मेरे पास चालीस रुपये हैं। चोर ने समझा कि शायद वह मसखरी कर रहा है। इसलिए उसने अपने एक दोस्त को भी बुलाया। दूसरे चोर ने उसकी कमर टटोल कर कहा—‘यह झूठा है।

इसके पास कुछ नहीं है।’ बच्चे ने कहा—‘नहीं महाशय! मैं झूठ नहीं बोलता मेरे पास जरूर चालीस रुपये हैं।’ चोरों ने पूछा—‘रुपये कहाँ हैं।’ लड़के ने कहा—‘मेरे कोट के अस्तर में सिले हुए हैं।’ यह कहकर उसने रुपये निकाल चोरों के सामने फेंक दिये। लड़के की इस सच्चाई को देखकर चोर दंग रह गये। उनके सरदार ने पूछा—‘तुमने सत्य—सत्य क्यों बतला दिया। यदि तुम नहीं बतलाते तो हम लोगों को पता लगाना भी कठिन हो जाता।’ इस पर लड़के ने कहा—‘मैं अपनी माँ के सामने की हुई प्रतिज्ञा को कभी भुला नहीं सकता। इसीलिए मैंने सच—सच कह दिया।’ यह सुनकर चोर घबरा गये और कहने लगे—‘हाय! तुम बालक होकर भी अपनी माँ के सामने की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए सर्वदा सच कहते हो और हम लोग ऐसे अधम हैं कि अपने जन्मदाता परमात्मा के प्रति की हुई अपनी प्रतिज्ञा को भी भूल गए हैं।’ सारांश यह कि इस घटना का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे उस लड़के के पैर पकड़कर रोने और पछताने लगे। उनको इतनी शर्म आई कि उन्होंने अपने पापकर्म पर सच्चे दिल से प्रायशिच्चत किया। अंत में सब चोरों ने हाथ जोड़कर अपने सरदार से कहा—‘जिस प्रकार आप अब तक बुराइयों में हमारे मालिक रहे हैं। उसी तरह अब अच्छे कर्मों में भी हमारे सरदार बने रहें।’ अभिप्राय यह कि वह चोर उसी लड़के को अपना गुरु मानकर तथा सारे झँझटों से छुटकारा पाकर परमात्मा का भजन करने में लग गये। देखा आपने एक बालक ने अपने सत्य बल से चोर मंडली को शक्त मंडली बना दिया ठीक है—आत्मा की शुद्धता से चोरी आदि बुरे कर्मों का बिल्कुल अंत ही हो जाता है। फारसी के प्रसिद्ध शायर शेख सादी साहब फरमाते हैं।

“रास्ती मूजिवे रजाय खुदास्त”

एक उर्दू के कवि की भी उक्ति सुनिए। देखिए, कैसा अच्छा भाव है—रास्ती सीधी सड़क है, इसमें कुछ खटका नहीं कोई रहबर आज तक इस राह में भटका नहीं। अंत में एक संस्कृत का वाक्यांश उद्धत कर इस उपाख्यान को समाप्त करते हैं।

“सत्यम् जयते नानृतम्!”

कटु वचन न बोले

कुण्डधान स्थाविर के पूर्वजन्म के पापकर्म के कारण, प्रव्रजित होने के समय से लेकर सदा उनके पीछे—पीछे एक स्त्री दिखाई देती थी। उसे कुण्डधान स्थाविर नहीं देखते थे, किन्तु शेष सब लोग देखकर निंदा करते थे। एक दिन को सल नरेश प्रसेनजित इसकी परीक्षा करने के लिए जेतवन आया और बहुत परीक्षा करके स्थाविर को निर्दोष पाकर उन्हें प्रतिदिन अपने यहाँ भोजन करने के लिए निमंत्रित करके चला गया। जब इन बातों को भिक्षुओं ने सुना, तब कुण्डधार स्थाविर और राजा दोनों को भला—बुरा कहने लगे। कुण्डधान स्थाविर ने भिक्षुओं की बात सुनकर उल्टे उन्हीं को भला—बुरा कहा। तब यह बात भिक्षुओं ने भगवान से कही। भगवान ने कुण्डधान स्थाविर को बुलाकर सारी बातें पूछी—भिक्षु! तू पूर्वजन्म की अपनी बुरी दृष्टि के कारण इस निंदा को प्राप्त हुआ और इस समय भी भिक्षुओं को बुरा—भला कह रहा है। तुझे उचित है कि भिक्षुओं द्वारा निंदा किये जाने पर भी चुप रहो। ऐसा करते हुए निर्वाण को पा लेंगे। कहकर उपदेश देते हुए इन गाथाओं से कहा—

मावोय करुसं कण्ठिच वुत्ता पटिवदेय्यु तं।

दुक्खा हि सारम्भ—कथा परिदण्डा कुस्सेय्यु तं ॥५॥

(धर्मपद) 95

सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा।

एय पत्तोसि निवान सारम्भो ते न तिश्रिति ॥६॥

कटु वचन न बोलो पर (दूसरे भी वैसे ही) तुझे बोलेंगे। प्रतिवाद दुःखदायक होता है, उसके बदले में तुझे दण्ड मिलेगा।

यदि तू अपने को टूटे काँसे की भाँति निःशब्द कर लोगे, तो तूने निर्वाण पा लिया, तेरे लिए प्रतिवाद नहीं।

हितकर को करना दुष्कर है

(संघ में फूट डालने की कथा)

भगवान् के वेणुवन में विहार करते समय एक दिन देवदत्त ने आनंद स्थविर को भिक्षाटन करते हुए देखकर उनसे संघ भेद करने के अपने अभिप्राय को कहा। स्थविर ने जाकर भगवान् को सुनाया—“भन्ते! आज मेरे भिक्षाटन करते समय देवदत्त ने कहा—“आनंद! आज से लेकर मैं भगवान् और भिक्षु—संघ से अलग ही उपोसथ तथा सांधिक कर्म करूँगा। भन्ते! देवदत्त आज संघ में फूट डालेगा और उपोसय तथा सांधिक—कर्म करेगा।” ऐसा कहने पर भगवान् ने—“आनन अपना अहितकर कर्म सुकर होता है किन्तु हितकर ही दुष्कर होता है।” कहकर इस गाथा को कहा—

सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च।

यं वे हितश्च साधून्त्वं तं वे परमदुक्करं ॥७॥

बुरी बातों का करना बड़ा आसान है जिनसे अपना ही अहित होता है, (किन्तु) उसे करना बड़ा दुष्कर है जो अच्छा और हितकर है।

शासन की निन्दा धातक है

श्रावस्ती की एक उपासिका काल स्थविर को पुत्र की भाँति मानती थी और सदा उनका आदर—सत्कार करने को तत्पर रहती थी। काल स्थविर यह सोचकर उसे भगवान् के पास उपदेश सुनने नहीं जाने देते थे कि वह भगवान् के उपदेश को सुनकर उन्हें पूर्ववत् नहीं मानेगी। पड़ौसियों द्वारा भगवान् के उपदेश की प्रशंसा को सुनकर उपासिका से नहीं रह गया। वह उपदेश के दिन भगवान् के पास गई और उपदेश सुनने लगी। जब काल स्थविर को ज्ञात हुआ, तब वे जेतवन गए और उपासिका को उपदेश सुनते हुए देखकर भगवान् से कहे “भन्ते! यह मूर्खा है सूक्ष्म धर्मोपदेशक नहीं जानती है, इसे गंभीर धर्मोपदेशक न देकर दान या शील संबंधी उपदेश दीजिये।”

शास्ता ने काल स्थविर के विचारों को जान—“दुष्प्रज्ञ तू अपनी

बुरी धारणा के कारण बुद्धों के शासन की निंदा करता है, अपने ही घात के लिए प्रयत्न करता है।" कहकर इस गाथा को कहा—

यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।

पटिक्कोसति दुम्मेघो दिव्हिं निस्साय पापिकं ।

फलानि कहुकस्सेव अत्तधञ्जाय फल्लति ॥४॥

जो धर्मात्मा श्रेष्ठ अर्हतों के शासन की—अपनी पापमयी मिथ्या धारणा के कारण निंदा करता है, वह अपनी ही बर्बादी करता है जैसे बाँस का फूल बाँस को ही नष्ट कर देता है।

वाक् असंयम का फल

'मगध देश में फुल्लोत्पल नाम एक सरोवर है। वहाँ बहुत काल से संकट और विकट नामक दो हंस रहा करते थे उन दोनों का मित्र एक कम्बुग्रीव नाम कछुआ रहता था। फिर एक दिन धीवरों ने वहाँ आकर कहा कि—आज हम यहाँ रहकर प्रातःकाल मछली कछुआ आदि मारेंगे यह सुनकर कछुआ हंसों से कहने लगा—'मित्रो! धीवरों की यह बात मैंने सुनी। अब मुझे क्या करना उचित है? हंसों ने कहा—'समझ लो। फिर प्रातःकाल जो उचित हो सो करना।' कछुआ बोला—'ऐसा मत कहो, क्योंकि मैं यहाँ पर भय देख चुका हूँ।'

(हितोपदेशः पृ. 215 से)

वे दोनों बोले—'यहा कथा कैसे है?' कछुआ कहने लगा—'पहले इसी सरोवर पर जब ऐसे ही धीवर आये थे तब तीन मछलियों ने विचार किया। और उनमें अनागत विधाता नाम एक मच्छ था, उसने विचा किया—'मैं तो दूसरे सरोवर को जाता हूँ।' इस प्रकार कहकर वह दूसरे सरोवर को चला गया। फिर दूसरे प्रत्युत्पन्नमति नाम मच्छ ने कहा—'होने वाले काम में निश्चय न होने से मैं कहाँ जाऊँ? इसलिए काम आ पड़ने पर जैसा होगा वैसा करँगा। जो उत्पन्न हुई आपत्ति का उपाय करता है वह बुद्धिमान् है, जैसे कि बनिये की स्त्री ने प्रत्यक्ष में जार को छुपा लिया।'

यदभविष्य पूछने लगा—'यह कथा कैसी है?' प्रत्युत्पन्नमति ने कहा—'किसी समय विक्रमपुर में समुद्रदत्त नामक एक बनिया रहता था। उसकी रत्नप्रभा नाम स्त्री अपने सेवक के संग सदा व्यभिचार किया करती थी। पीछे एक दिन उस रत्नप्रभा को उस सेवक का मुख चुम्बन करते हुए समुद्रदत्त ने देख लिया। फिर वह व्यभिचारिणी शीघ्र अपने पति के पास जाकर बोली—'स्वामी! इस सेवक को बड़ा सुख है, क्योंकि यह चोरी करके कपूर खाया करता है, यह मैंने इसका मुख सूँघ कर जान लिया। यह सुनकर सेवक ने क्रोध कर कहा—'हे स्वामी! जिस स्वामी की ऐसी स्त्री है वहाँ सेवक कैसे टिक सकता है कि जहाँ क्षण—क्षण में घरवाली सेवक का मुख सूँघती है?' फिर वह उठकर जाने लगा, तब बनिये ने बड़ी कोशिश से समझाकर उसे रख लिया। इसलिए मैं कहता हूँ—'आपत्ति के उत्पन्न होने पर आदि।'

'यदभावि न तदभाणि भावि चेत्र तदन्यथा।'

इति चिन्ताविषन्धोऽयमगदः किं न पीयते?

फिर यदभविष्य ने कहा—'जो होनहार नहीं है वह कभी नहीं होगा, और जो होनहार है उससे उल्टा कभी न होगा अर्थात् होनहार अवश्य होगा यह चिंतारूपी विष का नाश करने वाली औषध क्यों नहीं पीते हो?

फिर प्रातःकाल जाल से बँधकर प्रत्युत्पन्नमति अपने को मरे के समान दिखला कर बैठ रहा। फिर जाल से बाहर निकाला हुआ अपनी शक्ति के अनुसार उछल कर गहरे पानी में धुस गया और यदभविष्य को धीवरों ने पकड़ लिया और मार डाला। इसलिए मैं कहता हूँ—'अनागतविधाता आदि।' सो जिस प्रकार मैं दूसरे सरोवर को पहुँच जाऊँ वैसे करो।' दोनों हंस बोले—'दूसरे सरोवर के जाने में तुम्हारी कुशल है। परन्तु पटपड़ में तुम्हारे जाने का कौनसा उपाय है?' कछुआ बोला—'जिस प्रकार मैं तुम्हारे साथ आकाश मार्ग से जाऊँ वैसा करो।' हंसों ने कहा—'उपाय कैसे हो सकता है?' कछुए ने कहा—'तुम दोनों एक काठ के टुकड़े को चोंच से पकड़ लो और

मैं गुख से पकड़कर चलूँगा और तुम्हारे पंखों के बल से मैं सुख से पहुँच भी जाऊँगा।'

हंस बोले—'यह उपाय तो हो सकता है, परन्तु—

उपायं चिन्तयन् प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत् ।

पश्यतो बकमूर्खस्य नकुलैर्भक्षिताः प्रजाः ॥

पंडित को उपाय सोचना चाहिए साथ—साथ और विपत्ति का भी विचार करना चाहिए। जैसे मूर्ख बगुले के देखते—देखते नेवले सब बच्चे खा गये।

कछुआ पूछने लगा—'यह कथा कैसी है?' वे दोनों कहने लगे—'उत्तर दिशा में गृधकूटक नाम पर्वत पर एक बड़ा पीपल का पेड़ है। उस पर बहुत से बगले रहते थे। उस वृक्ष के नीचे बिल में एक साँप बगुलों के छोटे—छोटे बच्चों को खा लिया करता था। फिर शोक से व्याकुल बगुलों के विलाप को सुनकर किसी बगुले ने कहा—'ऐसा करो तुम मछलियों को लेकर नेवले के बिल से साँप के बिल तक लगातार फैला दो। फिर उनको खाने के लोभी नेवले वहाँ आकर साँप को देखेंगे और अपने स्वभाव वैर से उसे मार डालेंगे। ऐसा करने पर वैसा ही हुआ। पीछे उस वृक्ष के ऊपर नेवलों ने बगुलों के बच्चों का चहचहाट सुना। फिर उन्होंने पेड़ पर चढ़कर बगुलों के बच्चे खा लिए। इसलिए हम दोनों कहते हैं कि 'उपाय को सोचना चाहिए' इत्यादि। और हम दोनों से ले जाते हुए तुमको देखकर लोक कुछ कहेंगे ही। वह सुनकर जो तुम उत्तर दोगे तो तुम मरोगे। इसलिए चाहे जो कुछ भी हो, पर यहाँ ही रहो।' कछुआ बोला—'क्या मैं मूर्ख हूँ? मैं उत्तर नहीं हूँ। कुछ न बोलूँगा। और वैसा करने पर कछुए को वैसा देखकर सब ग्वाले पीछे दौड़े और कहने लगे कोई कहता था—जो यह कछुआ गिर पड़े तो यहाँ ही पकाकर खा लेना चाहिए। कोई कहता था यहाँ ही इसे भूनकर खा लें। कोई कहता था कि घर ले चलकर खाना चाहिए। उन सभी का वचन सुनकर वह कछुआ क्रोध युक्त होकर पहले उपदेश को भूलकर बोला—'तुम सभी को धूल फाँकनी चाहिए।' यह कहते ही गिर पड़ा और उन्होंने मार डाला।'

(हितोपदेश: पृ. 215 से 220)

झूठ बोलने का फल

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व त्रयोत्रिंश—भवन में एक देवपुत्र हुए। उस समय वाराणसी में महोत्सव था। बहुत से नाग, गरुड़ और भुम्भुक देवताओं ने आकर उत्सव देखा। त्रयोत्रिंश भवन से भी चारों देवपुत्र कक्कार नाम के दिव्य पुष्पों से बने गजरे पहन उत्सव देखने आये। बारह योजन का नगर उन फूलों की सुगंध से महक गया। मनुष्य सोचते थे—इन पुष्पों को किसने पहना है? उन देवपुत्रों ने जब देखा कि, लोग हमें खोज रहे हैं तो वे राजाङ्गण में ऊपर उठ महान् देवता—प्रताप से आकाश में स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा, सेही तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे लोगों ने पूछा—'स्वामी! किस देवलोक से आना हुआ?'

"त्रयस्तिंश देवलोक से आये हैं।"

"किस कार्य से आए हैं?"

"उत्सव देखने के लिए।"

"इन फूलों का क्या नाम है?"

"यह दिव्य कक्कारु पुष्प है।"

"स्वामी! आप दिव्यलोक में दूसरे पहन लें। यह हमें दे दें।"

"यह दिव्य—पुष्प बड़े प्रताप वाले हैं। देवताओं के ही योग्य हैं। मनुष्य लोक में रहने वाले खराब, मूर्ख, तुच्छ विचार वाले, दुश्चरित्र लोगों के योग्य नहीं, लेकिन जिन लोगों में यह गुण हो उनके योग्य हैं।"

इतना कह, उनमें जो ज्येष्ठ, देवपुत्र था, उसने यह पहली गा था कही—

कायेन यो नवाहरे वाचाय न गुसाभणे,

यसो लद्धा न मज्जेय्य सवे कक्कारुमरहति ॥

जो काय से किसी की कोई चीज हरण न करे, वाणी से झूठ न बोले तथा ऐश्वर्य मिलने पर प्रमादी न हो, वही कक्कारु के योग्य है।

इसलिए जो इन गुणों से युक्त हो, माँगे, दे देंगे। यह सुन पुरोहित ने सोचा, यद्यपि मुझमें इन गुणों में से एक भी गुण नहीं है, तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले पहनूँ। इससे जनता मुझे इन गुणों से युक्त समझेगी।” मैं इन गुणों से युक्त हूँ। कह उसने वे पुष्प मँगवा कर पहने। तब उसने दूसरे देवपुत्र से याचना की—

धर्मेन वित्रमेसेय न निकल्या, धनं हरे,
भोगे लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति ॥

जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और भोग्य वस्तुओं के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पाने के योग्य है।

पुरोहित ने ‘मैं इन गुणों से युक्त हूँ।’ कह मँगवा, पहनकर, तीसरे देवपुत्र से याचना की। वह तीसरी गाथा बोला—

यस्स चित्रं अहालिद्वं सद्धा च अविरागिनी,
एको सादुं न भुज्जेय्य सवे कक्कारुमरहति ॥

जिन का चित्त हल्दी की तरह नहीं अर्थात् स्थिर प्रेम वाला है और जिसकी श्रद्धा दृढ़ है और जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेला नहीं खाता वही कक्कारु के योग्य है।

पुरोहित ने ‘मैं इन गुणों से युक्त हूँ।’ कह उन फूलों को मँगवा, पहनकर, चौथे देवपुत्र से याचना की। उसने चौथी गाथा कही—

समुखा वा तिरोक्खा वा यो सन्ते न परिभासिति ।
यथावादी तथाकारी सवे कक्कारुमरहति ॥

जो न सामने और न अनुपस्थिति में ही संत जनों की हँसी उड़ाता है, जो जैसा कहता है वैसा ही करता है वह कक्कारु के योग्य है।

पुरोहित ने ‘मैं इन गुणों से युक्त हूँ।’ कह उन्हें भी मँगवाकर पहना। चारों देवपुत्र चारों गजरे पुरोहित को ही देकर देव लोक गए। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर में बड़ा दर्द हुआ। ऐसा लगता था जैसे तेज धार से काटा जाता हो हो वा लोहे के पट्टे से रगड़ा

जाता हो। वह दुःख से पीड़ित हो इधर-उधर लौटता हुआ जोर से चिल्लाया। क्या बात है? पूछने पर बोला—

मैंने अपने में जो गुण नहीं है उनके बारे में झूठ ही है, कहकर वह देवपुत्रों से ये पुष्प माँगे। इन्हें सिर पर से ले जाओ।

उन्हें निकालने का प्रयत्न करने पर न निकाल सके। लोहे से जकड़े जैसे हो गये। उसे उठाकर घर ले गये। उसके बहाँ चिल्लाते हुए सात दिन बीत गये। राजा ने अमात्यों को बुलाकर पूछा—‘दुश्चरित्र ब्राह्मण मर जाएगा, क्या करें?’

“देव! फिर उत्सव कराये। देवपुत्र फिर आयेंगे।”

राजा ने फिर उत्सव कराया। देवपुत्र फिर आये और सारे नगर को फूलों की सुगंधि से महकाकर उसी तरह राजाङ्गण में स्थित हुए।

जनता ने उस दुष्ट ब्राह्मण को ला देवताओं के सामने पीठ के बल लिटा दिया। उसने देवपुत्रों से याचना की—‘स्वामी मुझे जीवन दान दें। वे देवपुत्र बोले—“ये फूल तुझे दुष्ट, दुश्शील, पाजी के योग्य नहीं हैं। तूने सोचा इन्हें ठगूँगा। तुझे अपने झूठ बोलने का फल मिला।” इस प्रकार देवपुत्र जनता के बीच में उसकी निंदा कर, सिर से फूलों का गजरा उतार जनता को उपदेश दे, अपने स्थान पर चले गए। (जातक—III पृ.नं. 254)

अपने विरोधी के साथ सम्मानपूर्वक समझौता होने का अवसर न खोना और उसे अपने विचारों में ले आना भी सत्याग्रह का ही एक अंग है। (महात्मा गांधी)

विभिन्न धर्मो में वर्णित सत्य

वैदिक धर्म में वर्णित सत्य-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

एवं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येवीन्मनुः ॥ मनुस्मृति 63

अहिंसा (किसी को भी मन, वाणी और शरीर से दुःख न देना) सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, पवित्रता और इन्द्रियों का निग्रह करना ये संक्षेप से चारों वर्णों का धर्म मनुजी ने कहा है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचनिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्मं लक्षणम् ॥ (92)

संतोष, क्षमा, मन को दबाना, अन्याय से किसी की वस्तु न लेना, शारीरिक, पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह (विषयों से उन्हें रोकना), बुद्धि (शास्त्रादि तत्व का ज्ञान), विद्या (आत्म बोध), सत्य (यथार्थ कथन), क्रोध न करना ये दस धर्म के लक्षण हैं।

महाभारत में वर्णित सत्य-

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः ।

सत्यमेव नमस्येत् सत्यं हि परमा गतिः ॥ (4)

सत्पुरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन हुआ है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा सिर झुकाना चाहिए; क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है।

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।

सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ (15)

सत्य ही धर्म तप और योग है। सत्य ही सनातन ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

सत्य के 13 भेद-

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः ।

अमात्सर्य क्षमा चैव हीस्तितिक्षानसूयता ।

त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा ।

अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश ॥ (9)

राजेन्द्र! सत्य, समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा (सहनशीलता) अनसूया, त्याग, परमात्मा का ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण), निरंतर स्थिर रहने वाली धृति (धैर्य) तथा अहिंसा—ये तेरह सत्य के ही स्वरूप हैं इसमें संशय नहीं है।

सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च ।

सर्वधर्माविरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते ॥ (10)

नित्य एकरस, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्य का लक्षण है। समस्त धर्मों के अनुकूल कर्तव्य पालन रूप योग द्वारा इस सत्य की प्राप्ति होती है।

आत्मनिष्टे तथानिष्टे रिषेः च समता तथा ।

इच्छाद्वेषक्षयं प्राप्य कामक्रोधक्षयं तथा ॥ (11)

अपने प्रिय मित्र में तथा अप्रिय शत्रु में भी समान भाव रखना 'समता' है। इच्छा, (राग) द्वेष, काम और क्रोध को मिटा देना ही समता की प्राप्ति का उपाय है।

दमो नान्यस्पृहा नित्यं गाम्भीर्यं धैर्यमेव च ।

अभयं रोगशमनं ज्ञानेनैतदवाप्यते ॥ (12)

किसी दूसरे की वस्तु को लेने की इच्छा न करना, सदा गंभीरता और धीरता रखना, भय को त्याग देना तथा मन के रोगों को शांत कर देना—यह 'दम' (मन और इन्द्रियों में संयम) का लक्षण है। इसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है।

अमात्सर्य बुधाः प्राहुर्दर्ने धर्मे च संयमः

अवस्थितेन नित्यं च सत्येनामत्सरी भवेत् ॥ (13)

दान और धर्म करते समय मन पर संयम रखना अर्थात् इस विषय में दूसरों से ईर्ष्या न करना इसे विद्वान् लोग 'मत्सरता का अभाव' कहते हैं। सदा सत्य का ही पालन करने से मनुष्य मत्सरता से रहित हो सकता है।

अक्षमायाः क्षमायाश्च प्रियाणीहप्रियाणि च ।

क्षमते सम्मतः साधुः साध्वाप्नोति च सत्यवाक् । (14)

जो सहने और न सहने योग्य व्यवहारों तथा प्रिय और अप्रिय वचनों को भी समान रूप से सहन कर लेता है, वहीं सर्वसम्मत, क्षमाशील श्रेष्ठ पुरुष है। सत्यवादी पुरुष को ही उत्तम रीति से क्षमा भाव की प्राप्ति होती है।

कल्याणं कुरुते बादं धीमान् न गलायते क्वचित् ।

प्रशान्तवांगना नित्यं हीस्तु धर्मदिवाप्यते । (15)

जो बुद्धिमान् पुरुष भली-भाँति दूसरों का कल्याण करता है और मन में भी कभी खेद नहीं मानता, जिसकी मन वाणी सदा शांत रहती है, वह लज्जाशील माना जाता है। यह लज्जा नामक गुणधर्म के आचरण से प्राप्त होता है।

धर्मार्थहेतोः क्षमते तितिक्षा क्षान्तिरुच्यते ।

लोकसंग्रहणार्थं वै सा तु धैर्येण लभ्यते । (16)

धर्म और अर्थ के लिए मनुष्य जो कष्ट सहन करता है, उसकी वह सहनशीलता 'तितिक्षा' कहलाती है। लोगों के सामने आदर्श उपस्थित करने के लिए उसका अवश्य पालन करना चाहिए। तितिक्षा की प्राप्ति धैर्य से होती है। (दूसरों के दोष न ढूँढ़ना 'अनसूया' है।)

त्यागः स्नेहस्य यत् त्यागो विषयाणां तथैव च

रागद्वेषप्रहीणस्य त्यागो भवति नान्यथा । (17)

विषयों की आसक्ति का त्याग जो है, वहीं वास्तविक त्याग है। राग-द्वेष से रहित होने पर ही त्याग की सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं (परमात्म चिंतन का नाम ही 'ध्यान' है)।

आर्यता नाम भूतानां यः करोति प्रयत्नतः ।

शुभं कर्म निराकारो वितरागस्तथैव च । (18)

जो मनुष्य अपने को प्रकट न करके प्रयत्नपूर्वक प्राणियों की भलाई का काम करता रहता है, उसके उस श्रेष्ठ भाव और आचरण का नाम ही 'आर्यता' है। यह आसक्ति के त्याग से आती है।

धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियाम् ।

तां भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छैद भूतिमात्मनः । (19)

सुख या दुःख प्राप्त होने पर मन में विकार न होना 'धृति' है। जो अपनी उन्नति चाहता हो, उस बुद्धिमान् पुरुष को सदा धृति का सेवन करना चाहिए।

सर्वथा क्षमिणा भाव्यं तथा सत्यपरेण च ।

वीतहर्षभयक्रोधो धृतिमाप्नोति पण्डितः । (20)

मनुष्य को सदा क्षमाशील होना तथा सत्य में तत्पर रहना चाहिए, जिससे हर्ष, भय और क्रोध तीनों कोत्याग दिया है। उसने विद्वान् पुरुष को ही 'धैर्य' की प्राप्ति होती है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।

अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः । (21)

मन, वाणी और क्रिया (से) द्वारा सभी प्राणियों के साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान यह श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है।

एते त्रयोदशाकाराः पृथक् सत्यैकलक्षणाः ।

भजन्ते सत्यमेवेह बृहयेन्ते च भारत । (22)

ये पृथक्-पृथक् तेरह रूपों में बताये हुए धर्म एकमात्र सत्य को ही लक्षित कराने वाले हैं। ये सत्य का ही आश्रय लेते और उसी की वृद्धि एवं पुष्टि करते हैं।

नान्तः शक्यो गुणानां च वक्तुं सत्यस्य पार्थिव ।

अतः सत्यं प्रशंसन्ति विप्राः सपितृदेवताः । (23)

पृथ्वीनाथ! सत्य के गुणों की सीमा नहीं बताई जा सकती। इसलिए पितर और देवताओं के सहित ब्राह्मण सत्य की प्रशंसा करते हैं।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्। (24)

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और असत्य से बढ़कर कोई पातक नहीं है। सत्य ही धर्म की आधारशिला है, अतः सत्य का लोप न करें।

उपैति सत्यादु दानं हि तथा यज्ञाः सदक्षिणाः।

त्रैताग्निहोत्रं वेदाश्च ये चान्ये धर्मः निश्चया। (25)

दान और दक्षिणा सहित यज्ञ का, त्रिविध अग्नियों में हवन का, वेदों के स्वाध्याय का तथा अन्य जो धर्म का निर्णय करने वाले शास्त्र हैं, उनके भी अध्ययन का फल मनुष्य सत्य से प्राप्त कर लेता है।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।

अश्वमेधसहस्राद्वि सत्यमेव विशिष्यते। (26)

यदि एक ओर एक हजार अश्वमेध यज्ञों को और दूसरी ओर एकमात्र सत्य को तराजू पर रखा जाय तो एक हजार अश्वमेध यज्ञों की अपेक्षा सत्य का ही पलड़ा भारी होगा।

बौद्ध धर्म में वर्णित सत्य-

अनुपवादो अनुपधातो पातिमोक्षे च संवरे।

मतञ्जुता च भत्स्मि पन्तंच सायनासन।

अधिचित्ते च आयोगो एवं बुद्धान् सासनं। (7)

निंदा न करना, घात न करना, प्रतिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकांतवास, चित्त को योग में लगाना यह बौद्धों की शिक्षा है।

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्भ्मदेसना।

सुखा संघस्स सामग्गी समग्गान तपो सुखो। (16)

सुखदायक है बुद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्ब्रह्म का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकता युक्त तप करना।

सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मर्थं सच्चवादिनं।

अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं। (19)

जो शील और दर्शन (सम्यग्दृष्टि) से संपन्न, धर्म में स्थित, सत्यवादी और अपने कामों को करने वाला है उसे (पुरुष) लोग प्रेम करते हैं।

अकोधेन जिने कोधं असाधुना जिने।

जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं। (13) (कोधवन्गो)

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता (भलाई) से जीते, कंजूस को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

सच्चं भणे न कुञ्जेष्य दज्जाप्स्मिम्पि याचितो।

एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान् सन्तिके। (4)

सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगने पर दे, इन तीनों से पुरुष देवताओं के पास जाता है।

अहिसका ये मनुयो निच्चं कायेन संवुता।

ये यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे। (5)

जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर में संयत है, वे उस अच्युत पद को प्राप्त करते हैं जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते हैं।

वचीपकोपं रक्खेय वाचाय संवुतो सिया

वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे। (12)

वाणी के दुराचरण से बचे, वाणी से संयत रहें। वाणी के दुराचार को छोड़ वाणी के सदाचार का आचरण करें।

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।

मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता। (14)

जो धीर पुरुष काय से संयत वाणी से संयत और मन से संयत रहते हैं, वे ही पूर्णरूप से संयत रहते हैं, वे ही पूर्णरूप से संयत हैं।

यो पाणमति पातेति मुसावादंच भासति ।

लोके अदिनं आदियति परदारं च गच्छति । (12)

सुरामेरयपानंच यो नरो अनुयुज्जति ।

दूधेवमेसो लोकस्मि॑ मूलं खनति अत्तनो । (13) (मलवग्गो)

जो जीव हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, पर—स्त्री गमन करता है, शराब—दारु पीता है वह इस संसार में अपनी ही जड़ खोदता है।

यहूदी धर्म में वर्णित सत्य—

प्रेम, करुणा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, श्रमनिष्ठा, भूमि की सेवा, अनाथों, पीड़ित और विधवाओं की सेवा सदाचार और पवित्रता यही तो है यहोवा को प्रसन्न करने के उपाय।

पारसी धर्म में वर्णित सत्य—

हम पवित्र विचार करें। पवित्र काम करें। हमारे विचार, हमारे वचन और हमारे कर्म सब पवित्र हों।

हे परम प्रभु परमेश्वर! तेरा सत् हमारे साथ हो। हम केवल वही सोचना चाहते हैं और वही कहना चाहते हैं, और करना चाहते हैं जिससे इहलोक और परलोक दोनों में हमारा कल्याण हो। प्रभु जरथुश्त्र के भक्तों, अपने हाथों, पैरों को और मन को तैयार रखो कि वे सत्कर्म करने में लेशमात्र की भी देर न करें। गलत कामों को हमेशा टाले। इस संसार में सत्य कर्म करने के लिए विशेष रूप से उत्सुक रहो, जिससे तुम ब्याज के सहित अपना कर्ज चुका सको।

इन बातों से अपने को कड़ाई से बचाओ—क्रोध, पराई निंदा, असत्य, कंजूसी, उद्दण्डता, जिद्दीपन, लूटपाट और अच्छाई का विरोध।

अभिमानिमार्द्दचेतसं पुरुष प्रहवयति प्रियं वचः । (1)

श्लोकार्धसूक्ति संग्रह पृ. 117

दयार्द्र चित्तवाले अभिमानी पुरुष को भी प्रियवचन नम्र कर देते हैं।

असत्यं पुरुष ग्राम्यं न जातु वचनं वदेत् । (2)

आर्यपुरुष कभी असत्य, कठोर और अश्लील वचन न बोलें।

अस्तमपि मन्यन्ते लोकाः सत्यं ससाक्षिकम् । (3)

अन्य की साक्षी पूर्वक कही गई असत्य बात भी सत्य मानी जाती है।

उपेयते सर्वजनैः प्रदेष्टा यथा समुद्रः सरिता समूहैः । (4)

जैसे नदियों का समूह समुद्र में सम्मिलित होता है वैसे ही विशेष वक्ता के सान्निध्य में जन समूह उपस्थित होता है।

कस्योन्नति न कुरुते भुवि साधुवाक्यं । (5)

संसार में साधु (जन) वचन किसकी उन्नति नहीं करते, अपितु सबका कल्याण करते हैं।

क्षिपेद् वाक्य शरांस्तीक्ष्णान् न पारुष्यव्युपल्लुतान् । (6)

कठोर और तीक्ष्ण वाक्यरूपी बाण नहीं चलाने चाहिए।

गुरुणां वचनं पथ्यं कवीनां रसवदवचः । (7)

गुरुओं के वचन पथ्यरूप हितकारी होते हैं और कवियों के वचन रसरूप होते हैं।

जिनेश्वरमुखात्पन्नं वाक्यं स्वर्गापवर्गदम् । (8)

जिनेश्वर के मुख से निर्गत वचन भव्य जीवों को स्वर्ग—मोक्ष के सुख को देने वाले हैं।

न सत्यमपि वक्तव्यं पुंसा साक्षिविवर्जितम् । (9)

साक्षी के बिना विवेकी पुरुष को सत्य बात भी नहीं कहनी चाहिए।

परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः । (10)

दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाले वचनों से प्रयत्नपूर्वक वचना चाहिए।

पीयुषं न हि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते । (11)

सारा अमृत पीने से ही कुछ सुख प्राप्त नहीं होता, थोड़ा पीने से भी होता है। (हित के थोड़े से भी वचन सुखकारी होते हैं)।

ब्रुवन्ति न कदा सन्तः प्राणत्यागेष्यसत्यकम् । (12)

सज्जन प्राणनाश का अवसर आने पर भी असत्य वचन नहीं बोलते।

भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी । (13)

पापास्वर करने वाली वाणी नहीं बोलनी चाहिए।

मधुरं चरुवन् यथोचितं, परपुष्टोऽपि जनस्य बल्लभः । (14)

मिष्टवचन बोलने वाली कोकिल समस्त जीवों को प्रिय होती है।

युष्मन् पुनातु भारत्या लक्षणाढयं पदद्वयं । (15)

अनेक शुभ लक्षणों से समन्वित जिनवाणी के चरण-द्वय तुम लोगों को पवित्र करें।

सतां हि कुलविद्येयं, यन्मनोहरभाषणम् । (17)

मनोहर वचन बोलना यह सज्जनों की कुलविद्या है।

वितथे मुनिवाक्येऽपि प्रामाण्यं वचने कुतेः । (16)

यदि मुनि का वाक्य भी झूठा हो गया तो फिर किसी के वचन का भी प्रमाण नहीं रहा।

सुखावबोधप्रायेण प्राणिभ्यो रोचते वचः । (18)

प्रायः सरलता से बोध कराने वाले वचन ही संसारी प्राणियों को रुचिकर होते हैं।

सुवशीकरणं शरीरिणाम् प्रियवाक्यादपरं न विद्यते । (19)

प्रिय वचन के अतिरिक्त संसार में जीवों को वशीकरण करने का अन्य उपाय नहीं है।

सुस्निग्धा मधुरा नूनं, संता भवति भारती । (20)

सज्जन पुरुषों की वाणी स्नेहपूर्ण एवं कर्णप्रिय होती है।

स्वामिनश्च गुरुणां च नाधिक्षेप्यं वचो वदेत् । (21)

स्वामी एवं गुरु को आक्षेप पूर्ण वचन नहीं बोलना चाहिए अर्थात् उनके समक्ष हित-मित-प्रिय वचन को नम्रतापूर्वक बोलना चाहिए।

असत्य

असत्य विजयी भी जाय तो उसकी विजय अल्पकालिक होती है। — लियोनाडों द विसी

मनुष्य झूठ से मेल करके कितनी महती सम्पदा नष्ट कर देता है। — शरत्चन्द्र

केवल यही काफी नहीं है कि सीधे तौर पर झूठ बोलने से बचा जाए वरन् चाहिए यह कि चुप रहकर या इनकार करके भी झूठ को न छिपाया जाय।

— टॉल्सटॉय

सत्य-स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय

परमात्मा की प्राप्ति के साधन

सत्येन लभ्यस्तपसा होष आत्मा, सम्भग्नानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुश्रो, यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥ (5)

(मण्डकोपनिषद् द्वि. खण्ड. मु. 3)

सबके शरीर में विराजमान परम शुद्ध प्रकाशमय ज्ञान स्वरूप परब्रह्म परमात्मा, जिनको सब प्रकार के दोषों से रहित हुए प्रयत्नशील साधक ही जान सकते हैं, वे परमात्मा सदैव सत्य-भाषण, तपश्चर्या, संयम और स्वार्थ त्याग तथा ब्रह्मचर्य के पालन से उत्पन्न यथार्थ ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। इनसे रहित होकर जो भोगों में आसक्त है; भोगों की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के मिथ्या-भाषण करते हैं और आसक्तिवश नियमपूर्वक अपने वीर्य (शक्ति) की रक्षा नहीं कर सकते, वे स्वार्थपरायण अविवेकी मनुष्य उन परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकते; क्योंकि वे उनको चाहते ही नहीं।

सत्य की महिमा

सत्यमेव जयति नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृष्यो ह्याप्तकामा, यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥ (6)

सत्य की ही विजय होती है; झूठ की नहीं। अभिप्राय यह है कि परमात्मा सत्यस्वरूप हैं; अतः उनकी प्राप्ति के लिए मनुष्य में सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। परमात्म प्राप्ति के लिए तो सत्य अनिवार्य साधन है ही; जगत् में दूसरे सब कार्यों में भी अन्ततः सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। जो लोग मिथ्या-भाषण, दंभ और कपट से उन्नति की आशा रखते हैं; वे अंत में बुरी तरह से निराश होते हैं। मिथ्या भाषण और मिथ्या आचरणों में भी जो सत्य का आभास है, जिसके कारण दूसरे लोग उसे किसी अंश में सत्य मान

लेते हैं, उससे कुछ क्षणिक लाभ-सा हो जाता है। परन्तु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। अंत में सत्य, सत्य ही रहता है और झूठ, झूठ ही। इसीसे बुद्धिमान मनुष्य सत्य भाषण और सदाचार को ही अपनाते हैं; झूठ को नहीं; क्योंकि जिनकी भोग-वासना नष्ट हो गयी है, ऐसे पूर्ण काम ऋषि लोग जिस मार्ग से वहाँ पहुँचते हैं; जहाँ इस सत्य के परमाधार परब्रह्म परमात्मा स्थित हैं, वह देवयान मार्ग अर्थात् उन परमदेव परमात्मा को प्राप्त करने का साधन रूप मार्ग सत्य से ही परिपूर्ण है, उसमें असत्य-भाषण और दंभ, कपट आदि असत् आचरणों के लिए स्थान नहीं है।

परमात्मा के स्वरूप

वृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं, सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च, पश्यत्स्वैव निहितं गुहायाम्॥ (7)

वे परब्रह्म परमात्मा सबसे महान्, दिव्य-अलौकिक और अचिन्त्य-स्वरूप हैं अर्थात् उनका स्वरूप मन के द्वारा चिंतन में आने वाला नहीं है। अतः मनुष्य को श्रद्धापूर्वक परमात्मा की प्राप्ति के पूर्वकथित साधनों में लगे रहना चाहिए। वे परमात्मा अचिन्त्य एवं सूक्ष्म से भी अत्यंत सूक्ष्म होने पर भी साधन करते-करते स्वयं अपने स्वरूप को साधक के हृदय में प्रकाशित कर देते हैं। परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हैं; ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहाँ वे न हों। अतः वे दूर से भी दूर हैं, अर्थात् जहाँ तक हम लोग दूर का अनुभव करते हैं, वहाँ भी वे हैं और निकट से भी निकट यही अपने भीतर हैं। अधिक क्या, देखने वालों में ही उनके हृदयरूप गुफा में छिपे हुए हैं। अतः उन्हें खोजने के लिए कहीं दूसरी जगह जाने की आवश्यकता नहीं है।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा, नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलु ध्यानमानः॥ (8)

उन परब्रह्म को मनुष्य इन आँखों से नहीं देख सकता; इतना ही नहीं, वाणी आदि अन्य इन्द्रियों द्वारा भी वे पकड़ में नहीं आ सकते तथा नाना प्रकार की तपश्चर्या और कर्मों के द्वारा भी मनुष्य उन्हें नहीं

पा सकता। उन अवयव रहित परम विशुद्ध परमात्मा को तो मनुष्य सब भोगों से मुख मोड़कर, निस्पृह होकर विशुद्ध अन्तःकरण के द्वारा निरंतर एकमात्र उन्हीं का ध्यान करते—करते ज्ञान की निर्मलता से ही देख सकता है। अतः जो उन परमात्मा को पाना चाहे, उसे उचित है कि संसार के भोगों से सर्वथा विरक्त होकर उन सबकी कामना का त्याग करके एकमात्र परब्रह्म परमात्मा को ही पाने के लिए उन्हीं के चिंतन में निमग्न हो जाय।

शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष ही क्यों जानता है?

एषोऽनुरात्मा चेतसा वेदितव्यो, यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश।
प्राणैश्चितं सर्वमोतं प्रजानां, यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥ (9)

(मुड़कोपनिषद् मुण्डक 3, खण्ड प्रथम)

जिस शरीर में प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान—इन पाँच भेदों वाला प्राण प्रविष्ट होकर चेष्टायुक्त कर रहा है, उसी शरीर के भीतर हृदय के मध्य भाग में मन द्वारा ज्ञाता रूप से जानने में आने वाला यह सूक्ष्म जीवात्मा भी रहता है। परन्तु समस्त प्राणियों के समस्त अन्तःकरण प्राणों से ओत—प्रोत हो रहे हैं, अर्थात् इस प्राण और इन्द्रियों के तृप्त करने के लिए उत्पन्न हुई नाना प्रकार की भोग—वासनाओं से मलिन और क्षुब्ध हो रहे हैं, इस कारण सब लोग परमात्मा को नहीं जान पाते। अन्तःकरण के विशुद्ध होने पर ही यह जीवात्मा सब प्रकार से समर्थ होता है। अतः यदि भोगों से विरक्त होकर यह परमात्मा के चिंतन में लग जाता है, तब तो परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, और यदि भोगों की कामना करता है तो इच्छित भोगों को प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा का साक्षात्कार किसे होता है?

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥ (3)

(मुण्डकोपनिषद् द्वितीय खण्ड, मुण्डक 3)

परमात्मा न तो उनको मिलते हैं जो शास्त्रों को पढ़—सुनकर लच्छेदार भाषा में परमात्म—तत्त्व का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, न कि उन तर्कशील बुद्धिमान मनुष्यों को ही मिलते हैं जो बुद्धि के अभिमान में प्रमत्त हुए तर्क के द्वारा विवेचन करके उन्हें समझाने की चेष्टा करते हैं, और न उन्हीं को मिलते हैं, जो परमात्मा के विषय में बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो उसी को प्राप्त होते हैं, जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और वे स्वीकार उसी को करते हैं, जिनको उनके लिए उत्कट इच्छा होती है, जो उनके बिना नहीं रह सकता। जो अपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसे कृपा—निर्भर साधक पर परमात्मा कृपा करते हैं और योगमाया का परदा हटाकर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो, न च प्रमादात्तपसोवाप्यलिङ्गात्।
एतैरूपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥ (4)

आत्मा रूप परब्रह्म परमेश्वर उपासना रूप बल से रहित मनुष्य द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। समस्त भोगों की आशा छोड़कर एकमात्र परमात्मा की ही उत्कट अभिलाषा रखते हुए निरंतर विशुद्ध भाव से अपने इष्टदेव का चिंतन करना—यही उपासना रूपी बल का संचय करना है। ऐसे बल से रहित पुरुष को वे नहीं मिलते। इसी प्रकार कर्तव्यत्यागरूप प्रमाद से भी नहीं मिलते तथा सात्त्विक लक्षणों से रहित संयमरूप तप से भी किसी साधक द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। किन्तु जो बुद्धिमान साधक इन पूर्वोक्त उपायों से प्रयत्न करता है अर्थात् प्रमाद रहित होकर उत्कट अभिलाषा के साथ निरंतर उन परमेश्वर की उपासना करता है, उसका आत्मा परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में प्रविष्ट हो जाता है।

बॉडीलैंगेज की दृष्टि से धोखा, संदेह, झूँझ बोलना

आकारैरिंगितैर्गत्या—चेष्ट्या भाषणेन च।

नेत्र—वक्त्र विकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥

(1) शारीरिक आकार, (2) इंगित (संकेत), (3) गमन, (4) चेष्टा (क्रिया, आचरण), (5) भाषण तथा (6) नेत्र (चक्षु) और (7) मुख के विकार (क्रिया—प्रतिक्रिया) से अंतरंग मन/भाव का परिज्ञान होता है।

इस प्राचीन मनोवैज्ञानिक श्लोक में दूसरों के भावों को जानने के लिए शरीर का स्थान प्रथम दिया है। क्योंकि मनुष्य चर्म चक्षु से पहले दूसरों को देखता है। शरीर के अवयव ही हाथ, पैर, सिर, नाक, कान, हस्त—रेखा आदि हैं। मन में जो भाव होते हैं उसकी अभिव्यक्ति भी शरीर के माध्यम से होती है। यथा—

भिन्नवर्णसमायोगं व्यनक्तिस्फटिको यथा।

तथैव सर्वलोकानां वक्त्रं वक्ति हि मानसम्॥६॥ कु.का.

जिस प्रकार स्फटिक मणि अपना रंग बदलकर पास वाले पदार्थ का रंग धारण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार मनोगत भाव से मनुष्य की मुख मुद्रा भी बदल जाती है और हृदय में जो बात आती है उसी को प्रकट — ने लगती है।

भावपूर्णमुखं त्यक्त्वा श्रेष्ठमन्यत्र वस्तुकम्।

मुखं हि सर्वतः पूर्वं हषोमर्षौ व्यनक्ति नः॥७॥

मुखचर्या से बढ़कर भावपूर्ण वस्तु और कौनसी है। क्योंकि अंतरंग क्रुद्ध है या अनुरागी, इस बात को सबसे पहिले वह ही प्रकट करती है।

अकूतादिपरिज्ञानमुत्तमं यदि वर्तते।

एकेन तर्हि बुध्येते रागरोषौ हि चक्षुषा॥९॥

यदि ऐसे लोग हों जो उसके हाव—भाव और रंग—दंग को समझ सके तो अकेली आँख ही यह बात बतला सकती है कि हृदय में घृणा है अथवा प्रेम।

मुखं पदमदलाकरं वाचा चन्दन शीतलम्।

हृदयं कर्त्तरि संयुक्तं त्रिविधं धूर्तलक्षणम्॥ (258) स.कौ.

जिसका मुख कमल कलिका के आकार का है, वचन चंदन के समान शीतल है और हृदय केंची से संयुक्त है, वह धूर्त है, यह तीन प्रकार के धूर्त का लक्षण है।

कुछ मूल बातें और उनके उद्गम—

ज्यादातर मूलभूत संप्रेषण मुद्राएँ दुनिया भर में एक—सी होती हैं। जब लोग खुश होते हैं तो वे मुस्कराते हैं। जब वे दुःखी या गुस्सा होते हैं तो उनकी भृकुटियाँ चढ़ जाती हैं या उनकी नाक फूल जाती है। सिर को ऊपर से नीचे की तरफ हिलाने का मतलब लगभग हर जगह पर 'हाँ' या सकारात्मक होता है। यह सिर को झुकाने का एक तरीका है और संभवतः यह एक जन्मजात मुद्रा है क्योंकि बहरे और अंधे लोग भी इसका इस्तेमाल करते हैं। इसी तरह लगभग हर संस्कृति में सिर को एक तरफ से दूसरी तरफ हिलाने का मतलब 'नहीं' या नकारात्मक होता है और हो सकता है कि यह मुद्रा बचपन में सीखी जाती हो। जब किसी बच्चे ने पर्याप्त दूध पी लिया होता है तो वह अपने माँ के स्तन को हटाने के लिए अपने सिर को इधर से उधर घुमाता है। जब किसी छोटे बच्चे ने पर्याप्त खा लिया होता है तो वह अपने सिर को इधर से उधर घुमाता है ताकि अभिभावक उसे चम्मच से न खिला पाये और इस तरह वह जल्दी ही यह सीख जाता है कि सिर हिलाने की मुद्रा असहमति नकारात्मक दृष्टिकोण दिखाने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

इंसान के दिमाग में एसा कभी न चूकने वाला तंत्र होता

है जो असंगत अशाब्दिक संदेश देखने के बाद 'गड़बड़ी' को दर्ज कर लेता है। वैसे ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनमें किसी खास किस्म के फायदे के लिए बॉडी लैंग्वेज के माध्यम से धोखा दिया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर मिस वर्ल्ड या मिस यूनिवर्स प्रतियोगिता ले जिसमें हर युवती लगन और मेहनत से देह गतिविधियों को सीखती है ताकि वह गर्मजोशी, उत्साह और ईमानदारी को संप्रेषित कर सकें। प्रतियोगी इन संकेतों को जितना ज्यादा अभिव्यक्त करेगी, उसे निर्णयकों से उतने ही ज्यादा अंक मिलेंगे। परन्तु यह विशेषज्ञ भी अपनी बॉडी लैंग्वेज को बहुत कम समय तक ही नकली बना सकते हैं और आखिरकार उनका शरीर भी ऐसे संकेत देने लगेगा जो उनकी चेतन क्रियाओं से स्वतंत्र होंगे। कई राजनेता नकली बॉडी लैंग्वेज के विशेषज्ञ होते हैं जिसके सहारे वे मतदाताओं को यह भरोसा दिला देते हैं कि वे सच बोल रहे हैं और जो ऐसा सफलतापूर्वक कर पाते हैं उन्हें 'चमत्कारिक' नेता कहा जाता है।

झूठ को ढकने के लिए चेहरे का उपयोग शरीर के किसी दूसरे हिस्से से ज्यादा किया जाता है। हम अपने भावों को ढकने के लिए मुस्कराहट, सिर हिलाने, आँख झपकाने का सहारा लेते हैं परन्तु दुर्भाग्य से हमारे देह संकेत फिर भी सच्चाई बयान कर देते हैं और इस तरह हमारी देह मुद्राओं और चेहरे के संकेतों के बीच तालमेल नहीं रह पाता है।

आप यह कैसे बता सकते हैं कि कोई झूठ बोल रहा है? ऐसा अशाब्दिक बॉडी लैंग्वेज की मुद्राओं से बता पाना संभव है और इसीलिए अशाब्दिक धोखे की मुद्राओं को पढ़ पाना सबसे महत्वपूर्ण निपुणताओं में से एक है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि लोग धोखे के कौनसे ऐसे संकेत देते हैं जिन्हें पढ़ा जा सकता है।

धोखे के सर्वाधिक सामान्य प्रतीकों में से एक है तीन समझदार बंदरों का प्रतीक जो न बुरा देखते हैं, न बुरा सुनते हैं, न ही बुरा बोलते हैं। चेहरे पर हाथ रखने की उनकी क्रिया धोखा देते हैं, कहते हैं और सुनते हैं तो हम अक्सर अपने हाथों से अपना मुँह, आँखें या कान बंद

करने की कोशिश करते हैं। हम पहले ही बता चुके हैं कि बच्चे इन मुद्राओं को खुलेआम और बिल्कुल स्पष्ट रूप से प्रयुक्त करते हैं। जब कोई छोटा बच्चा झूठ बोलता है तो वह अक्सर अपने मुँह पर हाथ रख लेता है जो झूठ को बाहर निकलने से रोकने की कोशिश होती है। जब वह डॉटने वाले पिता की डॉट को नहीं सुनना चाहता तो वह अपने कानों पर हाथ रख लेता है। जब वह ऐसी कोई चीज देखता है जिसे वह नहीं देखना चाहता तो वह अपनी आँखों को अपने हाथ या बाँह से ढक लेता है। जैसे-जैसे आदमी बड़ा होता जाता है उसके द्वारा चेहरे पर हाथ लगाने की मुद्राएँ ज्यादा परिष्कृत और कम स्पष्ट होने लगती हैं परन्तु जब भी आदमी झूठ बोलता है या धोखे को देखता या सुनता है तो वे प्रकट जरूर होती हैं। यहाँ धोखे का अर्थ संदेह, अनिश्चितता, झूठ बोलना या अतिशयोक्ति भी हो सकता है।

जब कोई चेहरे पर हाथ रखने की मुद्राओं का इस्तेमाल करता है तो इसका हमेशा यह मतलब नहीं होता कि वह झूठ बोल रहा है। इससे यह संकेत जरूर मिलता है कि वह आपको धोखा दे सकता है और दूसरे मुद्रा समूहों के अवलोकन से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यह महत्वपूर्ण है कि आप चेहरे को हाथ लगाने वाली मुद्राओं के भरोसे ही निष्कर्ष न निकालें।

डॉ. डेजमण्ड मारिस ने बताया कि अमेरिकी शोधकर्ताओं ने नर्सों का परीक्षण किया। इन नर्सों से मरीजों से उनके स्वास्थ्य के बारे में झूठ बोलने के लिए कहा गया। जिन नर्सों ने झूठ बोला उनमें चेहरे पर हाथ लगाने की मुद्राएँ ज्यादा बार देखी गयी जबकि जिन नर्सों ने मरीजों से सच कहा उन नर्सों में यह मुद्राएँ कम देखी गयीं।

मुख रक्षक मुद्रा-

मुख रक्षक मुद्रा वयस्कों में भी उतनी ही स्पष्टता से दिख जाती है जितनी स्पष्टता से यह बच्चों में देखी जा सकती है। जब मस्तिष्क अवचेतन रूप से धोखे के शब्दों को छुपाने की कोशिश में शरीर को आदेश देता है तो हाथ मुँह को ढक लेता है और अँगूठा गाल पर दबाव डालता है। कई बार इस मुद्रा में मुँह पर कई उंगलियाँ

या बंद मुट्ठी भी देखी जाती है, परन्तु इसका मतलब वही रहता है।

कई लोग मुख रक्षक मुद्रा को छुपाने के लिए झूठ—मूठ की खाँसी का बहाना भी करते हैं। गैंग्टर या अपराधी की भूमिका निभाते समय हम्फ्री बोगार्ट इस मुद्रा का प्रयोग तब करते थे जब वे दूसरे अपराधियों के साथ अपनी अपराधिक करतूतों की चर्चा करते थे या जब उनसे पुलिस पूछताछ करती थी, और वे अशाब्दिक रूप से यह बता देते थे कि वे झूठ बोल रहे हैं।

अगर कोई आदमी बोलते समय इस मुद्रा का प्रयोग करता है तो इसका मतलब है कि वह झूठ बोल रहा है। परन्तु अगर आपके बोलते समय वह ऐसा करता है तो इसका मतलब यह है कि उसके हिसाब से आप झूठ बोल रहे हैं। किसी सार्वजनिक वक्ता के लिए यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण दृश्य होता है जब उसके बोलते समय उसके श्रोता इस मुद्रा का प्रयोग करते नजर आते हैं। ऐसे समय रुक जाने में ही समझदारी होती है और यह पूछा जाना चाहिए, क्या कोई मेरी द्वारा कही बातों पर टिप्पणी करना चाहेगा? इससे श्रोताओं की आपत्तियाँ खुले में आ जाती हैं जिससे आपको अपने वक्तव्यों का समर्थन करने का मौका मिलता है और उनके सवालों का जवाब देने का भी।

नाक छूना—मूलरूप में, नाक को छूने की मुद्रा मुख रक्षक मुद्रा की ही ज्यादा परिष्कृत और छद्म रूप है। इसमें नाक के नीचे कई बार हल्के से मला जा सकता है या केवल एक बार हल्के से छुआ जा सकता है। कई महिलाएँ मेकअप बिगड़ने के डर से इस मुद्रा के प्रयोग में सावधानी बरतती हैं।

नाक को छूने की मुद्रा के उद्गम का एक स्पष्टीकरण यह है कि जब कोई नकारात्मक विचार दिमाग में आता है तो अवचेतन मस्तिष्क आदमी के हाथ को यह आदेश देता है कि वह मुँह को ढक ले, किन्तु आखिरी समय में यह विचार आते ही इससे अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा, हाथ चेहरे से दूर खींच लिया जाता है और नाक को छूने की मुद्रा उसका परिणाम होती है। दूसरा स्पष्टीकरण यह है कि झूठ बोलने से नाक में सुरसुराहट होने लगती है और मलने की

क्रिया उसे शांत करने के लिए इस्तेमाल की जाती है। 'परन्तु' क्या हो अगर किसी आदमी को नाक में खुजली चलती हो? यह सवाल अक्सर पूछा जाता है। किसी व्यक्ति की नाक की खुजली सामान्यतया बहुत स्पष्ट रूप से मलने से खुजाने से शांत हो जाती है, जबकि नाक को छूने की मुद्रा में हल्के—हल्के थपथपाया जाता है। मुख रक्षक मुद्रा की ही तरह इसे भी वक्ता द्वारा अपने झूठ को छुपाने के लिए और श्रोता द्वारा वक्ता के शब्दों पर अविश्वास प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

आँख मलना—'बुरा मत देखो' यह बुद्धिमान बंदर का कथन है और यह मुद्रा मस्तिष्क की इस कोशिश को दर्शाती है कि वह अगर धोखा, संदेह या झूठ को देखे तो तत्काल उस पर पर्दा डाल दे और झूठ बोलने वाले आदमी के चेहरे से हटा लें। पुरुष सामान्यतः अपनी आँखों को तेजी से मलते हैं और अगर झूठ बहुत बड़ा है तो वे अक्सर दूसरी तरफ देखने लगते हैं, सामान्यतः फर्श की तरफ। महिलाएँ आँख के ठीक नीचे धीमे और हल्के हाथ से एक बार मलती हैं, या तो इसलिए क्योंकि उन्हें तेज मुद्राओं से परहेज करना सिखाया गया है या फिर इसलिए क्योंकि वे अपना मैकअप खराब करना नहीं चाहती। वह भी वक्ता से नजर मिलाने से बचती है और छत की तरफ देखने लगती हैं।

'अपने दाँतों से झूठ बोलना' एक आम कहावत है। यह उस मुद्रा समूह को दर्शाता है जिसमें झूठी मुस्कराहट और भिंचे दाँत होते हैं और इसके साथ आँख मलने की मुद्रा और नजर दूर हटाने की क्रिया होती है। यह मुद्रा फिल्मों में अभिनेताओं द्वारा कपट प्रदर्शित करने के लिए इस्तेमाल की जाती है, परन्तु असली जिंदगी में यह कम ही देखा जाता है।

कान मलना—यह दरअसल श्रोता की 'बुरा मत सुनो' की कोशिश होती है जिसमें वह अपने हाथों को कान पर या उसके पास रखकर शब्दों को सुनने से बचना चाहता है। बच्चे अपने अभिभावक की डॉट पड़ने पर अपने दोनों कानों पर दोनों हाथ रख लेते हैं, परन्तु

परिष्कृत वयस्क संस्करण में यह मुद्रा इतनी स्पष्ट नहीं होती। कान को मलने की मुद्रा के कुछ और स्वरूप होते हैं जिसमें कान के पिछले हिस्से को छूना, कान के भीतर अंगुली डालना, कान को खींचना या कान को खींचकर कान के छेद को बंद कर देना शामिल है। यह आखिरी मुद्रा स्पष्ट संकेत है कि उस व्यक्ति ने पर्याप्त सुन लिया है और शायद अब वह बोलना चाहता है।

गला खुजाना—इस मामले में लिखने वाले हाथ की तर्जनी कान के पर्दे के नीचे खुजाती है या गले पर भी खुजा सकती है। इस मुद्रा के बारे में हमारे अवलोकन से एक विशेष जानकारी मिली। आदमी लगभग पाँच बार खुजाता है। बहुत कम बार खुजाने की क्रिया पाँच से कम बार की जाती है और कम बार यह पाँच से ज्यादा होती है। यह मुद्रा संदेह या अनिश्चितता का संकेत होती है और यह उस आदमी को दर्शाती है जो कहता है 'मुझे यकीन नहीं है कि मैं सहमत हूँ।' यह बहुत ज्यादा स्पष्ट तब होती है जब शाब्दिक भाषा से इसका तालगेल नहीं होता, उदाहरण के तौर पर जब व्यक्ति कुछ इस तरह की बात करता है, 'मैं समझ सकता हूँ कि आपको कैसा महसूस होता होगा।'

कॉलर खींचना—डेजमंड मॉरिस के अनुसार झूठ बोलने वालों की मुद्राओं में हुए शोध ने यह स्पष्ट किया है कि झूठ बोलने वाले के गले के नाजुक ऊतकों में सुरसुरी की अनुभूति होती है और इसे संतुष्ट करने के लिए इसे मलने या खुजालने की जरूरत होती है। यह एक तार्किक स्पष्टीकरण हो सकता है कि कुछ लोग झूठ बोलते समय कॉलर खींचने की मुद्रा का इस्तेमाल क्यों करते हैं उन्हें यह डर सताता है कि उनका झूठ पकड़ लिया जायेगा। ऐसा लगता है कि झूठ के कारण गर्दन पर पसीने का स्राव होता है जबकि धोखा देने वाले को लगता है कि श्रोता ने उसके झूठ को पकड़ लिया है। इस मुद्रा का प्रयोग तब भी किया जाता है जब आदमी गुस्से में हो या कुठित हो और उसे अपनी गर्दन पर से कॉलर को खींचने की जरूरत महसूस होती हो ताकि ठंडी हवा वहाँ तक पहुँच सकें। जब

आप कभी इस मुद्रा का इस्तेमाल करते देखें तो इस तरह के सवाल 'क्या आप इसे दोहराने का कष्ट करेंगे?' या 'क्या आप इस बिन्दु को स्पष्ट करेंगे?' से धोखेबाज की पोल खुल जायेगी।

मुँह में उंगलियाँ—इस मुद्रा के बारे में मॉरिस का स्पष्टीकरण यह है कि उंगलियाँ तब रखी जाती हैं जब आदमी दबाव में होता है। इस तरह व्यक्ति अवचेतन रूप से अपने बचपन की उस सुरक्षा को प्राप्त करने की कोशिश करता है जब वह शिशु के रूप में अपनी माँ के स्तन से दुग्धपान करता था। छोटे बच्चे स्तन की जगह पर अपने अँगूठे का प्रयोग करते हैं और वयस्क के रूप में वे न सिर्फ अपनी उंगलियों को अपने मुँह में रखते हैं बल्कि सिगरेट, पाईप, पेन और इसी तरह की दूसरी चीजों का प्रयोग करते हैं। जबकि चेहरे पर हाथ की ज्यादातर मुद्राएँ झूठ या धोखे को दर्शाती हैं, मुँह में उंगलियों की मुद्रा सुरक्षा की अंदरूनी जरूरत का बताती है। जब भी यह मुद्रा दिखाई पड़े, उस व्यक्ति को गारंटी या आश्वासन देना उचित होगा।

गाल और ठुड़डी की मुद्राएँ—एक अच्छा वक्ता वह माना जाता है जो 'अंदर से' जानता है कि उसके श्रोता कब उसकी बातों में रुचि लेते हैं और कब उसके श्रोताओं का मन भर गया है। एक अच्छा सेल्समेन यह अनुभव कर सकता है कि कब उसने अपने ग्राहक के लिए भेद लिया है, यानि कि कहाँ उसके ग्राहक की रुचि जाग गयी है। हर सेल्समेन उस खालीपन के एहसास से वाकिफ़ है जो तब पैदा होता है जब वह किसी संभावित ग्राहक के सामने अपनी विक्रय प्रस्तुत दे रहा होता है और ग्राहक बहुत कम बोलता है और चुपचाप बैठा देखता रहता है। सौभाग्य से गाल—पर—हाथ रखने और ठुड़डी पर हाथ लगाने की कई मुद्राएँ सेल्समेन को बता देती हैं कि वह कितना अच्छा प्रदर्शन कर रहा है।

बोरियत—जब श्रोता अपने सिर को सहारा देने के लिए अपने हाथ का इस्तेमाल करने लगता है तो यह संकेत है कि वह बोर हो चुका है और हाथ का सहारा इसलिए जरूरी है ताकि सिर को सोने से रोका जा सके। जिस हद तक उसकी बाँह और हाथ उसके सिर

को सहारा देते हैं उससे उसकी बोरियत की सीमा ज्ञात होती है। बहुत ज्यादा बोरियत और रुचि का पूरी तरह अभाव तब दिखता है जब सिर को पूरी तरह हाथों का सहारा दिया जाय। बोरियत की चरम—सीमा का इससे भी साफ संकेत तब मिलता है जब सिर डेस्क या टेबल पर झुक जाय और आदमी खर्राटें लेने लगे।

टेबल पर लगातार उंगली बजाना या पैर से फर्श को बार—बार ठकठकाना भी कई व्यावसायिक वक्ताओं द्वारा बोरियत के संकेत माने जाते हैं परन्तु वास्तव में अधीरता के संकेत हैं। जब आप एक वक्ता की हैसियत से इन संकेतों को देखे तो आपको ऐसी रणनीति बनानी चाहिए कि आप उंगली बजाने वाले या पैर ठकठकाने वाले को अपने व्याख्यान में शामिल कर ले ताकि आपके बाकी श्रोताओं पर इसका नकारात्मक प्रभाव न पड़ पाये। एक बार बोरियत और अधैर्य के संकेत देने वाला श्रोता वक्ता को बताता है कि जब उसके व्याख्यान को खत्म करने का समय आ गया है। यह भी गौर करने काबिल है कि जिस गति में उंगली या पैर बजाया जा रहा है वह उस व्यक्ति की अधीरता की सीमा प्रदर्शित करता है—उंगली या पैर जितनी तेजी से खटखट करेंगे, श्रोता उतना ही अधीर होगा।

मूल्यांकन—मूल्यांकन मुद्रा में बंद हाथ गाल पर आराम से रखा होता है, जिसमें अक्सर तर्जनी ऊपर की तरफ इशारा करती है। अगर कोई आदमी रुचि खो देता है परन्तु शिष्टाचारवश रुचि प्रदर्शित करता है तो यह स्थिति बदल जायेगी। हथेली की गद्दी सिर को सहारा देने लगती है। (बॉडी लैंग्वेज)

विश्वविद्यालय से विश्वधर्म सभा का विवरण

पाँचवीं विश्वधर्म संसद : विश्व शांति का एक और प्रयास

(डॉ. कछारा आचार्यश्री कनकनंदीजी से वैज्ञानिक आध्यात्मिक जैन दर्शन के अध्ययन के साथ—साथ उसके प्रचारार्थ साहित्य लेखन एवं भारत, अमेरिका, इंग्लैण्ड, विश्वधर्म सभा (2009, आस्ट्रेलिया) आदि में निष्पृह रूप से सतत प्रयासरत हैं। एतदर्थ आचार्यश्री आपको “जैन ज्ञान विज्ञान तत्त्वज्ञ” एवं “विश्वधर्म प्रभाव कर” उपाधि से अलंकृत किया है।)

3–9 दिसम्बर, 2009 को मेलबर्न में आयोजित पाँचवीं विश्व धर्म संसद में विश्व के विभिन्न धर्मों के लगभग ४३: हजार धर्म गुरुओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, विद्वानों, धार्मिक अनुयायियों ने लगभग 450 कार्यक्रमों के माध्यम से विश्व शांति के विभिन्न पहलुओं और वैश्विक समस्याओं पर विचार मंथन किया और आपसी सौहार्द और सहयोग पर जोर देते हुए एक विश्व परिवार के निर्माण पर अपनी मोहर लगादी। राष्ट्र के मूल निवासियों के विकास की बात प्रमुखता से रखी गई तथा आंतरिक शांति हेतु ज्ञान के आदान—प्रदान, गाँवों और शहरों में सामाजिक समरसता, न्याय सम्मत शांति व्यवस्था, पृथ्वी की पीड़ा हरने हेतु सेवा भावना, असमान विश्व में निर्धनता निवारण तथा समस्त मानव जाति के लिए भोजन व पानी जैसी महत्वपूर्ण समस्याओं पर कई सत्र आयोजित किये गये। धार्मिक वैविधता के बीच किसी एक धर्म के नेता कैसे अपने और अन्य धर्मों का संरक्षण करें, इस बात पर विचार किया गया। क्षेत्रीय और स्थानीय आधार पर, जैसे अफ्रीका, योरोप व मध्य एशिया में, अंतर्धर्मी वातावरण पर तथा ईसाई और इस्लाम धर्मों के बीच सौहार्द पर विशेष सत्र आयोजित किये गये। विश्व के कुछ विवादग्रस्त देशों की धार्मिक समस्याओं पर भी विशेष

विचार हुआ। मानवाधिकार, वैश्विक आचार संहिता और धार्मिक स्थलों की सुरक्षा पर भी सत्र आयोजित किए गए।

पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन पर गहन चिंता प्रकट की गई और इसके लिए एक मत से प्रभावी कदम उठाने का आह्वान किया गया। एक 60 मीटर लंबे रोल पर अनेक शुभचिंतकों द्वारा अपना संदेश और विश्व नेताओं को अपनी चिंता अंकित की गई और इस रोल को कोपनहेगन में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भेजने का निर्णय लिया गया। परमाणु निरस्त्रीकरण पर विशेष सत्र आयोजित किये गये। न्यायमूर्ति सी.जी. वीरामंत्री और सू. वरेहम ने परमाणु अप्रसार और निरस्त्रीकरण पर न्यायिक और दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किया। सोका गोकाई इंटरनेशनल, जापान तथा बौद्ध, ईसाई, इस्लाम और ज्यूह्स धर्मों के प्रतिनिधियों ने अपने—अपने धर्म का पक्ष प्रस्तुत करते हुए परमाणु निरस्त्रीकरण पर बल दिया। लेखक ने जैन धर्म का पक्ष प्रस्तुत करते हुए भाव हिंसा और द्रव्य हिंसा का अंतर स्पष्ट किया और कहा कि परमाणु युद्ध निरपराध नागरिकों की हत्या और आगामी पीढ़ी के विरुद्ध युद्ध है। जैन धर्म परमाणु शस्त्र ही नहीं सभी प्रकार के विनाशकारी शस्त्रों के विरुद्ध है और अहिंसा के माध्यम से विश्व की समस्याओं के समाधान का पक्षधर है।

संसद में भारतीय धर्मों की उपस्थिति प्रमुखता से देखी गई। श्री श्री रविशंकर उद्घाटन सत्र में तथा महामहिम श्री दलाई लामा समापन सत्र में मुख्य अतिथि थे। हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख और जैन धर्मों के साधु—संत तथा अनुयायी अच्छी संख्या में उपस्थित हुए। अन्य धर्मों की चर्चाओं में भी किसी न किसी रूप से भारतीय मूल के धर्मों और भारतीय संस्कृति का उल्लेख बहुत जगह देखने को मिला। हिन्दू संतों का एक विशेष कनवोकेशन सत्र आयोजित किया गया जिसमें श्री श्री रविशंकर, स्वामी अवधेशानंद गिरी, स्वामी अग्निवेश, स्वामी चिदानंद सरस्वती, स्वामी प्रज्ञानंद गिरी, स्वामी संदीप चैतन्य, अम्मा श्री करुणामयी, स्वामी अमरनंदा, स्वामी मायातीतानंद सरस्वती, श्री चिना जोयार स्वामीजी, सद्गुरु बोधीनाथ वेयलन स्वामी, योगिनी श्री

चंद्रकाली प्रसादा माताजी आदि ने उद्बोधन प्रदान किये। सभी ने बल देकर कहा कि प्रकृति का विनाश करके हम अपना ही विनाश कर रहे हैं। एक विशेषता यह देखी गई कि सभी भारतीय मूल के धर्मों के प्रवासी भारतीयों ने बढ़—चढ़ कर भाग लिया। यह दर्शाता है कि अपनी मातृभूमि से दूर रहते हुए भी भारतीय नागरिक अपनी संस्कृति और धर्म के प्रति सजग हैं और इन्हें विश्व पटल पर स्थापित करने में सक्रिय हैं।

संसद में जैन धर्म का प्रदर्शन प्रभावशाली रहा। दो संत, दो भट्टारक और छः समणियों की उपस्थिति से संत वर्ग का प्रतिनिधित्व भी देखने को मिला। कुल मिलाकर जैन धर्म पर लगभग 18—20 कार्यक्रम हुए जिनमें व्याख्यान, पेनल चर्चा, पूजा—पाठ, ध्यान योग, प्रदर्शनी, भजन—संगीत आदि का प्रस्तुतीकरण हुआ। लेखक ने कर्म सिद्धांत का दार्शनिक तथा व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया और भट्टारक भी देवेन्द्र कीर्तिजी ने जीवन में पंच व्रतों के महत्व पर प्रकाश डाला। डॉ. दीपक जैन ने व्यापार के सामाजिक उत्तरदायित्व में जैन सिद्धांतों और वैश्विक अर्थशास्त्र के लिए नई आचार संहिता पर व्याख्यान प्रस्तुत किये। श्री अमरेन्द्र मुनि ने धार्मिक एकता और अहिंसा पर व्याख्यान दिया। श्री विनोद कपाशी, डॉ. रक्षाशाह, श्री किरीट दफतरी तथा श्री संचय जैन ने अहिंसा, प्राकृतिक क्षमतानुसार जीवन यापन, संयम और तदनुसार शिक्षा प्रयोग पर विचार प्रस्तुत किये। समणी मंगलप्रज्ञा और श्री प्रवीण शाह ने शांति और सौहार्द के लिए जैन जीवन पद्धति और शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला। श्री वसंत गुरु और श्री सोहनलाल गाँधी ने जैन धर्म और पर्यावरण पर अपने विचार प्रस्तुत किये। श्री नरेश जैन ने रबाई डेविड रोजेन के साथ शाकाहार के नैतिक और पर्यावरण पक्ष को प्रस्तुत किया। श्री गिरिश शाह ने सिलीकन वेली, अमेरिका में अंतर्धर्मीय समुदाय के विकास हेतु किये गये प्रयोगों पर प्रकाश डाला। रत्न निधि चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा तीर्थकरों के जीवन पर एक प्रदर्शनी कन्वेशन सेंटर के प्रमुख स्थल पर लगाई गई जो सबके आकर्षण का केन्द्र रही। अणुविभा, लाडूँ

और दिग्म्बर जैन संघ, न्यूजर्सी, अमेरिका द्वारा भी प्रदर्शनी लगाई गई। मेलबर्न के स्थानीय जैन समाज ने विभिन्न देशों से आये जैन प्रतिनिधियों के साथ मिलन का कम्यूनिटी नाइट कार्यक्रम का आयोजन किया जिसमें आस्ट्रेलिया में जैन धर्म की स्थिति प्रस्तुत की गई और संतों द्वारा उद्बोधन प्रदान किये गये।

यह रिपोर्ट मेलबर्न के श्वेताम्बर जैन संघ द्वारा की गई साधार्मिक भक्ति का उल्लेख किए बिना अधूरी रहेगी। स्थानीय जैन संघ द्वारा अंतर्राष्ट्रीय जैन प्रतिनिधियों के लिए आवास व भोजन की जो व्यवस्था की गई वह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। लगभग 15–16 लोगों के लिए जैन परिवारों के साथ रहने और उनके आवागमन की व्यवस्था की गई तथा 25–30 लोगों के लिए पूरे सात दिन निःशुल्क भोजन की व्यवस्था की गई। समस्त कार्य श्री नितिन भाई दोशी के नेतृत्व में युवा कार्यकर्ताओं द्वारा सुव्यवस्थित ढंग से किया गया। श्री नितिन भाई का परिवार पूर्ण धार्मिक है, उन्होंने अपने आवास परिसर में भगवान पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण किया है और उसकी नित्य प्रतिदिन पूजा का उत्तरदायित्व लिया है। यह मंदिर मेलबर्न के सभी श्रावकों के लिए खुला है और इसके माध्यम से युवा वर्ग में धार्मिक चेतना का जो जागरण हुआ है वह एक अनूठा प्रयोग है श्री नितिन भाई और उनकी टीम साधुवाद के पात्र हैं।

विश्व धर्म संसद में जैन धर्म की भागीदारी संतोषप्रद तो है पर पर्याप्त नहीं कही जा सकती है। जैन धर्म की विशिष्टताओं को विश्व पटल पर प्रस्तुत करने के प्रयास में तेजी की आवश्यकता है। विश्व शांति और वैश्विक समस्याओं के समाधान में जैन धर्म को अपनी भूमिका को पहचानना होगा और अन्य धर्मों के साथ मिलकर अहिंसात्मक समाज के निर्माण में आगे बढ़ना होगा।

विश्वविद्यालय में आचार्य कनकनंदी साहित्य कक्षा की स्थापना एवं शोधकार्य

संस्थापक एवं शोध निर्देशक—

Prof. (Dr.) Sohan Raj Tater

B.E.(Mech.), M.E. (P.H.), M.A. (Jainology), Ph.D., Pursuing D.Litt.

Former Vice-Chancellor, Singhania University.

Ph.D. Research Supervisor in Universities.

Former Member, B.O.M., J.V.B.U., Ladnun (Raj.)

Former Director, Brahmi Vidyapith College[Ladnun (Raj.)

Honourary Editor, Preksha Dhyan Magazine, Ladnun (Raj.)

Retired Superintending Enginee, P.H.E.D., Raj. Govt.

Former Conver, Parmarthik Shikshan Sansthan, Ladnun (Raj.)

Former Advisor, J.V.B.U. Ladnun (Raj.)

प.पू. श्रद्धेय आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के साहित्य की स्थापित "Book Cells"

क्र.सं.	विश्वविद्यालय का नाम	जिम्मेदार महानुभाव	फोन नं.
1.	राजस्थान वि.वि.	डॉ. बी.एल. सेठी (संस्थापक एवं शोध निर्देशक)	9414743340
2.	जैन विश्वभारती वि.वि. लाड्नू (राज.)	प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा	9414342003
3.	एल.डी. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद (गुज.)	डॉ. जितेन्द्र बी. शाह	09825800126
4.	जयनारायण व्यास वि.वि. जोधपुर (राज.)	डॉ. चन्द्रशेखर	9828082560
5.	अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, जबलपुर (म.प्र.)	प्रो. एस.पी. दुबे	09229132699
6.	बनारस हिन्दू वि.वि., वाराणसी (उ.प्र.)	डॉ. विजयकुमार जैन	09450240359

7. तीर्थकर वर्द्धमान वि.वि., डॉ. आर.के. मित्तल 09837933666
मुरादाबाद (उ.प्र.)
8. सिंघानिया वि.वि. पचेरीबड़ी प्रो. योगेश कुमार शर्मा 9982609201
झुंझुनूं (राज.) 9414347157
9. जोधपुर राष्ट्रीय वि.वि., डॉ. प्रदीप कुमार डे 9351590734
जोधपुर (राज.)
10. गुजरात वि.वि., डॉ. दिलीप चारण 09825148840
अहमदाबाद (गुज.)
11. श्रीधर वि.वि., डॉ. श्यामसुंदर पुरोहित 9617200650
अहमदाबाद (गुज.)
12. आर.सी.एस.एस. कॉलेज, डॉ. विद्यासागर सिंह 09973747234
वीहट (बिहार)
13. लखनऊ वि.वि., डॉ. अमरजीत यादव 09415774470
लखनऊ (उ.प्र.)
14. मोहनलाल सुखाड़िया
वि.वि. उदयपुर (राज.)
15. विक्रम वि.वि., डॉ. बीरबाला छाजेड़
उज्जैन (म.प्र.)
16. एन.एम.आर. इंजी.
कॉलेज, हैदराबाद (आ.प्र.) (वैज्ञानिक) 09502162631
17. मुम्बई विश्वविद्यालय,
मुम्बई (महाराष्ट्र)
18. जम्मू विश्वविद्यालय
(जम्मू कश्मीर)

Postal Address : "G-8" Multan Kunj, Bhagat Ki Kothi
Extension, Jodhpur-342003 (Raj.)

Contact No. : 09829650702(M)

E-mail:sohantater@yahoo.co.in

32वाँ शिविर संपन्न, विश्वविद्यालय से लेकर विश्व धर्म सम्मेलन का प्रतिवेदन एवं आगामी योजनाएँ

धर्मपरायण रामगढ़ ग्रामवासियों की शुभ भावना एवं अनुरोध से परम पूज्य वैज्ञानिक आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के द्वारा रामगढ़ में 32वाँ धर्म-दर्शन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर का आयोजन 25 दिसम्बर, 2009 से 3 जनवरी, 2010 तक हुआ, जिसमें स्थानीय एवं अन्य गाँवों से जैन-जैनेत्तर 124 छात्र-छात्राएँ व महिलाओं ने भाग लिया। दस दिन तक चले इस शिविर के सम्यग्दर्शन ग्रुप को मुनि सुविज्ञसागरजी एवं सम्यग्ज्ञान ग्रुप को स्वयं आचार्यश्री ने स्वरचित शास्त्र 'धर्म-दर्शन-विज्ञान से अध्ययन कराया। आचार्यश्री द्वारा शिविरार्थियों को धार्मिक शिक्षा यथा-इष्ट प्रार्थना, पवित्र भावना, देवदर्शन, पूजन विधि, आहार दान विधि, आदर्श जीवन कैसा हो, श्रावक के अष्ट मूल गुण, पाँच पाप, पाँच महाब्रत, पाँच अणुव्रत, सप्त व्यसनों का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण, श्रावक के छः दैनिक कर्तव्य आदि की दी गई तथा इसके साथ-साथ विज्ञान, गणित, मनोविज्ञान, भाषण, नृत्य, गीत, भजन, आशु प्रतियोगिता, वाद-विवाद, योगासनादि विविध विधाओं का परिज्ञान भी दिया गया। इन सभी कार्यक्रमों में शिविरार्थियों ने उत्साहपूर्वक अनुशासित रहकर भाग लेकर शिविर को सफल बनाया।

शिविर के शुभारंभ में आचार्यश्री द्वारा रचित 'जैन सिद्धांत एवं विश्व शांति' ग्रन्थ का विमोचन हुआ। शिविर में अनेक शुभोपलब्धियाँ हुईं। शिविरार्थियों ने मद्य-माँस, बीड़ी-सिगरेट, नेल पॉलिश, लिपिस्टिक आदि का आजीवन के लिए त्याग किया। अनेक विधाओं का ज्ञान हुआ। आचार्यश्री ने अपना अमूल्य समय शिविरार्थियों को देकर उन्हें स्वावलंबी, आत्मनिर्भर, सौहार्द, मैत्री, वात्सल्य, प्रेम, अनुशासन, सेवा, भक्ति, परोपकार, अनुशासन का पाठ पढ़ाया जिससे वे स्वयं एक आदर्श नागरिक बनकर समाज, गाँव, देश और विश्व का कल्याण कर सकें।

आचार्यश्री का बाल्यावस्था से ही अपने जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज, सत्य की प्राप्ति करना, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय नेता बनना, सच्चा साधु बनना, देश-विदेश के वैज्ञानिकों को पढ़ाना आदि था।

स्वयं ने देश-विदेश के अनेक धर्म, विज्ञान, न्याय, मनोविज्ञान, महापुरुषों के जीवन चरित्र, गणित, इतिहास का अध्ययन कर अपने जीवन में अनुकरण और अनुभव कर विभिन्न विधाओं के 185 ग्रन्थों का सृजन किया है जिसको U.G.C. से भी मान्यता प्राप्त होकर देश के अनेक प्रांतों की 14 विश्वविद्यालयों में साहित्य-कक्ष की स्थापना के साथ ही शोधार्थी द्वारा Ph.D., M.Phil हो रहा है। आपके सरल स्वभाव, सादा जीवन-उच्च विचार, बिना आडम्बर और बिना औपचारिकता के छोटे-बड़े, निर्धन-धनी, पढ़ा-अनपढ़ सभी के साथ एक-सा व्यवहारादि से प्रभावित होकर श्वेताम्बर तेरह पंथ आचार्य महाप्रज्ञ के शिष्य एवं प्रमुख कार्यकर्ता श्रीमान् सोहनराजजी तातेड़ जो कि सिंघानिया विश्वविद्यालय के उपकुलपति एवं कई विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं से जुड़े हुए हैं, ने आपके साहित्य को देश-विदेश के लगभग 100 विश्वविद्यालयों में पहुँचाने, साहित्य कक्ष की स्थापना करने, स्वयं व अपने अन्य साधियों के द्वारा कई शोधार्थियों को शोधकार्य कराने में लगे हुए हैं। आचार्यश्री कनकनंदीजी की अति उत्कृष्ट भावना है कि विश्व के प्राणी मात्र सुखी, निराकुल, ज्ञानी, ध्यानी बन स्व-पर देश विश्व का कल्याण करें और वे स्वयं और अपने शिष्यों को देश-विदेश में भेजकर इस कार्य में संलग्न एवं प्रयत्नशील हैं। आपके द्वारा रचित 185 महत्वपूर्ण ग्रन्थों का लेखन, संपादन, प्रूफ रीडिंग, छपवाना आदि संपूर्ण कार्य खुद के बलबूते पर बिना चंदा चिट्ठा याचना किये स्वतः सफलतापूर्वक होते हुए देखकर श्रीमान् तातेड़जी प्रभावित है और वे चाहते हैं कि आपके साहित्य का अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में अनुवादित हो जिससे विश्व के प्राणी भी लाभान्वित हो सकें। डॉ. प्रो. तातेड़जी ने धर्मसभा को संबोधित करते हुए बताया कि जा कार्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी अपने 3.5 लाख अनुयायी प्रायः 1000 श्रमण-श्रमणी, अनेक संस्थाओं व उनसे प्रभावित धनी, विद्वान्, राजनेता, मीडिया, वेबसाईट आदि के द्वारा जो कार्य कर रहे हैं, वैसा ही कार्य स्वयं के बलबूते पर बिना अन्य संसाधनों के आचार्यश्री कनकनंदीजी के छोटे से संघ के द्वारा होता देखकर आश्चर्यचकित एवं प्रभावित होकर आपके कारवाँ को आगे बढ़ाना चाहते हैं। तातेड़जी स्थानीय रामगढ़ दिग्म्बर जैन समाज को भी आचार्यश्री के इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए तन-मन-धन से

सहयोग करने के लिए अनुरोध किया।

आचार्यश्री के शिष्य प्रो. प्रभात कुमारजी ने ताम्रपत्र पर तीन ग्रन्थों (इष्टोपदेश, भक्तामर, द्रव्य संग्रह) को उकेरवाकर, भव्य आर्थिका दीक्षा महोत्सव में इसका विमोचन भी करवाया है। प्रो. प्रभातजी देश-विदेश में जाकर धर्म प्रचार व आचार्यश्री के मिशन को आगे बढ़ा रहे हैं। वे कषायपाहुड के नवीन संशोधित ग्रन्थ का संपादन का कार्य भी कर रहे हैं। प्रो. प्रभातजी एवं प्रो. सुशील कुमारजी, श्रीमान् सोहनराज तातेड़जी के निर्देशन में पीएच.डी. कर रहे हैं। आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव का ग्रन्थ लेखन कार्य अनवरत चालू है। प्रायः 1500 पृष्ठ का 'नीतिवाक्यामृतम्' व अन्य कई ग्रन्थों का लेखन कार्य चालू है। विदेशों में जैन-धर्म प्रचारार्थ अंग्रेजी में तीन डॉक्यूमेंट्री फिल्म का निर्माण हो चुका है।

हमें खुशी है कि "पाँचवीं विश्व धर्म संसद" मेलबोर्न आस्ट्रेलिया में (3-9 दिसम्बर, 2009) भारत से दिग्म्बर जैन आचार्यश्री कनकनंदी का प्रतिनिधित्व आपके स्व शिष्य श्री नारायणलालजी कछारा ने किया। उन्होंने जैन धर्म में निहित "कर्म सिद्धांत" और "विश्व शांति का संदेश दिया और जिससे विश्व धर्म संसद में जैन धर्म की भागीदारी अधिक महत्वपूर्ण और संतोषप्रद रही। कछाराजी इस विश्व धर्म संसद में भारत के अंबेसेडर भी रहे।

आचार्यश्री के कई ग्रन्थ वेबसाईट पर उपलब्ध हैं और अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध करवाये जा रहे हैं जिससे विश्व लाभान्वित होगा। आचार्यश्री का साहित्य देश की कई लाइब्रेरियों में उपलब्ध है और उपलब्ध करवाया जा रहा है। भारतीय मूल के अमेरिका प्रवासी श्री नरेन्द्रकुमारजी एवं प्रद्युम्नकुमारजी का भी बहुत सहयोग मिल रहा है।

आचार्यश्री के भक्तों द्वारा स्थापित संस्था के द्वारा आचार्यश्री के मिशन को आगे बढ़ाने के लिए साहित्य प्रकाशन, देश-विदेश में धर्म-प्रचार, विश्वविद्यालयों में शोधकार्य आदि कार्य हो रहे हैं। आचार्य की भावना को फलीभूत करने के लिए मैं भी सहयोग करता रहूँ इसी महत्ती भावना के साथ-

मुनि आध्यात्मनंदी (संघस्थ आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव)

संदर्भ ग्रंथ सूची

I. दिग्म्बर जैन ग्रंथ

- | | |
|-----------------------|-----------------------|
| 1. मूलाचार | 2. मोक्षशास्त्र |
| 3. इष्टोपदेश | 4. समाधि तंत्र |
| 5. अमितगति श्रावकाचार | 6. कुरल-काव्य |
| 7. आत्मानुशासन | 8. नीतिवाक्यामृतम् |
| 9. ज्ञानार्णव | 10. छह ढाला |
| 11. वर्धमान चरित | 12. द्रव्यसंग्रह |
| 13. तत्त्वार्थवार्तिक | 14. श्रावकाचार संग्रह |
| 15. श्लोकार्थ सूक्ति | 16. सम्यग्कौमुदि |
| 17. तत्त्वार्थवार्तिक | |

II. श्वेताम्बर जैन ग्रंथ

- | | |
|----------------------|----------------------|
| 1. ज्ञानसार | 2. उत्तराध्ययन सूत्र |
| 3. दशवैकालिक | 4. आचारांग सूत्र |
| 5. स्थानांग सूत्र | 6. सूत्र कृतांक |
| 7. प्रश्न व्याकरणांग | |
| III. वैदिक ग्रंथ | |
| 1. मनुस्मृति | 2. हितोपदेश |
| 3. महाभारत | 4. गीता |
| 5. पंचतंत्र | 6. मत्स्यपुराण |
| 7. अष्टांग संग्रह | |

IV. लेखक आचार्यश्री कनकनंदी के ग्रंथ

- | | |
|------------------------|------------------------|
| 1. तत्त्वानुचितन | 2. आध्यात्म मनोविज्ञान |
| 3. स्वतंत्रता के सूत्र | |

V. बौद्ध ग्रंथ

- | | |
|-----------|-------------|
| 1. धर्मपद | 2. जातक कथा |
|-----------|-------------|

VI. विज्ञान एवं विविध साहित्य

- | | |
|------------------------|---------------------|
| 1. कौटिल्य अर्थशास्त्र | 2. मानव और पर्यावरण |
| 3. व्यवहार मनोविज्ञान | 4. धर्म नीति |

अखिल भारतीय दर्शन परिषद् में आचार्यश्री कनकनंदी के साहित्य

(शोधार्थे 18 विश्वविद्यालयों में तथा पब्लिक लाइब्रेरी में भी उपलब्ध)

<http://us.mg1.mail.yahoo.com/dc/blan...>

1/11/2010

From : sohan tater (sohan_tater@yahoo.co.in)

To : narayanlal kachhara

Data : Mon, January 11, 2010 5:11:31 PM

Subject : Acharya Kanaknandiji books details published in Philosophy Journal.

Respected Kachhara Sahib,

Sadar Jai Jinendra,

Please find attachment of Acharya Kanaknandiji books details published in Philosophy Research Journal 55 years old of very prestigious institute "Akhil Bhartiya Darshan Parishad." This Journal is circulated to all its life members (Academicians only) and Research Scholars in 5000 quantity throughout India.

Thanks, with warm regards,

Yours Sincerely,

Prof. (Dr.) Sohan Raj Tater

The Internet now has a personality. Yours! See your Yahoo! Homepage.

us.mg1.mail.yahoo.com/dc/blank.html?....

**धर्म दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर से अखिल भारतीय
दर्शन-परिषद को जून-2009 में प्राप्त पुस्तकों की
सूची**

**सामार (दार्शनिक त्रैमासिक वर्ष 55 अंक में
प्रकाशित)**

	पृष्ठ सं.
क्र. पुस्तक का नाम	पृष्ठ सं.
1. अनेकान्त सिद्धांत	194
2. अहिंसामृतम्	64
3. अतिमानवीय शक्ति	186
4. अयोध्या का पौराणिक-ऐतिहासिक एवं राजनीतिक विश्लेषण	112
5. अग्नि परीक्षा	49
6. अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग	121
7. अपुनरागमन पथः मोक्षमार्ग	38
8. अनुभव चिन्तामणि	39
9. अनन्त शक्ति संपन्न परमाणु से लेकर परमात्मा	547
10. अमृतत्व की उपलब्धि हेतु समाधिमरण	112
11. अनन्त परम सत्य का उल्लेख तथा उपलब्धि संभव नहीं है, धार्मिक ग्रंथ तथा विज्ञान से भी?	152
12. आत्मोत्थानोपायः तप	46
13. आचार्य कनकनंदीजी की दृष्टि में शिक्षा	114
14. आदर्श विचार—विहार—आहार	304
15. आदर्श जीवन की प्रायोगिक क्रियाएँ	44
16. आनंद की खोज (सुषमा जैन)	60
17. (आध्यात्मिक मनोविज्ञान) इष्टोपदेश	231
18. उपवास का धार्मिक—वैज्ञानिक विश्लेषण	110
19. उठो! जागो! प्राप्त करो! (कन्नड़)	101
20. ऋषभ पुत्र भरत से भारत	116
21. क्रांति के अग्रदूत	127
22. कथा सौरभ	147

23. कथा चिन्तामणि	97
24. क्रांति दृष्टा प्रवचन	42
25. कौन है विश्व का कर्ता! धर्ता! हर्ता!	62
26. कर्म सिद्धांत और उसके वैज्ञानिक—मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आयाम (6वीं संगोष्ठी स्मारिका) संपादक—डॉ. कछारा	195
27. करे साक्षात्कार यथार्थ सत्य का	168
28. करे साक्षात्कार धर्म, भाव का	80
29. कलिकाल में साधु क्यों बनें?	168
30. गुरु अर्चना	18
31. जैन कर्म सिद्धांत, अध्यात्म और विज्ञान (डॉ. एन.एल. कच्छारा)	192
32. Jain Doctrine of Karma (Dr. N.L. Kachhara)	64
33. जीने की कला	72
34. ज्वलंत शंकाओं का शीतल समाधान	230
35. जैन धर्मावलंबी : संख्या एवं उपलब्धि	95
36. सेवाधर्म : जीवन्त धर्म	62
37. जिनार्चना—प्रथम पुष्ट	237
38. जीवन विकास एवं विनाश के सूत्र	56
39. जैन धर्मावलंबियों की दिशा—दशा—आशा	62
40. जैन एकता एवं विश्व शांति	48
41. तत्वानुचितन	132
42. तत्व चिंतन—सर्वधर्म समता से विश्व शांति	200
43. दिव्य उपदेश (आचार्यश्री का व्यक्तित्व एवं कृतित्व)	72
44. दिग्म्बर जैन साधु का नगनत्व एवं केश—लौंच (अंग्रेजी)	52
45. दिग्म्बर जैन साधु का नगनत्व एवं केश—लौंच (उर्दू)	52
46. दीक्षा के उद्देश्य एवं विविध दीक्षा विधि	56
47. दसणमूला धम्मो	153
48. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान; भाग—एक	144
49. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवे.—एक	56
50. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवे.—दो	91
51. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवे.—तीन	136
52. धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन	48
53. धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थकर	66

54. ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण	167	83. भारतीय संस्कृति में विश्व शांति एवं पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र (7वीं संगोष्ठी स्मारिक)	64
55. धर्म, जैन धर्म एवं भगवान महावीर	174	84. Moral Education	113
56. धर्म दर्शन एवं विज्ञान	270	85. मानव इतिहास एवं मानव विज्ञान	400
57. नग्न सत्य का दिग्दर्शन	78	86. मनन एवं प्रवचन	48
58. नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान	156	87. मंत्र विज्ञान	89
59. निमित्त उपादान मीमांसा	55	88. मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास	28
60. निकृष्टतम स्वार्थी एवं क्रूरतम प्राणी : मनुष्य के अंधकार पक्ष के परिप्रेक्ष्य में)	33	89. मेरा लक्ष्य, साधना एवं अनुभव (आचार्यश्री की लेखनी)	80
61. स्मारिका—6वाँ वैज्ञानिक संगोष्ठ—कर्म सिद्धांत	70	90. मानव धर्म : स्वरूप एवं परिणाम	49
62. पुण्य पाप मीमांसा	128	91. युग निर्माता भगवान ऋषभदेव	193
63. पार्श्वनाथ का तपोसर्ग कैवल्यधाम बिजौलिया	148	92. युग निर्माता भगवान ऋषभदेव (पद्यानुवाद)	50
64. पूजा से मोक्ष, पुण्य तथा पाप भी	159	93. Sculptor of the Age : Rishabhdev	188
65. पुरुषार्थी—सिद्धयुपाय	428	94. ये कैसे धर्मात्मा, निर्व्यसनी, राष्ट्रसेवी?	95
66. प्रथम शोध—बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता	218	95. What Kind of Dharmatma, these are?	91
67. प्राचीन भारत की 72 कलाएँ	72	96. Laisya Psychology	48
68. परोपदेश कुशल बहुतेरे जे आचारही ते नर न घनेरे	56	97. वैश्वीकरण—वैश्विक धर्म एवं विश्व शांति	96
69. Philosophy of Scientific Religion	170	98. विभिन्न भावात्मक प्रदूषण एवं भ्रष्टाचार—कारण तथा निवारण	40
70. बंधु बंधन के मूल	397	99. वर्तमान की आवश्यकता धार्मिक उदारता, न कि कट्टरता	127
71. ब्रह्मांडीय जैविक, भौतिक एवं रसायन विज्ञान	320	100. विनय—मोक्षद्वारा	52
72. ब्रह्माण्ड के रहस्य	64	101. विश्व—विज्ञान रहस्य	228
73. ब्रह्माण्ड एवं प्रति ब्रह्माण्ड : धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	64	102. विश्व इतिहास	202
74. ब्रह्माण्ड—आकाश—काल एवं जीव : अनन्त (वृहत)	400	103. विश्व धर्म सभा (समोसरण)	240
75. ब्रह्माण्ड—आकाश—काल जीव : अनन्त (छोटा)	64	104. विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	354
76. भाग्य एवं पुरुषार्थ	85	105. सप्त व्यसन : व्यसन का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	140
77. भारतीय आर्य कौन, कहाँ से, कब से, कहाँ के!	205	106. विश्व धर्म के दस लक्षण	184
78. सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा	467	107. विश्व, प्रतिविश्व एवं श्यामविवर	113
79. भविष्य फल विज्ञान (शकुन विज्ञान)	446	108. व्यक्ति एवं समाज—निर्माण के आद्य कर्तव्य	101
80. भारत को पुनः विश्व—गुरु बनाने के लिए समग्र क्रांति चाहिए	42	109. विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य है?	63
81. भारत को भारत एवं महान् भारत बनाने के सूत्र	55	110. वैज्ञानिक आइंस्टीन के सिद्धांतों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता है?	64
82. भारत की अंतरंग खोज	64		

111. विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मिक विकासवाद	88
112. शिक्षा शोधक स्मारिका (तृतीय संगोष्ठी)	150
113. शांति—क्रांति के विश्व नेता बनने के उपाय	214
114. शोधपूर्ण ग्रंथ एवं ग्रंथकर्ता आचार्य कनकनंदी	72
115. शिक्षा—संस्कृति एवं नारी गरिमा	152
116. शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विभिन्न आयाम	38
117. संगठन के सूत्र	400
118. संस्कार (हिन्दी)	136
119. Sanskaras (Tendencies)	32
120. संस्कार (कन्नड़)	24
121. संस्कार और हम	68
122. संस्कार (वृहत्)	83
123. स्वज्ञ—विज्ञान	117
124. समग्र क्रांति के उपाय	38
125. स्वतंत्रता के सूत्र—तत्त्वार्थ सूत्र	655
126. सत्य धर्म	38
127. सत्यसाम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार)	1057
128. सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्)	642
129. संस्कृति की विकृति	26
130. समवसरण (आचार्यश्री से भेटवाती)	64
131. स्मारिका—प्रथम संगोष्ठी : स्वतंत्रता के सूत्र	110
132. सत्य गवेषणा : स्मारिका—द्वितीय संगोष्ठी	102
133. बोल्ड—स्मार्ट एवं ब्यूटीफुल पर्सनालिटी आर्डर बनाने के फार्मूले	23
134. समग्र स्वास्थ्य का उपाय : तपस्या	80
135. सत्य परमेश्वर	140
136. हिंसामय यज्ञ प्रारंभ क्यों?	119
137. क्षमा वीरस्य भूषणम्	112
138. त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य	129

वचनामृतम्

- (1) परम सत्य मौन (ध्यान—ज्ञान—अनुभव) गम्य होने से वचन अगम्य है।
- (2) हित के बिना मित एवं प्रिय वचन भी असत्य।
- (3) विकास क्रम एवं उपयोगिता के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण इन्द्रिय है—‘श्रवण—इन्द्रिय’ क्योंकि इससे जीव हित—अहित, पाप—पुण्य, आत्मा—परमात्मा, मूर्तिक—अमूर्तिक, सत्य—तथ्य के बारे में सुनकर ज्ञानार्जन कर सकता है। अन्य इन्द्रियों से केवल स्थूल भौतिक गुण—धर्म के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- (4) मानव समाज में वचन के द्वारा सबसे अधिक भाव विनिमय, आदान—प्रदान, ज्ञानार्जन, कला—संस्कृति—समाज विज्ञान—धर्म का प्रचार—प्रसार होता है तो इससे वाद—विवाद, कलह, वैनमनस्य, वैरत्व, विषमता, लड़ाई—झगड़ा आदि भी होते हैं। यहाँ तक कि अनेक युद्ध का भी प्रारंभ वचन से हुआ है। योद्धा अस्त्र—शस्त्र के प्रहार के पहले वचनरूपी अस्त्र—शस्त्र से प्रहार करते हैं। अतः वचन के सदुपयोग से विकास है तो दुरुपयोग से विनाश है।
- (5) आध्यात्मिनिष्ठ परमज्ञानी तो निन्दा—प्रशंसा, कटु—मधुर आदि वचन को आत्मा से भिन्न भौतिक तत्व मानकर भले प्रभावित नहीं होते हैं तथापि वे दूसरों को अहितकर कटु—निन्दा आदि वचन प्रयोग नहीं करते हैं। इससे विपरीत सामान्य व्यक्ति स्वयं निन्दा, कटु आदि वचन से दुःखी तथा प्रशंसा मधुर वचन से प्रसन्न होते हैं तथापि वे दूसरों के लिए निंदादि वचन का प्रयोग करके खुश होते हैं तथा मधुर आदि वचन में दरिद्र होते हैं।
- (6) आर्त—रौद्र ध्यान से रहित होकर 5 प्रकार के स्वाध्याय करना भी एक प्रकार के मौन है।

- (7) सच्चे एवं अच्छे उद्देश्य से सत्य, न्याय, सदाचार, एकता, समाज राष्ट्र-विश्व कल्याणार्थ तथा जीवों की रक्षा आदि के लिए बोलना भी मौन है।
- (8) मौन अवस्था में हूँ हाँ, याचना, दीनता, कषाय करना, मन को अस्थिर करना दोष है।
- (9) 5 प्रकार के स्वाध्याय या सत्य, न्याय आदि के लिए घंटों बोलना भी एक प्रकार के मौन है तो असत्य, अयोग्य, कटु, विकथा आदि संबंधी एक भी शब्द बोलना या इसके विचार अथवा मन की चंचलता या कषाय के भाव होना मौन के दोष हैं।
- (10) “कम खाओ, गम खाओ—न हकीम के घर जाओ न हाकिम के घर जाओ” यह नीति हमें शारीरिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य के प्राथमिक सरल पाठ पढ़ा रही है।
- (11) सनप्र सत्याग्राही होकर किसी की बात या विचार को मानना या नहीं मानना या समीक्षा/मीमांसा करना सही है, परन्तु हठग्राही/संकीर्ण/पक्षपात/विद्वेष/निन्दा/नीचा दिखाने के लिए करना गलत है। — आचार्य कनकनंदी

आचार्य कनकनंदी के लिए न्यायमूर्ति एन.के. जैन द्वारा प्रेषित पत्र

16 अक्टूबर, 2009

मुनि श्री सुविज्ञसागरजी के चरणों में सादर नमन्

आपका स्नेहाशीषपूर्ण पत्र आशीर्वाद के रूप में प्राप्त हुआ, उसके लिए हृदय से आभार व धन्यवाद। पत्र पढ़कर हर्ष के साथ मन को निर्मलता की अनुभूति भी हुई। आचार्य गुरुदेव के जनहित के ऐसे कार्यक्रमों में आदेशानुसार मैं व्यक्तिगत रूप से अवश्य उपस्थित होने का पूर्ण प्रयास करूँगा।

परमपावन धाम तीर्थग्राम रामगढ़ में परमपूज्य आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के सान्निध्य में सहस्रनाम विधान के साथ पर्युषण पर्व, दीक्षा एवं शिविर के आयोजन का सुखद वृतान्त पढ़कर बहुत अच्छा लगा।

आचार्य गुरुदेव की स्तुति में जितना बखान किया जाये कम है। जनहितार्थ प्रकाशित ग्रन्थों, संगोष्ठियों एवं धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का देश-विदेश में आयोजन अत्यंत लाभकारी और ज्ञानवर्द्धक हैं।

परमपूज्य आचार्य गुरुदेव द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन से निःसंदेह हजारों लाखों शिष्य व आमजन लाभान्वित होंगे। मानवीय मूल्यों के विकास के साथ धर्म के प्रचार-प्रसार में अपना सहयोग देकर व अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए मनुष्य जीवन भी धन्य और सुव्यवस्थित करेंगे, ऐसी मेरी आशा और कामना है।

आचार्यश्री द्वारा लिखित पुस्तकों एवं ग्रंथ निःसंदेह ज्ञानवर्द्धक एवं आत्मसात् करने योग्य हैं। मैं अभी इनको सरसरी निगाह से ही देख पाया हूँ। मैं प्रयास करूँगा कि इन सारगर्भित पुस्तकों एवं ग्रन्थों का अध्ययन, मनन और चिंतन कर आत्म कल्याणार्थ का मार्ग प्रशस्त कर सकूँ।

जनहित में प्रसारित कुछ लघु पुस्तकाएँ आपके अवलोकनार्थ व आशीर्वाद के लिए प्रेषित कर रहा हूँ।

परमपूज्य आचार्य गुरुदेव, सभी संघस्थ मुनिश्री व आपके चरणों में मेरा पुनः सादर नमन्। — (एन.के. जैन)

कट्टर-संकीर्ण-पंथाग्रहियों के द्वारा जीवन्तपरमेष्ठियों के साथ अत्याचार

(इसे रोकने के लिए हमें विष्णुकुमार-समन्तभद्र- (8) अकलंक के आदर्श प्रस्तुत करना है)

—आचार्य कनकनंदी

आचार्य सिद्धांतसागरजी (ससंघ) के ऊपर दमोह जिले के सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर मंदिर कमेटी के सदस्यों के द्वारा दिनांक 5-12-2009 को किये गये घोर अत्याचार (आ. सिद्धांतसागरजी को बंधक बनाना, साधु-साध्वी एवं ब्रह्मचारी से अभद्रता, कोरे कागज पर बलात् अन्यायपूर्ण आगम विरुद्ध आ. सिद्धांतसागरजी से हस्ताक्षर) केवल उनके संघ के ऊपर अत्याचार नहीं है अपितु पूर्ण दि. जैन चतुर्विधि संघ-धर्म, आगम के साथ-साथ लोकतंत्र, न्याय, प्रशासन एवं अखिल मानव समाज के लिए अत्याचार, भ्रष्टाचार, कलंक, निंदनीय है। इसलिए इसे रोकना दि. जैन चतुर्विधि संघ का सर्वोत्तम प्राथमिक अनिवार्य परम पावन धार्मिक कर्तव्य है। इसके साथ-साथ इसे रोकना सरकार, न्यायालय, प्रशासन से लेकर मानव समाज का भी संवैधानिक नैतिक अधिकार एवं कर्तव्य है।

विभिन्न प्रामाणिक स्रोत एवं साक्ष्य (विभिन्न जैन समाचार-पत्र, व्यक्ति, पुस्तक, कैसेट; विद्वान्, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, साधु-साध्वी, आचार्य) से प्रामाणिक रूप से सिद्ध होता है कि यह सब दुर्व्यवहार कट्टर-संकीर्ण-पंथाग्रही आचार्य, साधु-साध्वी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, पंडित, श्रावक, गृहस्थों के द्वारा प्रत्यक्ष-परोक्ष (यथायोग्य नवकोटि) से हो रहा है। इसके पहले भी सागर (बुंदेलखण्ड) में आचार्य देवनंदीजी के साथ आचार्य विद्यासागरजी के शिष्य मुनि समतासागरजी के कारण घोर दुर्व्यवहार 7 महीना तक चला। आ. विरागसागरजी पर भी उपसर्ग हुआ। आचार्य विद्यासागरजी के ही शिष्य सुधासागरजी द्वारा आचार्य भरतसागरजी की समाधि को लेकर उदयपुर (राज.) में अमर्यादित, साधुत्व के अयोग्य वचनों का प्रयोग तथाच आगमोक्त पूजा-पाठादि करने वाले तथा उसे मानने वाले साधु-साध्वियों के प्रति दुर्व्यवहार प्रायः 14-15 वर्षों से चल रहा है। इसी प्रकार आचार्य

विद्यासागरजी के साधु-साध्वियाँ, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियाँ, उनके संस्थागत पदाधिकारी यहाँ तक की अनुयायी तक आगमोक्त पूजा-पाठ आदि परंपराओं को मानने वालों के प्रति दुर्व्यवहार (उन्हें सम्मान नहीं देना, नमस्कार नहीं करना, पंचकल्याणक, विधान व ग्रामादि में आने नहीं देना, उन्हें आहारादि नहीं देने का नियम दिलाना, ये साधु नहीं हैं, ऐसे दुष्प्रचार करना आदि) प्राचीनकाल से आगमोक्त पूजा-पाठ, परंपरा के मंदिरों को तोड़कर, परिवर्तित कर अपना वर्चस्व जमाना, अपने पंथ को थोपना एवं आगमोक्त विधि से चलने वालों का निषेध करना आदि यत्र-तत्र-सर्वत्र बहुत वर्षों से कर रहे हैं। इन सब कार्यों को आचार्यश्री विद्यासागरजी का प्रत्यक्ष, परोक्ष, संकेत या मौनरूप से यथायोग्य नवकोटि रूप में समर्थन है, वे जानबूझकर, मौन का बहाना लेकर उपर्युक्त दुर्व्यवहारों को रोकने के लिए कुछ करते हैं, न कुछ बोलते हैं, इतना ही नहीं इनका कोई वश इनके शिष्यों पर नहीं चलता है इसलिए शिष्य व अनुयायी भी मनमानी करते हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें आगमोक्त, समतापूर्वक उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना अंग के अनुसार मुनि विष्णुकुमार, आ. समन्तभद्र, आ. अकलंक देव के समान स्वेच्छा से सामूहिक रूप से प्रयास करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है।

समतापूर्वक, मन-वचन-काय से मौनपूर्वक ध्यान-अध्ययन-समाधान-लेखन आदि करना श्रेष्ठ है तथापि विशेष परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार हितकर-सत्य वचन बोलना मौन से भी श्रेयस्कर है। इसलिए मनुस्मृति में कहा है—मौनात्सत्यं विशिष्यते। जैनाचार्य ने भी कहा है—

मौनमेव हितंपुंसां शश्वत्सर्वार्थसिद्धये ।

वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्त्वोपकारियत ॥ (6) ज्ञानार्णव

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला निरंतर मौन ही अवलंबन करना हितकारी है। और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिए जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्तजनों का हित करने वाला हो।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थं विप्लवे ।

अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपं प्रकाशने ॥ (ज्ञानार्णव)

जब जहाँ सत्य धर्म का नाश होता हो, यथार्थ क्रिया का विघ्नस होता हो, समीचीन सिद्धांत-अर्थ का अपलाप/विनाश होता हो उस समय सम्यक् धर्म-क्रिया और सिद्धांत के प्रचार-प्रसार, सुरक्षा के लिए बिना पूछे भी सज्जनों को बोलना चाहिए क्योंकि इससे धर्म की रक्षा होती है, जिससे स्व-पर-राष्ट्र-विश्व की सुरक्षा समृद्धि होती है।

रुसउ वा परो मा वा, विसं वा परियतउ।

भासियव्वा हियाभासा सपकखगुण करिया॥ (श्वे. साहित्य)

जिसे उपदेश दिया जाता है, वह चाहे रोष करे, चाहे उपदेश को विष रूप समझे परंतु उपदेशक को हितरूप वचन अवश्य कहना चाहिए।

यदि आचार्य विद्यासागरजी, उनके शिष्य साधु, साधी ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, पंडित, अनुयायी आदि के द्वारा उपयुक्त कार्य के साथ-साथ मंदिर, धर्मशाला, विद्यालय, संत भवन, वृद्धाश्रम, तपोवन, गौशाला, श्राविकाश्रम आदि के निर्माण, जीर्णोद्धार, पंचकल्याणक, गजरथ से लेकर जैन प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान, लोकसेवा, समाजशास्त्र, लोक प्रशासन एवं सैनिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की शिक्षाएँ प्रारंभ की गई हैं और हो रही हैं और इसे आगमोक्त धर्म प्रभावना मान रहे हैं तब अन्य साधु-संत से लेकर धार्मिकजन जो आगमोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आवश्यकतानुसार धर्म प्रभावना के लिए कार्य कर रहे हैं, वे सब कार्य गलत क्यों? ऐसे कार्य करने वाले मिथ्यादृष्टि क्यों? उनका विरोध व निंदा क्यों? ऐसे असम्यक् कार्य कब तक चलता रहेगा? एवं इसका समाधान कब व कैसे? इन सबके उत्तर व सामाजिक जैन एकता व विश्वशांति के लिए अतिशीघ्र आवश्यक एवं अनिवार्य है।

उपर्युक्त विषयों के समाधान, परिशोधन के निमित्त विस्तृत परिज्ञान के लिए मेरे द्वारा (आ. कनकनंदी) 17-18 वर्ष से लिखे गये (1) श्रमण संघ संहिता, (2) मिथ्यात्व को आस्र, बंध क्षेत्र में अकिञ्चित्कर मानना मिथ्या है, (3) जिनार्चना भाग 1-2, (4) वर्तमान की आवश्यकता धार्मिक उदारता, न कि कट्टरता, (5) पंचम काल में साधु क्यों बने? आदि साहित्य कृतियों का अध्ययन करें।

सत्त्वे-अच्छे नागरिक ही राष्ट्र के यथार्थ से

संविधान-कानून वधजा हैं!

(समारोह के मुख्य अतिथि रूप में आचार्यश्री ने सभा को राष्ट्रविरोधी कार्य न करने का नियम दिया)

भारतीय गणतंत्र दिवस की 61वीं वर्षगांठ को भवित ग्राम रामगढ़ की पुण्यधारा में स्थानीय राजकीय माध्यमिक विद्यालय के प्रांगण में आयोजित समारोह में उपस्थित नागरिकगण, भावी कर्णधार विद्यार्थीगण, अभिभावक व शिक्षकगणों को संबोधित करते हुए परम पूज्य राष्ट्र-विश्व संविधानविज्ञ आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने कहा कि भारत देश भूमि का टुकड़ा मात्र नहीं है अथवा भारत का राष्ट्रीय ध्वज, संविधान, कानून जो कि कपड़े व कागज के रूप में मात्र प्रतीकात्मक रूप से हैं, वास्तविक भारत तो इस देश के जीवन्त नागरिकगण हैं जिनके जागरूक-कर्तव्यनिष्ठ-अनुशासन-समर्पण युक्त चेतनाभाव से ही हमारे राष्ट्र का वास्तविक विकास संभव है।

गुरुदेव ने वर्तमान के भारत की वास्तविक तस्वीर रेखांकित करते हुए बताया कि सर्वप्रथम तो हमारा संविधान भानुमती का कुनबा है एवं संविधान प्रदत्त अधिकार व कर्तव्यों की जनसामान्य को कोई जानकारी ही नहीं है। देश की सत्ता अकर्मण्य, किंकर्तव्यविमूढ़ एवं भ्रष्ट नेताओं के हाथ में है। भारत के 80% सांसदों ने संविधान को देखे तक नहीं है, जानकारी की तो बात दूर है। इसी प्रकार हमारे देश का कानून भी अंधा कानून है, सन् 1860-1872 के एक्ट (संहिताओं) को पालन करने के लिए नागरिकगण अभिशप्त हैं। देश में कुरीतियाँ व भ्रष्टाचार शिक्षा-धर्म-समाज-कानून-प्रशासन-राजनीति में व्याप्त हैं। गुंडागर्दी, दादागिरी विधानसभाओं से लेकर संसद में चलती है।

राष्ट्रीय चिह्न में पर्यावरण के प्रतीक रूप में हाथी, बैल (गोवंश), घोड़ा आदि हैं लेकिन इस देश में गोवंश की हत्या स्वयं शासन लाइसेंस देकर करवा रहा है, जिससे इस देश में हिंसा व्यापक रूप से बढ़ी है। गुरुदेव ने कहा जो हिंसा से भयभीत होता है, दूर होता है वही हिन्दू है, लेकिन वर्तमान में परिस्थितियाँ विपरीत हैं। हमने

सिर्फ प्रतीकों को अपनाया है जबकि व्यवहारिक व प्रायोगिक धरातल पर भारतीय सत्य को नहीं अपना रहे हैं। भारत की तोतारटन्त शिक्षा पद्धति पर बोलते हुए गुरुदेव ने शिक्षा में आमूल—चूल परिवर्तन कर व्यवहारिक, प्रायोगिक व चरित्र निर्माण वाली शिक्षा जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से खरी उतर सके ऐसी नितांत आवश्यकता जताई।

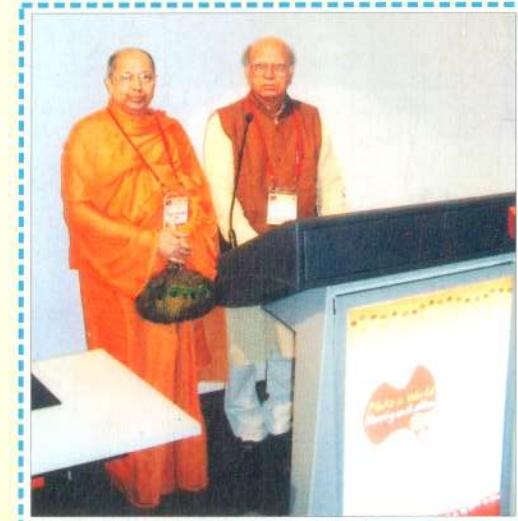
रामगढ़ धरती की पुण्यशक्ति से आचार्य गुरुदेव अंतर्राष्ट्रीय संस्था नेक्स्ट पीस (NEXT PEACE) के सदस्य बने हैं जिसका विश्व के 120 देशों में नेटवर्क फैला हुआ है। अंत में गुरुदेव ने उपस्थित विद्यार्थी व नागरिकों से आह्वान किया कि आप लोगों के ज्ञान के विविध स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करते हुए सच्चे—अच्छे—श्रेष्ठ नागरिक बनना चाहिए तभी भारतमाता का गौरव विश्व में स्थापित होगा।

सभा में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति देने वाले कलाकारों, विद्यार्थियों को गुरुदेव ने पुरस्कार वितरण करते हुए उपस्थित सभी नागरिकों को राष्ट्रप्रेम की शपथ दिलाई।

प्रस्तुति : मुनि सुविज्ञसागर,

संघस्थ आचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव

विश्वधर्म संसद में व्याख्यान



मेलबोर्न (आस्ट्रेलिया) में पांचवीं विश्व धर्म संसद में कर्म सिद्धान्त और जैन धर्म के मूल सिद्धान्त पर व्याख्यान करते हुए डॉ. कछारा तथा भद्राक देवेन्द्र कीर्तिजी (2009)

शिविरार्थिओं के द्वारा आहारदान



32वां शिविर में आ. कनकनंदी के साहित्य लेखन में सहयोगी, शिविरार्थी तथा चौका लगाकर आहार देते हुए खुशबू, दीपिका, रोनीका, लीना, स्वीटी, ब्र. तरुण, विवेक, जितेन्द्र, विजेन्द्र आदि। रामगढ़ (2009)

विश्व धर्म में भारतीय व्याख्याताओं का संगम



पाँचवीं विश्वधर्म सभा में डॉ. कछारा के व्याख्यान में उपस्थित
माँ करुणामयी और भद्रुरक देवेन्द्र कीर्तिजी (मेलबोर्न-आस्ट्रेलिया-2009)

संगोष्ठी के सहयोगी तथा प्रतिभागी



11वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी (जैन विज्ञान, आधुनिक विज्ञान से परे, परिप्रेक्ष्य में
जैन दर्शन में निहित सफलता और शान्ति के सूत्र) में उपस्थित आचार्य श्री द्वारा
आशीर्वाद प्राप्त दोनों संस्थानों के कार्यकर्ता, शोधार्थी तथा रामगढ़ के कार्यकर्ता।